श्री राम उवाच-35

वदतां वरः

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

वदतां वरः

संस्करण प्रथम, अक्टूबर, 2023
2000 प्रतियाँ

मूल्य ₹ 125/-

प्रकाशक **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
e-mail : sahitya@sadhumargi.com

ISBN 978-93-91137-31-1

मुद्रक **उपकार प्रिंट हाऊस** प्रा. लिमिटेड, आगरा

जीवन बोले, शब्द नहीं

मनुष्य को बोलने की शक्ति प्राप्त हुई है, पर इस शक्ति का उपयोग उसकी प्रकृति पर निर्भर है। बोलते सभी हैं पर सबको बोलने का सुपरिणाम प्राप्त नहीं होता। सबको सुपरिणाम प्राप्त न होने के कारण अनेक हैं। अनेक कारणों में प्रमुख कारण है जीवन का खुद नहीं बोलना। केवल शब्दों का उच्चारण होना। जब जीवन खुद बोलता है, तब आवाज इतनी सशक्त होती है कि श्रोता के मस्तिष्क तक पहुँच जाती है। वह आवाज श्रोता के हृदय एवं आत्मा तक उतरने में समर्थ हो जाती है। जिनका जीवन खुद बोलता है उनके शब्द श्रोता के मन-मस्तिष्क में छा जाते हैं। उस पर गहरा असर डालते हैं। श्रोता उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। जिनके शब्दों में इतना सामर्थ्य होता है, जिनके शब्द इतने सशक्त होते हैं उन्हें वदतां वर: कहा जाता है। वदतां वर: यानी बोलनेवालों में श्रेष्ठ।

आचार्यश्री रामलाल जी म. सा. बोलनेवालों में श्रेष्ठ हैं, अर्थात् वदतां वर: हैं। इसलिए श्रेष्ठ हैं क्योंकि आचार्यश्री की वाणी से कहीं बहुत अधिक उनका जीवन बोलता है। उनकी वाणी से जो निकलता है, उसी के अनुरूप उनका व्यवहार होता है। यह भी कह सकते हैं कि व्यवहार के अनुरूप ही वाणी निकलती है। आचार्यश्री जो कहते हैं, उसे गुनते भी हैं। किसी औपचारिकता के वशीभूत होकर नहीं, पूरी सहजता से। सरलता से। इसीलिए लोग आचार्यश्री को दत्तचित्त होकर सुनते हैं। जितने लोग सुनते हैं उससे बहुत अधिक लोग सुनना चाहते हैं।

लोगों को सुख-शांति से परिचित कराने के लिए, उसके नजदीक ले जाने के लिए, उसका रसपान कराने के लिए आचार्यश्री अपने जीवन और वाणी से पुरुषार्थ करते रहते हैं। आचार्यश्री की वाणी का लाभ सबको प्राप्त कराने के भाव से साधुमार्गी पब्लिकेशन आचार्यश्री के कथन को पुस्तक के रूप में उपलब्ध कराता है। आचार्यश्री की वाणी से ग्रथित एक ऐसी ही पुस्तक **'वदतां वर:'** आपके हाथ में है। इस पुस्तक के शब्द ईस्वी सन् 2021 में आचार्यश्री द्वारा ब्यावर चातुर्मास में फरमाए गए प्रवचनों से संकलित किए गए

हैं। ब्यावर में फरमाए गए प्रवचनों की यह तीसरी पुस्तक है।

आचार्यश्री की वाणी ने न जाने कितनों के जीवन की दिशा और दशा बदल दी है। यह पुस्तक भी पाठकों के जीवन में विशिष्ट परिवर्तन लाकर उन्हें श्रेष्ठता की कोटि तक पहुँचाने वाली है। जो इसे पढ़ेगा, गुनेगा, अपने जीवन में उतारेगा, वह विकास की सीढ़ियों पर चढ़ता चला जाएगा। इस पुस्तक के माध्यम से आचार्यश्री के संदेश पढ़ें, गुनें एवं जीवन में उतारें और विकास की सीढ़ी चढ़ते जाएं।

इसके प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्यश्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्यश्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**वदतां वरः**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

श्रीमती छोटी बाई नाहर
धर्म सहायिका स्मृतिशेष कालूराम जी नाहर व
पुत्रगण ज्ञानचंद, श्रेणिक कुमार, उत्तमचंद नाहर
ब्यावर

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	रत्न चिंतामणि खोए ना	07
2.	जो शुद्ध करे आत्मा को	20
3.	तितिक्षा की करें समीक्षा	32
4.	अवसर लाखीणो	44
5.	जीवन बगिया महकाएं	56
6.	अपने जीवन के जौहरी बनो	75
7.	अपना सुख-दुःख अपने हाथ	88
8.	सर्वांगीण विकास का पथ	101
9.	नमन से मान का शमन	117
10.	संवाद दो सखियों का	130
11.	यथार्थ दृष्टि के सुपरिणाम	143
12.	सपना तो सपना ही है	158
13.	सहिष्णुता सुखदायक	168
14.	जागो, जगा लो ज्ञान चेतना	179
15.	अन्तर की झनकार सुनें	191

1

रत्न चिंतामणि खोए ना

पदम प्रभो! जिन तुज-मुज आंतरू रे...

प्रार्थना की कड़ियों के माध्यम से पूछा जा रहा है कि भगवन्! आपके और मेरे बीच में जो अंतराल पड़ा हुआ है, उसको कैसे दूर किया जाये?

इसका उत्तर मिला कि तुम कर्म के विपाक से जुड़े हुए हो।

कर्म विपाक कब होता है?

पहले कर्मों का बंध होता है फिर कर्मों का विपाक होता है। जैसे पहले रसोई में खाना बनाया जाता है, बनाने के बाद खाना खाया जाता है, वैसे ही पहले कर्मों का बंध करते हैं। जैसे खाना बनाते हुए पकवान के अनुसार मिर्च-मसाला डाला जाता है, वैसे ही कर्मबंध होने के बाद हमारे अध्यवसायों से उनमें रस पड़ता है। वह रस काल क्रम से परिपक्व होने के बाद आत्मा को शुभाशुभ फल प्रदान करता है। इसे कर्मों का विपाक कहते हैं। जब तक हमारे साथ कर्मों का विपाक बना रहेगा, तब तक परमात्मा से हमारी दूरी बनी रहेगी। जिस दिन संपूर्ण कर्मों का क्षय करने वाले बन जाएंगे, उस दिन परमात्मा से कोई दूरी नहीं रहेगी। उस समय द्वेत कल्पना मिट जाएगी। तब मेरे और परमात्मा में कोई दूरी नहीं रहेगी। हम एकरूप हो जाएंगे। हम भी वहाँ पहुँच जाएंगे, जहाँ पर सिद्ध भगवान विराज रहे हैं।

किंतु जब तक वह दूरी दूर नहीं होती है, तब तक हमें क्या करना चाहिए? क्या कर्मों का बंध ही करते रहें या कर्मबंधन से विमुक्त होने के लिए प्रयत्न करना चाहिए?

उसको दूर करने के लिए, उससे विमुक्त होने के लिए पर्व पर्युषण आए थे और चले भी गये। पर्व पर्युषण में मन की दूरियों को हटाने का हमारा

प्रयत्न हुआ किंतु वह कितना सफल रहा यह विचार करने की आवश्यकता है। पर्व पर्युषण निमित्त था मन की दूरियों को हटाने का। उस निमित्त को जिन्होंने साध लिया, उन्होंने अपना मन पवित्र बना लिया। उन्होंने अपने मन को दिव्य कर लिया।

यह निश्चित है कि सात कर्मों का बंध हम निरंतर करते रहते हैं। जब तक राग-द्वेष हमारे भीतर रहेंगे, तब तक कर्म बंधन नहीं रुकेगा। कर्मों का बंध होता ही रहेगा। अभी आप सुन रहे थे निर्विकल्प अवस्था की बात। वह बहुत कठिन है। उसका रास्ता सुगम नहीं है, किंतु असंभव भी नहीं है। इसके लिए सबसे पहले अपने मन में यह आत्मविश्वास जगा लेना जरूरी है कि साधना का मार्ग, कषायों से रहित होने का मार्ग है। हम भी कषायों से मुक्त हो सकते हैं। हम भी राग-द्वेष से मुक्त हो सकते हैं। हम भी कर्मों से मुक्त हो सकते हैं। पहले हमें आत्मविश्वास को जगाना होगा। आत्मविश्वास जगाने के बाद हमें उस प्रक्रिया से गुजरना है, जो प्रक्रिया कर्मबंधन से मुक्ति दिलाने वाली है। कर्म बंधन के पाँच हेतु हैं।

बताओ कौन-से पाँच हेतु हैं?

1. मिथ्यात्व 2. अव्रत 3. प्रमाद 4. कषाय और 5. योग। इन पाँचों में से सबसे भारी मिथ्यात्व है। उसकी पकड़ बहुत गहरी है। मिथ्यात्व जब तक बना रहता है, तब तक व्यक्ति को धर्म सुहाता नहीं है। धर्म की वाणी अच्छी नहीं लगती। हमें मिथ्यात्व को सबसे पहले रोकना है। उसके बाद ही धार्मिक गतिविधियाँ सक्सेस होंगी। वे सफल हो पाएंगी। यदि मिथ्यात्व दशा में धार्मिक क्रियाएँ की भी गईं तो वे सफल नहीं हो पाएंगी। कोई मास, मासखमण की तपस्या कर ले, कितनी भी कठिनाइयों से गुजर जाए, बहुत उपसर्ग और परीषह भी सहन कर ले, इसके बावजूद तथाभूत परिणाम नहीं मिलता। जीव अज्ञानी बना रहता है। अज्ञानी जीव को जिन कर्मों का क्षय करने में हजारों वर्ष लग जाते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव उन्हीं कर्मों को श्वास और उच्छवास समय मात्र में नष्ट करने का सामर्थ्य रखता है।

यदि कोई कहे कि ऐसा क्यों?

व्यक्ति वही है, योग वही है, फिर यह फर्क कैसे पड़ा?

किसी कंपनी को बहुत ज्यादा मुनाफा होता है, बहुत अधिक

आमदनी होती है तो शेयर बाजार में उसके शेयर का भाव बढ़ जाता है या नहीं?

बढ़ जाता है। उसी तरह सम्यक् दर्शन की प्राप्ति जीव के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है। बहुत बड़ा मुनाफा है। उससे कर्म निर्जरा का ग्राफ ऊँचा उठ जाता है। सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद मन में त्याग और प्रत्याख्यान की भावना जगती है। उससे त्याग, प्रत्याख्यान का भी ग्राफ आगे बढ़ता है। बहुत-से लोग त्याग, प्रत्याख्यान से कतराते हैं। कई ऐसे लोग भी हैं जो त्याग, प्रत्याख्यान से घबराते हैं। वे पच्चक्खाण नहीं लेना चाहते। ऐसे लोग कहते हैं कि म.सा. पच्चक्खाण याद नहीं रहता है। कहीं टूट जाये तो पाप के भागी बनेंगे।

मकान बनाते समय क्या ऐसी बात सोची जाती है कि एक दिन वह गिर जाएगा!

कई बार ऐसा भी होता है कि मकान बनाने के पाँच-दस दिन के अंदर ही गिर जाता है। उसमें कोई-न-कोई कमी रह जाती है इसलिए वह ढह जाता है। कुछ मकान दो-तीन साल के बाद गिर जाते हैं। उनमें भी कोई-न-कोई खामी रहती होगी। कई मकान ऐसे भी बनते हैं जो सालों तक नहीं गिरते, पर एक दिन तो वे भी ढह ही जाएँगे! वे भी हमेशा टिकने वाले नहीं हैं।

जिसे यह भय होगा कि मकान गिर जाएगा, क्या वह मकान बना पाएगा? क्या वह मकान में रह पाएगा? मकान बनाते समय व उसमें रहते वक्त शायद ऐसा नहीं सोचा जाता। जब उस समय ऐसा नहीं सोचा जाता तो व्रत-नियम लेते समय ही ऐसा क्यों सोचा जाए! शादी करने के पहले क्यों नहीं सोचा कि शादी कर रहा हूँ, कहीं तलाक न दे दे। घर में पत्नी बनकर आने वाली घर का धन लेकर भाग गई तो? ऐसा नहीं होता, ऐसी बात भी नहीं है। कई जगह ऐसी बातें श्रुतिगत भी हुई हैं। ऐसी घटनाएँ भी घटी हैं कि शादी के दूसरे ही दिन पति का वियोग हो गया। ऐसी घटनाएँ घट जाने पर शादियाँ नहीं होतीं! अतः व्रत-नियम के प्रति ऐसी सोच क्यों रखना?

जैसे कपड़े फट जाने पर सिलाई कर ली जाती है, वैसे ही व्रत-नियम में दोष लगने पर उसका निराकरण आलोचना-प्रतिक्रमण से हो सकता है। यदि डाउट में ही चलते रहेंगे तो कभी बड़ा अकाज भी हो सकता है। थोड़ी देर के लिए मान लें कि उसके हाथ में चिंतामणि रत्न आ जाए और वह सोचे कि शेर

आ गया तो उसके मनोगत भावों के अनुसार शेर आ ही जाए तो क्या होगा? अथवा चिंतामणि रत्न हाथ में आ जाने पर भी वह अविश्वास के कारण उससे लाभ नहीं उठा पाएगा। अत: स्पष्ट है कि व्रत-नियम स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

बंदर के हाथ में कटार आ जाये या बंदर के हाथ में कोई तलवार दे दे तो वह किसका भला करेगा? वह दूसरे का भला करेगा या अपना भला करेगा? वह भला किसी का करे या न करे, अपना व दूसरों का बुरा अवश्य कर सकता है। बंदर की तरह मन का उपयोग होगा तो वह सचमुच में उपयोग नहीं, उसका दुरुपयोग ही है। हमें पुण्य से चिंतामणि रत्न तुल्य मनुष्य जन्म मिला है, किंतु उसका प्रयोग करने की कला हमारे भीतर नहीं होगी तो मिला हुआ रत्न भी हमारे लिए घातक हो सकता है।

'नर तेरा चोला, रत्न अमोला, वृथा खोवे मती ना'

दूसरे रूप में हम विचार करें कि चिंतामणि हमको मिला हुआ है या नहीं?

हमको मिला हुआ है। ये मनुष्य तन चिंतामणि रत्न से कम नहीं हैं। हमको मन मिला है। मन मिलने का मतलब चिंतामणि रत्न मिला है। यह हमको मोक्ष दिलाने में सहयोगी हो सकता है और सातवीं नरक में ले जाने में भी सहयोगी बन सकता है।

उस स्थिति में मन हमें सातवीं नरक के घोर दु:खों का अनुभव भी करा सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि हमको इसका प्रयोग करने की कला नहीं आई। मन का उपयोग करने की कला नहीं आई और सातवीं नरक में जाने का काम पड़ गया।

प्रसन्नचंद्र राजर्षि मन से युद्ध कर रहे थे। वेश साधु का पर मन एक योद्धा का था। श्रेणिक राजा के पूछने पर भगवान ने फरमाया कि यदि इस अवस्था में ये मुनि काल करें तो सातवीं नरक के मेहमान बनेंगे, पर कुछ ही देर बाद देव दुंदुभी बजने लगी। भगवान ने फरमाया कि मुनि को केवलज्ञान हो गया है। ये है मन की ताकत। जैसे ही मुनि की दृष्टि बदली कि मैं तो साधु हूँ, मेरे मन में इतने क्रूर भाव कैसे आ गए, वैसे ही उनका मन जागृत हुआ। मन जागृत हुआ तो उनकी विशुद्धि बढ़ने लगी और इतनी बढ़ गई कि केवलज्ञान हो गया।

जीर्ण सेठ की बड़ी तमन्ना थी कि भगवान गोचरी के लिए उसके घर पर पधारें, मैं उनको भिक्षा दे प्रतिलाभित होऊँ। वह बड़ी तमन्ना से, उत्कंठा से भावना भा रहा था। जहाँ पर भगवान विराज रहे थे, वहाँ जाकर वह भावना नहीं भा रहा था।

हम कहाँ भावना भाते हैं?

हम उपाश्रय में जा भावना भाते हैं कि म.सा. आज मेरे घर से गोचरी करनी है। आज मेरे घर पर चलना है। ऐसी भावना भाना उचित नहीं है। जीर्ण सेठ घर पर ही बैठा भावना भा रहा था। यह विधि मार्ग है। संतों के विराजने के स्थान पर भावना भाना निमंत्रण हो जाता है। वह विधि रूप नहीं है।

गुरुदेव के समय की बात है। नोखा की चोरड़िया बाई जी ने 15 की तपस्या की। वे सुबह-सुबह गुरुदेव के दर्शन करने के लिए आईं और कहा कि आज पारणे में म्हारे घर पधारणो है। मैंने कहा, इस प्रकार निमंत्रण से संतों का भिक्षार्थ जाना कल्पता नहीं है। उन्होंने कहा कि गुरुदेव 16 पच्चक्खा दो। तदनुसार 16 के प्रत्याख्यान हुए। उनके द्वारा जानते हुए भी भावनावश बात कहने में आ गई। पर साधु की मर्यादा है, निमंत्रण से भिक्षा न ले।

जीर्ण सेठ भी भावना भा रहा था। उसकी भावनाओं का स्तर ऊँचा चल रहा था। यदि एक मुहूर्त तक उसकी भावना और ऊँची चढ़ जाती तो उसे केवलज्ञान हो जाता। वह घनघाती कर्मों का क्षय करने वाला बन जाता।

कर्मों का क्षय कैसे हो रहा है?

भावना की पवित्रता से निर्जरा का ग्राफ बढ़ता ही जाता है। हम भी अपने भावों को निरंतर ऊँचा बनाये रखें। उसमें कभी न्यूनता न आने दें। फिर हमारा मन चिंतामणि के तुल्य हो जाएगा। चिंतामणि कहाँ मिलता है? मन वाले जीव कितने हैं? मन वाले जीव आटे में नमक जितने भी नहीं हैं। बिना मन वाले जीव अनंता-अनंत हैं। मन वाले जीव; नैरयिक, देव, तिर्यंच सबको मिला लो तब भी वह संख्या असंख्येय ही होगी। मात्र मनुष्य को लें तो उनकी संख्या संख्यात ही है। केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सकता है। यह सामर्थ्य अन्यों में नहीं है।

पूरे विश्व के नक्शे में ब्यावर को ढूँढने के लिए कहें तो कहाँ मिलेगा ब्यावर! उस नक्शे में तो भारत पाँच या दस सेंटीमीटर जितने स्थान में आ गया,

वैसी स्थिति में ब्यावर कहाँ मिलेगा? जैसे उस नक्शे में ब्यावर का मिलना मुश्किल हो जाता है, वैसे ही अनंतानंत जीवों के बीच मन वाले मनुष्य की संख्या मामूली है। किंतु सामर्थ्य किसका ज्यादा है और शक्ति किसमें ज्यादा है? बिना मन के जीव कभी भी मोक्ष में नहीं जा पाएँगे। मनुष्य तन की संख्या भले कम हो, किंतु मोक्ष मनुष्य को ही मिलेगा। मनुष्य को ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, इसलिए मनुष्य तन को बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। ऐसा भी बताया जाता है कि देवता मनुष्य तन पाने के लिए तरसते हैं।

हमें मनुष्य जन्म मिला है, मनुष्य का भव मिला है, श्रावक का कुल मिला है। कहने के लिए ऐसा भी कहा जाता है कि देव चाहते हैं कि श्रावक का कुल नहीं मिले तो श्रावक के घर में काम करने वाले नौकर-चाकर के घर में मनुष्य जन्म मिल जाये तो मैं धन्य हो जाऊँगा। यदि मेरा जन्म वहाँ हो गया तो कभी-न-कभी संतों का आगमन होने से सत्संग का मुझे मौका मिल जाएगा। मैं यदि श्रावक के वहाँ नौकरी करूँगा तो उसके सहयोग से मुझे धर्मात्मा का सहारा मिल जाएगा। मुझे धर्मात्मा का सहयोग मिल जाएगा। यह भावना कौन रखते हैं? देवगति में रहने वाले देव रखते हैं। हमें जो चीज सहज में मिल गई हम उसका महत्त्व नहीं समझ रहे हैं। हम सोच रहे हैं कि आने वाले समय में मनुष्य तन मिलेगा तब उसको सार्थक कर लेंगे। आपको पुनः मनुष्य तन मिलेगा यह फाइनल है क्या? यदि मिल भी जाए तो कब मिलेगा, यह फाइनल नहीं है। यदि मार्ग भटक गए तो बिना मन वाले जीवों की योनियों में कितनी बार जन्म लेना पड़ेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। बीच में हमारे कितने जन्म हो जायें और हमको कहाँ-से-कहाँ भटकना पड़ जाये, इसे हम आज कहने में समर्थ नहीं हैं। इसलिए मनुष्य तन मिलना, आपके लिए सुंदर अवसर है। इसको खोना नहीं चाहिए। यह विचार करना चाहिए कि कैसे अपने मन को मजबूत बनाऊँ और कैसे मन का ग्राफ ऊँचा उठाऊँ।

मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें बताया गया है कि जापान के लोग काम करने के लिए बहुत तत्पर रहते हैं। वे बहुत फुर्ती से काम करते हैं। इस पर प्रश्न उठा कि वे ऐसा कैसे करते हैं? तो उसका एक राज मिला कि वे जो काम करते हैं उसमें इत्मीनान पूर्वक पूर्ण एकाग्रता से लगते हैं। अपनी पूरी शक्ति के साथ लगते हैं। हम लोग एक काम करते हुए साथ में चार काम और करने के

लिए सोचते हैं। सोचते हैं कि यह भी कर लूं, वह भी कर लूं। ऐसा कर लूं, वैसा कर लूं। हम चार काम की सोचते हैं तो चार की जगह एक काम भी सफल नहीं हो पाता है।

आधी छोड़ पूरी को धावे, आधी रहे न पूरी पावे...

हम एक साथ चार काम करने के लिए सोचते हैं तो एक भी काम में सफल नहीं हो पाते। चारों कामों से वंचित रह जाते हैं। इसलिए जो काम करें उसे ही मन लगाकर करना चाहिए। मुझे विचार आया कि भगवान महावीर के सिद्धांत को उन लोगों ने पकड़ा है। भगवान महावीर का सिद्धांत है कि जो काम करो उसी में अपना उपयोग रखो। उसी काम में अपने को लीन कर लो। भगवान महावीर ने अपने साथियों से कहा कि यदि तुम विचरण कर रहे, गमन कर रहे हो या विहार कर रहे हो या कहीं जा रहे हो तो सिर्फ चलने में ध्यान होना चाहिए। जो क्रिया कर रहे हो उसी में उपयोग होना चाहिए।

खाना खा रहे हैं तो खाने में ही ध्यान होना चाहिए। जो काम करें उसे बड़ी प्रसन्नता से करें। यह मत सोचें कि मुझ पर बोझ आ गया इसलिए करना पड़ रहा है। ऐसा सोचेंगे तो मजा नहीं आएगा। ऐसा सोचने पर मन किरकिरा हो जाएगा और आपके कार्य में सुंदरता भी नहीं आ पाएगी। कार्य में सौंदर्य तब आ पाएगा, जब मन से कार्य होगा। मन उसी में लगा रहेगा, एक ही कार्य को मन लगाकर करेंगे तो उस कार्य में सुंदरता आएगी। उस कार्य में सौंदर्य झलकेगा। एकाग्रता भी सधेगी। बिना एकाग्रता के कहीं भी सफल नहीं होंगे।

अर्जुन और दुर्योधन की बात हमारे सामने आती है। द्रोणाचार्य ने राजकुमारों से बोला कि आज तुम्हारी परीक्षा है। जब दुर्योधन का नंबर आया तो गुरु ने पूछा कि बोलो क्या दिख रहा है। उसने कहा कि मैं सब देख रहा हूँ। बहुत अच्छी तरह से देख रहा हूँ। गुरु ने पूछा कि यहाँ पर जितने लोग बैठे हैं, क्या उन्हें तुम देख रहे हो? उसने कहा कि सब मेरी निगाह में हैं। द्रोणाचार्य ने मन में सोचा कि तुम्हारा रिजल्ट आ गया। द्रोणाचार्य के मन ने पहले ही रिजल्ट दे दिया। द्रोणाचार्य हताश हो गये कि यह सफल नहीं होगा। वे कैसे जान गये कि यह सफल नहीं होगा? दुर्योधन के जवाब से उन्हें पता लग गया कि इसका मन एकाग्र नहीं है और जब तक मन एकाग्र नहीं होगा, तब तक निशाना सधने वाला नहीं है। निशाना साधने में मन की एकाग्रता चाहिए।

व्यापारी वर्ग निशाना साधने में कितना सफल है और क्षत्रिय वर्ग निशाना साधने में कितना सफल है? ज्यादा कौन सफल है?

(सभा से आवाज आई- क्षत्रिय वर्ग ज्यादा सफल है)

हमारी असफलता का कारण है कि हम एक साथ चार कामों में हाथ डालते हैं। चार कामों में हाथ डालने से हम निशाना साधने में सक्सेस नहीं होते। मोक्ष के लिए हमें निशाना साधना पड़ेगा। अभी से हमको उसका अभ्यास करना पड़ेगा। खाना खाते हुए खाने में ही मन होना चाहिए। उसके अलावा दिमाग में कोई बात नहीं आए। आज ही इसका प्रयोग करके देख लेना। आज खाना खाते हुए कुछ भी ध्यान में नहीं आए। कुछ भी याद नहीं आना चाहिए। न घर, न परिवार और न कोई अन्य चीज याद आए, क्योंकि सामने खाना है। विधिपूर्वक भोजन हो।

कैसे खाना खाना, भोजन करने की विधि क्या है? यह तो आपको पता है कि हाथ से कवल उठाना और मुँह में डालकर निगल लेना है, पर क्या इतने मात्र से खाना विधिपूर्वक हो जाएगा?

आपको शायद आश्चर्य होगा कि खाने की भी कोई विधि होती है क्या?

निश्चित ही विधि होती है। उसका कुछ ब्योरा प्रस्तुत है। खाना खाने से पहले मन को पवित्र बनाएँ। परमात्मा का स्मरण करें। कम-से-कम एक मिनट भावना भाएं कि कोई संत महात्मा पधारें, उनसे प्रतिलाभित हो पाऊँ। उसके बाद खाद्य पदार्थों का सम्यक् निरीक्षण करें। जितना हो सके उतना सचित्त पदार्थों का परिहार करें। बहुत शांत भाव से खाएं। न अति जल्दी न अति धीमे। मुँह में कवल डालने के बाद उसे इधर-उधर घुमाएं नहीं। जिस तरफ मुँह में कवल डाला गया है, उधर से ही उसको चबाएं। रसासक्ति रहित हो शरीर को टिकाए रखने के भाव से भोजन हो। यह संक्षिप्त विधि है खाने की।

धन्ना अणगार कैसा आहार लेते थे, इसका वर्णन अनुत्तरोपपातिक सूत्र में विस्तार से प्राप्त है। मैं भी कुछ दिनों पूर्व इसका वर्णन कर चुका हूँ। संक्षिप्त में अभी इतना ही जानें कि वे बचा-खुचा आहार लाते थे। उसको भी वे बहुत प्रसन्नता से खाते थे। उनको उस आहार के प्रति कोई शिकायत नहीं थी कि यह आहार कैसा है। उन्होंने उस वृत्ति को दिल से स्वीकार किया था, अतः

उन्हें जैसा भी मिलता उसको समभाव से खाते थे। यदि जीभ का थोड़ा-सा भाग हटा दें तो खाना कैसा है यह मालूम ही नहीं पड़ेगा। जीभ के अगले भाग पर कोई चीज जाती है तो वह मन को प्रभावित करती है कि यह चीज बढ़िया है। ऐसा होने पर वह उस आहार को राग भाव से करेगा/चाव से करेगा। यह आसक्ति हो गई। आसक्ति से किया गया आहार पापकर्म का उपार्जन करने वाला होगा।

जोधपुर के तिंवरी गाँव के पीरदान जी पारख साधु नहीं बने थे, पर उनकी भावना थी। वृद्ध माता अनुमति देने के लिए तैयार नहीं थीं। एक बार ऐसा प्रसंग आया कि उनकी पत्नी पानी लाने के लिए गई हुई थी और पीरदान जी घर में भोजन के लिए आये। माता ने कहा कि अपने हाथ से भोजन ले ले। वे हाथ से नहीं लेते थे? जो परोस दिया जाए उसे खा लेते थे। जब उनकी माता ने कहा कि तू अपने आप ले ले तो उन्होंने कहा कि मैं बाद में खा लूँगा। माता जानती थी कि यह रमता राम है। बाद में आ ही जाएगा, कोई पता नहीं अत: उन्होंने कहा, ठहर, मैं तुम्हें भोजन परोस देती हूँ। हमने बहुत बार सुना है कि माँ ने बांटा परोस दिया। वैसे कहते हैं कि माँ के हाथ का जहर भी अमृत बन जाता है। माँ यदि बांटा भी परोस दे तो नखरे नहीं करना।

आप नखरे तो नहीं करते हो?

किसी सब्जी में नमक ज्यादा पड़ गया या किसी सब्जी में नमक डाला ही नहीं गया या जल्दबाजी में हलवा बनाने में ध्यान नहीं रहा और शक्कर की जगह नमक डाल दिया तो माँ को कुछ बोलेंगे तो नहीं! नखरे तो नहीं करेंगे कि तुमने नमक ज्यादा डाल दिया, हलवे में भी नमक डाल दिया। माँ के हाथ का भोजन अमृत के समान है। यह कहने में और करने में बहुत बड़ा अंतर आ जाता है। बोलने और हकीकत में बहुत फर्क है। हकीकत में आप क्या खा रहे हैं उसका उतना महत्त्व नहीं है, जितना महत्त्व भावों का है। पीरदान जी ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। वे प्रसन्नतापूर्वक खाकर चले गए। इस प्रकार खानेवाला खाना खाते हुए भी पुण्य का उपार्जन करनेवाला होता है, जबकि आसक्ति पूर्वक खाने से पापकर्म का उपार्जन होगा। प्रसन्नता से भोजन करना, जैसा मिला उसे शांत भावों से ग्रहण करना, पुण्य का उपार्जन करानेवाला होता है।

अपना विषय क्या था? 'कर्म विपाके हो कारण जोइने रे' यानी कर्म

बंधन और कर्म विमुक्ति। हमारा मन, हमारे वचन व कारण की प्रवृत्ति कर्मबंधन व कर्म विमुक्ति के हेतु भूत है। मन आसक्ति की तरफ जाएगा तो कर्मबंधन होंगे। मन त्याग भावना की दिशा में अग्रसर होगा तो पुण्यकारक व निर्जरा करानेवाला बन जाएगा।

सुबाहु कुमार ने पूर्व जन्म में सुमुख गाथापति के रूप में उल्लसित भाव से दान दिया। उसने विपुल रूप से आहार, पानी बहराया। हम कब विपुल रूप से बहरा पाएंगे ? घर में यदि विपुल बना हुआ होगा तो विपुल बहराएंगे।

सुमुख गाथापति ने विपुल आहार बहराया इसका तत्व समझ लेना। ऐसा न हो कि उसकी बात सुनकर संतों को विपुल आहार बहराने के निमित्त से ज्यादा बनाया जाए। संतों के निमित्त ज्यादा बनाना, जल्दी बनाना दोष का कारण है। आहार कितना भी बहराया जाय, उल्लसित भाव से, उत्साह व उमंग से बहराया जाय।

मुझे सरदारशहर की एक बात याद आ गई। वहाँ के अनूपचंद जी चंडालिया एक बार सेवा कर रहे थे। उन्होंने कहा कि म.सा. मेरे घर गोचरी के लिए कोई भी संत पधारेंगे तो डेढ़ रोटी से व्रत निपजा सकता हूँ। मेरे घर पाँच रोटी बनती है। घर में मैं और पत्नी दो ही रहते हैं। मैं तीन रोटी खाता हूँ उसकी जगह दो रोटी खा लूँगा और मेरी पत्नी दो रोटी की जगह डेढ़ रोटी खा लेगी। मैं एक रोटी की ऊनोदरी कर सकता हूँ और आधी रोटी की ऊनोदरी मेरी पत्नी कर सकती है। कितनी स्पष्ट बात कही उन्होंने। उन्होंने यह भी कहा कि साधुओं के लिए हम अधिक नहीं बनाते। कोई लुका-छिपी की बात नहीं है। बहुत स्पष्ट बात कही। यदि आपने पाँच रोटियाँ बनाईं और म.सा. गोचरी के लिए आये और आपने पाँचों रोटियाँ बहरा दी तो अब क्या करना ? क्या दोबारा रोटी बना लेना ?

(आवाज आती है- नहीं, नई रोटी बनाने से आरंभ हो जायेगा। वह लाभ नहीं है)

मैं मन के संदर्भ में एक बात बता रहा हूँ। मन को मित्र मानें, दुश्मन नहीं। सच्चा मित्र हितसाधक होता है। मित्र मन पुण्य का संचय कराने वाला हो सकता है जबकि दुश्मन मन पापकर्म का उपार्जन कराने वाला होगा। मन को मित्र बना लोगे तो वह अच्छा विचार कराएगा, जिससे अच्छा परिणाम आएगा

और दुश्मन मन बुरा सोचेगा तो बुरा परिणाम मिलेगा। मन के विषय में एक बात और उभर रही है, वह यह कि मन दर्पण के समान होता है। जैसे दर्पण पर धूल आ जाने से चेहरा साफ नहीं दिखता, वैसे ही मन पर कालुष्य छा गया तो हम मन को स्पष्ट नहीं देख पाएंगे। यदि मन पवित्र रहा, साफ रहा तो भीतर से चीजें साफ दिखने लग जाएंगी।

धर्मरुचि अणगार दिवंगत हुए। धर्मघोष आचार्य से शिष्यों ने पूछा कि भगवन्! धर्मरुचि अणगार, जो आपके विनीत शिष्य थे, प्रकृति से भद्र थे, उन्होंने मृत्यु को प्राप्त कर कहाँ जन्म लिया? धर्मघोष आचार्य ने बताया कि वे अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए हैं। उनको अवधिज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान नहीं था। श्रुत ज्ञान के बल पर उन्होंने जान लिया कि धर्मरुचि अणगार काल धर्म को प्राप्त कर अनुत्तर विमान में गए हैं। यह पवित्र मन की निशानी है।

नमिराज ऋषि के विषय में हम सुन रहे हैं। एक बार उनका मन भी मलिन हो गया। मलिन होने का मतलब बीमारी से आहत हो गया। वे हाय-हाय, त्राहिमाम्-त्राहिमाम् करने लगे। कहने लगे कि किसी डॉक्टर को बुलाओ, किसी वैद्य को बुलाओ। जब यह विचार करने लगे तो उनके सामने सारी रील अपने आप आने लगी।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

वे अपनी जीवनचर्या देखने लगे। उन्हें दिखने लगा कि मैं युद्ध के लिए गया था। रणभूमि में था। वहाँ पर सुव्रतआर्या आई। उसने कहा कि एक हाथी के लिए अपने भाई से युद्ध करने जा रहे हो? सुव्रतआर्या ने ही कहा कि चंद्रयश, जिसे तुम शत्रु के रूप में देख रहे हो, जिसे शत्रु समझ रहे हो, वह तुम्हारा भाई है। नमिराज ने कहा कि वह मेरा भाई कैसे हो सकता है? चंद्रयश युवराज युगबाहु का पुत्र है और मैं पद्मरथ राजा का पुत्र हूँ। दोनों भाई कैसे हो सकते हैं? तो सुव्रतआर्या ने कहा कि सुनो।

सुव्रतआर्या सुनाने लगी। वही बातें आपके सामने आ रही हैं। सुव्रतआर्या कहती है कि मदनरेखा के रूप को देखकर मणिरथ आपे से बाहर हो गया। वह मदनरेखा के महल तक पहुँच गया, किंतु मदनरेखा ने दरवाजा नहीं खोला। उसने दरवाजा बंद रखा। युगबाहु युद्ध से वापस आ गया। वापस आने के बाद युगबाहु और मदनरेखा उद्यान में थे। वहाँ पर मणिरथ पहुँचा और

एक ही झटके में युगबाहु की गर्दन पर तलवार फेर दी। उस समय गंभीर हालात में मदनरेखा ने संयम रखा व युगबाहु को नवकार मंत्र सुनाया। उसको चार शरण स्वीकार कराई और उसकी गति को सुधारा।

युगबाहु का देहावसान हो जाने पर मदनरेखा विचार करने लगी कि अब मुझे क्या करना चाहिए। वह सोचने लगी कि यदि घर जाती हूँ तो वहाँ मेरी सुरक्षा नहीं है और नहीं जाती हूँ तो चंद्रयश राजकुमार की रक्षा कैसे होगी। वह सोचने लगी कि यदि घर जाती हूँ तो दुष्ट मणिरथ मुझे सुरक्षित नहीं रहने देगा। जब तक युगबाहु, मेरे पति मौजूद थे, तब तक उसको थोड़ा भय था, डर था। अब उसको वह डर भी नहीं रहा। अब उसकी उम्मीदें ज्यादा जग जायेंगी। अब वह मेरे प्रति आशान्वित हो गया कि मैं कहाँ जाऊँगी। मदनरेखा कहती है कि अब उसकी बात माननी पड़ेगी लेकिन कुछ भी हो जाये मैं अपना शील भंग नहीं होने दूँगी। मैं मौत से डरने वाली नहीं हूँ किंतु उनकी बात को नहीं माना तो वह किसी भी स्तर पर उतर सकता है। हो सकता है कि मेरे पुत्र चंद्रयश की ही घात कर दे। कामी, कपटी, लालची लोगों का कोई भरोसा नहीं होता। मैं कितना भी प्रयत्न करूँगी वह दाग लगाने की कोशिश में रहेगा। मदनरेखा ने सोचा मुझे ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे मेरी और राजकुमार की रक्षा हो जाये। उसने सोचा कि ऐसा तब संभव है जब मैं घर नहीं जाऊँ। इस पर तुरंत उसके मन में विचार आया कि हो सकता है कि मुझे न पाने से मेरे प्रति उसका मन खिन्न हो जाए, उसको द्वेष जग जाये जिससे वह मेरे पुत्र की घात कर दे। फिर उसने सोचा कि चाहे जो कुछ भी हो, मेरा जीवन रहे या मृत्यु आ जाए, किंतु अपने भीतर कायरता नहीं आने दूंगी। उसने अपने मन को सुदृढ़ किया। सोच-विचार करके उसने निर्णय किया कि जो होना है, वह होगा। अब मुझे चंद्रयश की चिंता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह अपने कर्मों का भागी है। जैसा उसका पुण्य योग होगा, वैसी स्थिति बनेगी। उसके मन में विचार आया कि गृहत्याग कर देना ही उचित है अर्थात् मुझे यहाँ से चले जाना चाहिए। उसने अपने मन को मजबूत कर गृहत्याग का संकल्प कर लिया। एक हल्की-सी लहर उसके मन में आई कि अभी मैं गर्भवती हूँ। मेरे उदर में, गर्भ में एक बच्चा है। यदि घर त्याग दिया तो उसकी सुरक्षा कैसे होगी। अंत में उसने विचार किया कि जो कुछ भी होगा उसका अपना पुण्य और पाप रहेगा। गर्भ वाली संतान

और चंद्रयश का अपना कर्म है। मुझे उनकी चिंता नहीं करनी चाहिए। पुण्यवान होगा तो उसे कोई-न-कोई सहारा मिल जाएगा। अब मुझे ज्यादा समय नहीं लगाते हुए अपने निर्णय को क्रियान्वित कर लेना चाहिए।

उसने मन को दृढ़ कर लिया। अब कोई संकल्प-विकल्प नहीं। कोई विचार नहीं। कहाँ जाना यह भी सुनिश्चित नहीं है। कोई जगह तय नहीं। कोई जगह निश्चित नहीं है। फाइनल नहीं है। अंधेरी रात में उसने अपने निर्णय के अनुसार गृहत्याग कर दिया। साथ में उसका भाग्य और उसका धर्म है। अन्य कुछ भी वह साथ लेकर नहीं गई। अंधेरी रात में वह निकलकर चलती गई।

'चरैवेति-चरैवेति' यानी चलते रहो, चलते रहो। निरंतर चलते रहो...

उसके जीवन में कठिनाइयाँ आना स्वाभाविक है, क्योंकि वह घोर अंधेरे में चली जा रही है। आज तो सड़कों पर लाइटें खूब रहती हैं लेकिन वह बिलकुल सुनसान राह पर चली जा रही थी। मदनरेखा कोमलांगी थी। उसके अंग बड़े कोमल थे। उसका शरीर बड़ा कोमल था। जमीन पर पड़े कंकड़ और पत्थरों से उसके पैरों में छाले हो गये। पैरों से खून रिसने लगा, फिर भी वह निर्भीक भाव से चली जा रही थी। निडर होकर चली जा रही थी कि मणिरथ को मालूम नहीं पड़ जाये और वह पीछा करके मुझे पकड़ न ले। वह चली जा रही है कि मैं मणिरथ की नजरों से दूर चली जाऊँ। चलते हुए उसके मन में संतोष था कि अपने शील की रक्षा करने में समर्थ बनूँगी। आगे क्या प्रसंग बनता है वह हम यथावसर सुनेंगे। इसी के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

13 सितम्बर, 2021

2

जो शुद्ध करे आत्मा को

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख सम्पत्ति नो हेतु ललना...

कल ऐसा बताया गया था कि वंदना करने से चार फलों की प्राप्ति होती है। पहला है सुख, दूसरा संपत्ति, तीसरा मन की शांति यानी समाधि और चौथा संसार सागर से पार होने का उपाय। ये चारों सेतु महत्त्वपूर्ण हैं।

इंद्रियों का सुख, सुख नहीं है। इंद्रियों से मिलने वाला सुख अल्पकालिक होता है। आत्मिक सुख सर्वकालिक संतुष्टि देने वाला होता है। उसका कोई मुकाबला नहीं है। दूसरा फल बताया गया है संपत्ति। संपत्ति के छह भेद किए गए हैं; सम, दम, तितिक्षा, उपरति, समाधान और श्रद्धा।

इनमें सम का अर्थ है समान भाव और दम का अर्थ है दमन। इंद्रियों का दमन करना। तितिक्षा यानी सहनशीलता। उपरति को विरक्ति का पर्याय कह सकते हैं। उपरति यानी उपरत होना। पुद्गल प्रीत से उपरत होना। ऊपर उठना। जहाँ संशय संदेह नहीं रहते, वहाँ मन समाहित रहता है, शांत रहता है। उसे समाधान कहते हैं। सिद्धांत के प्रति समर्पित भाव का नाम श्रद्धा है।

तीसरा फल, मन की शांति बताया गया है। मन की शांति का अर्थ है मन का सुदृढ़ होना। मन का समर्थ होना। प्राय: लोगों का मन कमजोर होता है। मन कमजोर होता है अपेक्षा, आकांक्षा अभिलाषाओं के कारण। चौथा फल स्पष्ट है। वंदना से होने वाली उपलब्धि में पहली उपलब्धि, पहला फल सुख बताया गया है, अधिकांश जनसमुदाय खाना-पीना, मौज-शौक को ही सुख मानते हैं, पर वास्तव में वह सुख की श्रेणी में नहीं है। यदि खाना-पीना ही सुख होता तो अब तक सभी को सुखी हो जाना चाहिए था क्योंकि हमने जितना खाया है उसका कोई गणित नहीं है। कोई हिसाब नहीं है कि हमने कितना

खाया और क्या-क्या खाया। हो सकता है यह याद रह जाए कि आज क्या खाया, दो-चार दिन का खाया हुआ याद रह जाए, पर यह भी कठिन है, आसान नहीं है। दो-चार दिन बीतने के बाद यह स्मृति बने रहना कठिन है कि क्या खाया, क्योंकि उस ओर ध्यान नहीं रहता। जिस पर ध्यान देना होता है और जिस पर ध्यान दिया जाता है वह लंबे समय तक याद रह सकता है, किंतु जिस विषय पर विशेष ध्यान नहीं देते, जिस विषय पर ध्यान नहीं जाता, उस विषय की लंबे समय तक स्मृति नहीं रह पाती।

हमने क्या खाया, क्या नहीं खाया इसका मुझे कोई लेना-देना नहीं है, किंतु खाने का असर होता है। पुराने लोग कहा करते थे कि 'जैसा खाए अन्न वैसा रहे मन' यानी खाने का असर हमारे मन पर पड़ता है, किंतु हम उस ओर ध्यान कम देते हैं। प्राय: ध्यान नहीं देते, इसलिए हमें उसका कुछ ध्यान नहीं रहता, किंतु हमारे साथ जो बरताव हुआ है वह लंबे समय तक याद रह जाता है।

सुबाहु कुमार के संबंध में पूछा गया कि 'किंवा दच्चा किंवा भोच्चा' अर्थात् उसने क्या खाया, क्या दिया। मतलब पुण्य का बंध खाने से भी होता है और देने से भी होता है। खाने से पुण्य बंध होना कोई जरूरी नहीं है, पर खाने की भावना पर उसका प्रभाव होता है। कौन किस प्रकार से खा रहा है उसके आधार पर ज्ञात हो सकता है कि खाने वाले ने पुण्य बाँधा या पाप का उपार्जन किया। यदि पदार्थों का सेवन आसक्ति से किया जाता है तो वह पाप कर्म का उपार्जन करने वाला होता है। निष्काम भाव से, शरीर को टिकाने के लिए खुराक देना पुण्य व निर्जरा करने वाला होता है।

किरायेदार को किराया चुकाना होता है। एक निश्चित समय पर किराया चुकाने की जरूरत होती है। महीने पर या किसी तारीख पर किराया चुकाने की बात तय होती है। सालाना रूप से भी किराया चुकाया जाता है और महीने से भी किराया चुकाया जाता है। जैसे तय हुए अनुबंध के अनुसार किराया चुकाया जाता है, वैसे ही हम शरीर से अनुबंध करते हैं कि शरीर को मैं खिलाऊँगा, पिलाऊँगा। उसकी देखभाल करूँगा। जब उसके सहयोग की जरूरत नहीं रहेगी तो उसे अन्न-पानी नहीं दूंगा। अन्न-पानी बंद कर दूंगा क्योंकि मुझे अब उसकी जरूरत नहीं है।

हम आगमों को पढ़ते हैं। उनमें साधुओं के लिए उच्छुढ़ शरीरी विशेषण आता है। उच्छुढ़ शरीरी अर्थात् जिन्होंने शरीर के ममत्व को त्याग दिया। शरीर के ममत्व का त्याग करने वाले क्या खाना नहीं खाते? वे भोजन करते हैं, लेकिन शरीर के पोषण के लिए नहीं। वे संयम के पोषण के लिए भोजन करते हैं। यानी शरीर को किराया चुकाते हैं।

हमारा खाना भी त्याग के लिए होना चाहिए। शरीर स्वस्थ रहेगा तो स्वस्थ तन से, स्वस्थ मन से, आत्मा की, धर्म की और शरीर की आराधना करेंगे। शरीर स्वस्थ नहीं होगा तो आराधना में बार-बार परेशानियाँ होंगी, रुकावटें आएंगी, कठिनाइयाँ आएंगी। उससे जिस प्रकार से आराधना की गति चलनी चाहिए, वह नहीं चल पाएगी। पुराने लोगों ने कहा है कि 'पहला सुख निरोगी काया' यानी यदि काया निरोगी है तो सुख है। खाने-पीने से काया की नीरोगता का संबंध नहीं है। काया की नीरोगता का संबंध भावना से है। खाना किन भावों से खाया जा रहा है, यह मुख्य है। साधु काया को खाना देता है पर वह इंद्रियों का निग्रह करते हुए काया को आहार देता है। साधु इंद्रियों को तृप्त करने के लिए नहीं खाता। उसका लक्ष्य एकमात्र संयम की आराधना हो। ऐसी चर्या से चारित्र का निर्माण होता है।

सुबाहु कुमार ने पूर्वभव में क्या किया, क्या खाया, क्या दिया उसकी चर्चा क्यों करनी?

आप विचार करें कि हमें उसकी चर्या से क्या लेना-देना। उसने क्या खाया, क्या पीया, क्या दिया, क्या किया उससे हमें क्या मतलब, किंतु ये बताने के पीछे सोच है कि खाना भी महत्त्वपूर्ण हो सकता है। खाना संसार से तिराने वाला हो सकता है, वहीं वह संसार में परिभ्रमण का कारण भी हो सकता है। हो सकता है कि अभी तक हमारा संसार में जो परिभ्रमण हो रहा है, वह आहार के प्रति आसक्ति से ही हो रहा हो। खाने के प्रति लगाव से ही हो रहा हो।

आसक्ति भावों ने ही हमें संसार में रुलाया है। आसक्ति के वश में व्यक्ति यह सोचता है कि उसे अमुक-अमुक प्रकार के पदार्थ मिलें। मुझे ये खाना पसंद है। मुझे ये अच्छा लगता है। अमुक चीज मुझे प्रिय है। इन विचारों ने जीव को संसार में भटकाया है।

इसका दोष किसको देते हैं?

हम कहते हैं कि 'ठगोरी काया, तूं मने ठग-ठग खाया।'

किसने ठगा?

आसक्ति ने ठगा। इंद्रियां भोग करने वाली होती हैं। वह शरीर को पुष्ट करने वाली हों, यह कोई जरूरी नहीं है, पर हम सोच लेते हैं कि अच्छा खाऊँगा तो ज्यादा मौज, शौक करने का मौका मिलेगा। यह सोच सही नहीं है। साधना से इस सोच में परिवर्तन हो जाता है। न केवल साधना से अपितु वंदना करने से भी बदलाव आ सकता है। वंदना से आत्मबोध पैदा होता है। आत्मबोध प्रेरित करता है कर्त्तव्य के प्रति। वह बताता है कि तुम्हें क्या करना है और तू क्या कर रहा है।

आनंद श्रावक, भगवान महावीर के पास पहुँचा तो भगवान महावीर ने दो प्रकार के धर्म की देशना दी। श्रुत धर्म और चारित्र धर्म। श्रुत धर्म सिद्धांत रूप है और चारित्र धर्म आचरण रूप। भगवान ने चारित्र धर्म भी दो प्रकार का बताया; अगार धर्म और अणगार धर्म। जैसे चारित्र के दो भेद हैं वैसे श्रुत धर्म (सिद्धांत) के दो भेद नहीं हैं। जो सिद्धांत साधुओं के लिए लागू होता है, वही श्रावक के लिए भी अनुकरणीय होता है। जिस सिद्धांत को साधु स्वीकार करता है, वही सिद्धांत श्रावक के लिए भी स्वीकार्य है। जैसे अहिंसा-सत्य। अहिंसा-सत्य रूप सिद्धांत दोनों के लिए समान रूप से मान्य है, किंतु इनका आचरण अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार हो पाता है।

आपका लक्ष्य क्या है? ठीक-ठीक बताना आपका क्या लक्ष्य है? गृहस्थ जीवन का है या संसार से निकलने का है?

(श्रोता- संसार से निकलने का)

आप बोल रहे हो कि संसार से निकलने का है। भले ही आप अभी गृहस्थी का त्याग नहीं कर पा रहे हैं, किंतु भावना मोक्ष प्राप्ति की है। उसके लिए ही धर्मानुष्ठान किए जा रहे हैं। मोहानुरंजित दृष्टि से देखेंगे तो संसार बहुत प्यारा लगेगा। इससे बढ़कर सुंदरता अन्यत्र नजर नहीं आएगी। इससे विपरीत भी एक दृश्य है जिससे लगता है कि इससे वीभत्स रूप दूसरा नहीं होगा। एक उदाहरण से इसे अच्छी तरह समझ सकेंगे।

एक युवक एक लड़की पर मुग्ध हो गया। वह प्रयत्न करने लगा कि

वह मुझे प्राप्त हो जाए। मैं उसे पा लूं। वह सोचने लगा कि उसको कैसे पाऊँ। उसे पाने का कोई योग नहीं बना। वर्षों निकल गए। वर्षों बाद एक दिन मुलाकात हुई। मुलाकात जिस समय हुई उस समय वह स्त्री सड़क के किनारे पड़ी हुई थी। उसके शरीर पर घाव बने हुए थे। उसे चोट लगी हुई थी। घाव से उसका चेहरा नहीं पहचाना जा रहा था। घाव पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। घाव से पीब बह रहा था। उससे दुर्गंध आ रही थी। उसे देखकर युवक को बोध पैदा हुआ कि यही वह रूप है क्या, जिसके पीछे मैं मुग्ध था। जिसके लिए पागल हो रहा था। जिसे देखने के लिए मेरे नेत्र प्यासे रहते थे।

यह संसार का दूसरा रूप है। यहाँ कभी पुष्प खिलते हैं, तो कभी कुम्हला भी जाते हैं। सभी कर्मों के पेड़ से बँधे हुए हैं। जैसा कर्म आता है, वैसा भोग करना पड़ता है। बीमारी भी कर्मों का परिणाम है। असातावेदनीय कर्म का उदय होता है तो दुःख आता है, कठिनाइयाँ आती हैं, परेशानियाँ होती हैं। जब सातावेदनीय का उदय होता है तो सुख-सुविधा की प्राप्ति होती है। जीवन में कठिनाइयाँ नहीं आतीं। सारी चीजें सुलभ होती चली जाती हैं। सारी चीजें सुलभ होना, कठिनाई नहीं होना पुण्य का, सातावेदनीय कर्म का परिणाम है, किंतु ध्यान रहे कि जब तक बैंक में बैलेंस होता है, तभी तक चेक स्वीकार होता है। जिस दिन बैंक बैलेंस जीरो हो जायेगा या न्यून हो जाएगा उस दिन चेक बाउंस हो जाएगा। यानी उसका भुगतान नहीं होगा। वैसे ही जब तक सातावेदनीय कर्म का उदय रहता है, तब तक जीव को साता होती है। जैसे ही वह पूरा हो जाता है, पुण्य छिप जाता है तो कठिनाइयाँ आने लगती हैं।

मदनरेखा की बात भी हम सुन रहे हैं। उसका बहुत पुण्य था। पुण्य के कारण उसने राजा के यहाँ जन्म पाया। राजा के वहाँ शादी हुई। उसे सारे सुख उपलब्ध थे। उसके पास सारी सुविधाएँ उपलब्ध थीं, किंतु वर्तमान में उसको जंगल में रात्रि व्यतीत करनी पड़ रही है।

देख तेरे संसार की हालत क्या हो गयी भगवान
कितना बदल गया इनसान, कितना बदल गया इनसान

इनसान में क्या बदलाव आया?

एक बार कुछ लोग बैठे हुए थे। आपस में बात चल रही थी। उनमें से एक व्यक्ति ने कहा कि म.सा. कुछ भी कहो, इतना तो है कि वर्तमान में धर्म

बहुत बढ़ गया। मैंने कहा, क्या बढ़ गया वापस बोलो, तो वह बोला कि धर्म बहुत बढ़ गया। पहले तेला नहीं होता था, अब 30 दिन की तपस्या करते हैं, मासखमण करते हैं। पहले किसी के तेला भी हो जाता तो बड़ी बात थी, नाचते थे लेकिन अब तो अठाई या तेला रोजाना होते हैं।

अब उससे कौन कहे कि अठाई और तेला करने से ही धर्म बढ़ गया क्या? क्या तपस्या करना ही धर्म है? क्या भूखा रह जाना ही धर्म है? इससे प्रश्न खड़ा होता है कि धर्म की व्याख्या को हम क्या समझ रहे हैं?

रोज भूखे रह जाना ही धर्म नहीं है। यह देखने कि आवश्यकता है कि हमारे अंदर कितना परिवर्तन आया! कितना बदलाव आया!

मुझे गुरुदेव के एक चातुर्मास की बात याद आ रही है। एक बहन कहने लगी कि म.सा. मेरे अंदर मासखमण की भावना तो बहुत है, किंतु घरवाले नहीं करने देते। उसने कहा कि शरीर में साता है, कोई तकलीफ भी नहीं है, पर घरवाले करने नहीं देते। घरवालों का क्या जा रहा है जो करने नहीं देते? वह कहती है कि घरवाले कहते हैं कि चौबीसी करनी पड़ेगी। हमारा हाथ थोड़ा कठिनाई में है। अपन ये सब नहीं कर पाएंगे। नहीं कर पाएंगे तो लोग क्या कहेंगे, इसलिए तपस्या नहीं करना।

अभी धर्म को हमने कितना समझा? चौबीसी गवा दी तब बहुत बढ़िया हो गया धर्म! चौबीसी नहीं गवाई तो धर्म बढ़िया नहीं हुआ। हाथों में मेहंदी रचाई तो तपस्या बढ़िया हो गई। मेहंदी नहीं रचाई तो बढ़िया नहीं हुई।

मेहंदी लगाने से तपस्या होती है क्या?

आजकल दीक्षा लेने पर भी कोई मेहंदी नहीं लगाता। एक जमाना था जब ये चीजें होती थीं, किंतु इनका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। दो बातें और समझने की हैं; एक होता है मन का उल्लास और दूसरा होता है दिखावा। कई लोग धर्म के नाम पर देखा-देखी ज्यादा कर लेते हैं।

'देखा देखी साधे जोग, छीजे काया बधे रोग'

देखा-देखी करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। मैंने शुरुआत में भी बोला कि अपनी जितनी साता है, उसके अनुसार ही तपस्या करनी चाहिए। हमारे कारण से दस जनों का व्याख्यान छूट जाए, दस जनों का ध्यान भंग हो जाए, यह उचित नहीं है। रोज उल्टी हो भी रही है तो अपनी समाधि भंग

नहीं होनी चाहिए। अपनी समाधि दूसरों पर आधारित नहीं होनी चाहिए। तपस्या अपने कर्मों की निर्जरा के लिए है न कि नाम के लिए।

हकीकत में जब तक भीतर समाधि भाव नहीं है, समभाव नहीं है, सम और दम की भावना पैदा नहीं होती है, तब तक धर्म नहीं है।

मैंने कहा कि बताओ कितने धर्म संघ ऐसे हैं जिनमें आपस में किसी तरह का विवाद नहीं है? कितने ऐसे परिवार हैं जिनमें कोई भी विवाद नहीं है? ऊँच-नीच नहीं है? ऊँचा-नीचा नहीं बोला जाता है? बताओ कितने घर हैं?

हजारों घर होंगे पर ऐसे घर कितने हैं, जहाँ पर कोई भी भेदभाव नहीं है? अधिकांश घरों में भेदभाव है, विवाद है। ऐसा है तो फिर धर्म कहाँ है? बताओ धर्म कहाँ है? ऐसा होता है क्या धर्म? इसको कहें धर्म?

धर्म की पहचान तीन जगहों पर होती है; व्यक्ति के घर में, ऑफिस में और बाजार में। जिसकी चर्या इन तीनों जगहों पर सही है, समझ लो कि उसका चारित्र सही है। व्यक्ति की अनुपस्थिति में घर के सदस्य उसके प्रति अहोभाव प्रकट करते हों, अन्तर से उसके प्रति अभिभूत हों तो समझना चाहिए कि व्यक्ति की घर में साख है। इसी प्रकार ऑफिस के कर्मचारी उसके व्यवहार से खुश हों, उनमें कोई भय न हो तो समझा जा सकता है कि व्यक्ति में कुछ धर्म उतरा है। बाजार में जिसकी साख हो, क्रेडिट हो उसे ईमानदार समझा जाता है। समझा जाता है कि उसमें धर्म का प्रकटीकरण हुआ है। इसके विपरीत तीनों जगह यदि उसकी अनुपस्थिति में लोग हँसी उड़ाते हैं, उसके व्यवहार से दु:खी होते हैं तो स्पष्ट है कि वह धर्मस्थान में धर्म तो करता है, धर्म की चद्दर ओढ़ता है पर हकीकत में जीवन व्यवहार में अभी धर्म स्पर्श नहीं हो पाया है।

साथियो! ध्यान रहे, धर्म की महिमा अद्भुत है। धर्म जहाँ प्रकट हो जाएगा वहाँ प्रसन्नता का वातावरण रहेगा। अभय का वातावरण रहेगा।

अत: इन तीन जगहों पर साख है तो समझ लें कि साख है। यदि ईमान नहीं है, सत्य नहीं है तो फिर धर्म किसको कहें! खाली सामायिक की, मुँहपत्ती बाँधी, पौषध कर लिया तो हो गया धर्म! सामायिक कर ली किंतु मन में द्वेष धधक रहा है तो क्या वह सामायिक हो जाएगी? क्या वह क्रिया धर्म को पैदा कर पाएगी?

बहुत स्पष्ट है कि धर्म बढ़ा नहीं है। आडंबर बढ़ा है। क्या बढ़ा है?

आडंबर बढ़ा है। दिखावा हो जाए तो मन खुश हो जाता है। दिखावा नहीं हो तो लगेगा कि चार जनों को मालूम ही नहीं पड़ा कि इस घर में दीक्षा हो रही है, तपस्या हो रही है। ध्यान रहे, दिखावा होने से कर्मों की निर्जरा नहीं होगी। अपने आपको साधेंगे तो कर्मों की निर्जरा होने वाली है अन्यथा एक तरफ तपस्या करते जाएंगे, सामायिक करते जाएंगे और दूसरी तरफ अपने मान की हुंकार करते रहेंगे, बड़प्पन बघारते रहेंगे। मान का पोषण करना चाहेंगे तो धर्म कहाँ से होगा।

जो आत्मा की शुद्धि करे वह धर्म है। धर्म सिद्धांत रूप से एक है। श्रुत धर्म एक ही प्रकार का है पर चारित्र धर्म के दो प्रकार बताए गए हैं; अगार धर्म और अणगार धर्म। ये भेद सामर्थ्य के आधार पर है। जिसकी क्षमता है, सामर्थ्य है वह अणगार धर्म स्वीकारे। जिसके पास उतनी शक्ति नहीं है उसके लिए अगार धर्म है।

कोई वाहन को धीरे चलाता है, कार को धीरे चलाता है। हो सकता है कि वह 100, 120 या 150 की स्पीड में चला ले, किंतु जिस ट्रक में 14-15 टन माल भरा हो, वह ज्यादा रफ्तार से नहीं चल पाएगा। नेशनल हाइवे पर 200 की स्पीड से भी गाड़ी दौड़ सकती है और 90 की स्पीड से भी दौड़ती है। जिस गाड़ी की जैसी शक्ति होगी, वह उसके अनुसार दौड़ पाएगी। रोड के नियम सबके लिए समान हैं। कोई फर्क नहीं है, किंतु उन नियमों का पालन करते हुए कौन कितनी स्पीड से, कितनी रफ्तार से गाड़ी चला सकता है यह व्यक्ति पर निर्भर है। उसी तरह ये अपने पर निर्भर है कि हमने अपने आपको कितना हलका किया। मतलब मैंने अपने मोह कर्म को कितना हलका किया। मोह कर्म सबसे भारी कर्म है। वह यदि हलका होता है तो गाड़ी स्पीड से चलती है। यदि वह भारी है तो गाड़ी की स्पीड कम हो जाएगी। स्पीड पर ब्रेक लग जाएगा। ब्रेक गति नहीं करने देता, इसलिए धर्माराधना के लिए अपनी शक्ति को जगाना होगा, क्योंकि आराधना शक्त्यानुसार ही हो पाती है।

हम संत बन गए तो हमें यह नहीं सोच लेना चाहिए कि हम तीर्थंकर हो गए। यह नहीं सोचना चाहिए कि हमारा कल्याण हो ही जाएगा। अब कुछ करना बाकी नहीं है। ध्यान रखना, हमने मोह के अंश को जीता है। अभी भी बहुत-से कर्म अविजित हैं। उसको हम जीत नहीं पाए हैं। जो अविजित हैं वे

किस समय हम पर धावा बोल दें, कब हमें कठिनाई में डाल दें, कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए भगवान महावीर ने कहा कि–

'चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मन्नमाणो'

अर्थात् एक–एक कदम सावधानी से रखो। एक भी कदम असावधानी से रखना भारी पड़ सकता है। मेघ कुमार साधु बन गया। उत्कृष्ट भाव से वह साधु बना था। वैराग्य भाव से साधु बन गया, किंतु उसका वैराग्य एक रात में ही उड़ गया। उसने विचार किया कि मैं राजकुमार हूँ, ठोकर खाने के लिए साधु नहीं बना हूँ। ऐसा साधु जीवन मुझे नहीं पालना।

साधु ऐसी बात दिमाग में रखेगा तो ठीक प्रकार से साधना नहीं चलेगी। कहीं–न–कहीं दम घुटेगा। अत: ऐसे विचारों को हटाना पड़ेगा। साधुओं के लिए भगवान ने कितना सुंदर कहा है कि 'मुणिणो सया जागरंति' अर्थात् मुनि सदा जागृत रहते हैं।

मुनि सदा जागृत रहता है। उसे जागृत रहना भी चाहिए। गुरु महाराज एक छोटी–सी बात फरमाया करते थे कि एक कुँवर साहब ससुराल गए। उनके लिए खाना बनाया गया। खाना खाते–खाते कुँवर साहब को नींद की झपकी आ गई। इतने में बिल्ली थाली से रोटी ले गई तो बहनें वहाँ गीत गाती हैं। गीत का आशय है– क्या हुआ जँवाई साहब! बिल्ली थाली से रोटी ले गई आप कुछ नहीं कर पाए। जब आप रोटी की रक्षा नहीं कर पाए तो हमारी लाडली की रक्षा कैसे करेंगे?

मुनि को सावधान रहना चाहिए। साधुओं को सावधान रहना चाहिए। मन को सदा सावधान रखो। एक क्षण के लिए भी इधर–उधर न हो। अनादिकालीन संस्कारों से हमारी जो वृत्ति है वह यदि दूर नहीं हुई तो साधुता कैसे फलेगी? इसलिए लक्ष्य होना चाहिए कि छोटी बात हो या बड़ी भीतर क्लेश पैदा न हो। यह सावधानी सदा रखने पर कामयाबी हासिल होती है। एक–दो दिन रखने से नहीं होगी। मन नहीं बदला, सिर्फ पोशाक बदली तो कोई परिवर्तन नहीं आएगा।

इनसान का बदलाव स्वार्थ से परमार्थ की दिशा में होना चाहिए। जो पहले से ही स्वार्थ में जी रहा है, अभी भी स्वार्थ का पोषण कर रहा है, उसने क्या विशेषता हासिल कर ली। वह अभी भी संसार के प्रवाह में ही प्रवाहित हो

रहा है। उसमें वह कितनी भी ऊँचाइयाँ प्राप्त कर ले, कितना भी मार्ग तय कर ले, कोई मायने नहीं रखता क्योंकि एक कलेवर भी पानी में बहता हुआ हजारों किलोमीटर की यात्रा कर सकता है। कलेवर सागर तक चला जाता है। मोह, राग-द्वेष में इनसान बहता रहे तो कोई परिवर्तन नहीं है। परिवर्तन तब होगा जब वह राग-द्वेष नहीं करे। द्वेष उतना घातक नहीं है, जितना घातक राग होता है। उसे जीतने के लिए सतत अभ्यास करना चाहिए।

आनंद श्रावक ने साधु जीवन स्वीकार नहीं किया। वह श्रावक अवस्था में रहा, किंतु सावधान था। जब उसने देखा कि उसका बेटा बड़ा हो गया है, काम संभालने लायक हो गया है, सब लोगों से उसकी जान-पहचान भी हो गई है तो उसने अपने आपको व्यापार आदि से अलग किया। एक दिन ऐसा भी आया जब उसने अपने परिवार के सदस्यों को बुलाकर अपने पुत्र को अपने स्थान पर नियुक्त किया और कहा कि अब जो भी राय-परामर्श लेना है, इससे लेना। कहा कि किसी को कुछ भी पूछना है वह पुत्र से पूछे, मैं भगवान महावीर की धर्म प्रज्ञा को स्वीकार करना चाहता हूँ। इस प्रकार वह अपने आपको धर्म प्रज्ञप्ति में नियुक्त करता है। अब उसका इससे कोई मतलब नहीं है कि घर, परिवार में क्या हुआ या क्या हो रहा है। कोई आकर उससे कुछ कह भी दे तो वह उसका उत्तर नहीं देता। किसी ने कुछ कहा भी तो उससे वह अपने मन को प्रभावित नहीं होने देता। उसे इससे कोई मतलब नहीं है कि टाबर बीमार हो गया, किसी ने उसका ध्यान किया या नहीं किया। उसने किसी की कोई चिंता नहीं पाली और न कोई टेंशन। उसकी वह साधना एक दिन की नहीं थी। वर्षों तक उसने अपने आपको साधा। वह साधु नहीं बन सका किंतु धर्मस्थान पर रहकर आराधना करता रहा। आज पंच महाव्रतधारी साधु मिल जाते हैं, किंतु 12 व्रतधारी श्रावक, क्रियाधारी श्रावक कितने मिलेंगे? आप लाइट लेकर, टॉर्च लेकर ढूँढेंगे तो भी आनंद श्रावक जैसे कितने मिलेंगे?

कपासन में माँगीलाल जी बाधमा एक ऐसे श्रावक थे जो खाना खाने घर जाते थे। शेष अधिकांश समय धर्मस्थान में व्यतीत करते। समझ लो कि उन्होंने धर्म स्थान को ही घर मान लिया। आज हम 60-70 वर्ष के हो जाएं, रिटायर हो जाएं तो भी कौन-सा खंभा पकड़ते हैं, हाथ खड़ा करो। हमारा क्या कर्त्तव्य बनता है? क्या संसार के मोह में पड़े रहना हमारा कर्त्तव्य है या धर्म की

पूंजी संभालने की आवश्यकता है? हमें धर्म के दायित्व का निर्वाह करने की जरूरत है या नहीं? घर की चिंता छोड़ो। घर वाले भी चाहते होंगे कि दादा जी घर से फ्री हो जाएं। घर पर शायद वे आपसे ज्यादा परेशान होंगे। घर में पोता हो गया, पड़पोता हो गया। अब घरों में जगह भी कम है। जगह छोटी पड़ने लगी है। कई जगह दादा जी को अनाथ आश्रम में छोड़ा जा रहा है। इतने पर भी दादा जी नहीं समझे तो क्या समझा जाए?

कई बार कई लोग कहते हैं म.सा., धर्मस्थान में अकेले डर लगता है। सोचना कि जब मरोगे तो साथ में कौन जाएगा! कौन साथ चलेगा! वहाँ पर अकेले ही जाना पड़ेगा। वहाँ अकेले जाना पसंद होगा या नहीं होगा या फिर किसी को साथ में ले जाएंगे? आप मनुहार करेंगे तो भी आपके साथ कोई जाने वाला नहीं है। पत्नी, पुत्र, पौत्र से कहो कि मेरे साथ चलो तो क्या वे साथ चलेंगे? वे कहेंगे कि आप अन्य जो कहो हमें मंजूर है, जैसा कहो मंजूर है पर आपके साथ मरेंगे नहीं। आप कहो तो आपके पीछे बारहवाँ करा देंगे। अच्छा जीमण करा देंगे। गरीबों को वस्त्र दे देंगे। आपके पीछे लाखों रुपये खर्च कर देंगे, किंतु आपके साथ मर नहीं सकते।

ऐसा किसको विश्वास है कि जब मैं मरूँगा तो मेरे परिवार से कोई-न-कोई मेरे साथ मरेगा? है किसी को ऐसा विश्वास? किसको विश्वास है? जिसको विश्वास है वह हाथ खड़ा करे।

सच्चाई यह है कि कोई साथ जाने वाला नहीं है। कोई नहीं जाने वाला है तो किसके पीछे चिपककर बैठे हो आप!

एक बार सोचो। गहन विचार करो कि कौन है मेरा! किसको अपना कहूँ कि यह मेरा है! 'जहाँ देह अपनी नहीं वहाँ न अपना कोय।' शरीर भी साथ निभाने वाला नहीं है। शरीर भी यहीं छूट जाएगा। अकेले ही आगे की यात्रा तय करनी पड़ेगी।

साथियो! थोड़ा-सा विचार करना। सोच लेना। यदि जीवन का मूल्य चाहते हो, जीवन का आनंद चाहते हो, सदा सुख चाहते हो तो मोह से मुँह को मोड़ो। जैसे मदनरेखा ने अपने आपको मोड़ा।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

जंगल में जाते हुए मदनरेखा ने सिंह की गर्जना, सर्पों की फुफकार

आदि भांति-भांति की आवाज अनुभव की। उसे इन सबका साक्षात् प्रत्यक्षीकरण हुआ फिर भी वह डरी नहीं, चलती रही। उसके मन में रुकने का विचार नहीं आया। उसके मन में बस एक ही विचार था कि मैं मणिरथ के शिकंजे से बाहर निकल जाऊँ। उसे नहीं मालूम कि मणिरथ का क्या हुआ। वह बस यह सोच रही थी कि मैं उसके शिकंजे में न आ जाऊँ। उसके पिंजरे में न आ जाऊँ। इसलिए वह चलती जा रही थी। उसका मन निडर था। उसके मन में कोई डर नहीं था। उसके दिल में शांति थी। फुफकार, गर्जना कुछ भी हो, उसके मन में इन सबका भय नहीं है। उसके मन में खाली एक विचार मणिरथ का था। वह गतिशील थी।

जिसका मन निडर होता है उसका चित्त निर्भ्रांत होता है। भय चित्त में भ्रांति पैदा करने वाला होता है। उससे मन की समाधि टूट जाती है। मदनरेखा के हृदय में धर्म था इसलिए कोई भ्रांति नहीं थी।

'जीवुं छे तो धर्म ना काजे, मरवुं छे तो धर्म ना काजे'

जिंदा रहना तो भी धर्म के लिए और मौत भी आ जाए तो कोई गम नहीं। धर्म करते-करते मौत आ जाए तो भी कोई गम नहीं। आराम से मौत आए। धर्म ही मेरे जीवन का प्राण है। वह ही मेरे प्राणों का आधार है। इसलिए मुझे किसी प्रकार का कोई भय नहीं है। सारी परिस्थितियों में अटल होने का नाम है समाधि। किसका नाम है समाधि? चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ आ जाएं, मन ऊपर-नीचे न हो, मन में कुछ भी हलचल न हो, उसी को कहते हैं समाधि। कषायों के शमन से, इंद्रियों के दमन से समाधि होती है।

जिसमें यह समाधि जाती है, उसका मन धन्य-धन्य हो जाता है। आगे क्या स्थिति बनती है, यह समय के साथ विचार करेंगे। आज इतना ही।

15 सितम्बर, 2021

3

तितिक्षा की करें समीक्षा

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख संपत्ति नो हेतु, ललना।

मनुष्य सुख की चाह करता है। संपत्ति के प्रति उसकी अभिलाषा है, किंतु वह सुख और संपत्ति के स्वरूप से अनभिज्ञ है। उसे पता नहीं कि सही रूप में सुख होता क्या है।

सुख उस अवस्था को समझना चाहिए जो इंद्रियों से निरपेक्ष हो। जिसमें इंद्रियाँ लग जाती हैं, इंद्रियों का सम्बन्ध जुड़ जाता है वह आत्मा का सुख नहीं है। वह इंद्रियों का सुख है। बहुत गरमी होने पर हम जिस स्थान पर बैठे हुए हों वहाँ किसी ने ए.सी. का स्विच ऑन कर दिया तो वह स्थान ठंडक देने वाला बन जायेगा। उस ठंडक से सुविधा मिल जाने पर सोच लेते हैं, मान लेते हैं कि हमारे लिए सुख हो गया। हमें साता हो गई, पर यह सुख किससे अनुभव हो रहा है?

यह सुख इंद्रियों से अनुभव हो रहा है। वह चाहे किसी भी इंद्रिय से अनुभव हो रहा हो। जहाँ बीच में इंद्रियाँ आ जाती हैं वहाँ सुख इंद्रियजन्य हो जाता है। वह आत्मा का सुख नहीं हुआ। ए.सी. से हमको सुख हुआ। उससे आत्मा को सुख नहीं हुआ, क्योंकि मेरी सुखाभिकांक्षा की वजह से कई जीवों की घात हुई। उससे असंख्यात तेउकाय जीवों की घात होनी शुरू हो गई। कितने ही जीवों का वध होना शुरू हो गया। इस प्रकार ए.सी. चलाने से थोड़ी-सी साता तो मिली, थोड़ा-सा सुख तो मिला पर अचानक लाइट चली जाए तो क्या होगा? लाइट चली गई तब भी मैं वहाँ बैठूँगा या नहीं बैठूँगा? लाइट चले जाने की स्थिति में भी मुझे बैठना है। पहले भी बैठ सकता था, किंतु इंद्रियों की साता के लिए हमने प्रयत्न किया और इंद्रियों को साता मिल गई, किंतु जीवों को साता नहीं मिलेगी। जीवों को साता तब मिलेगी, जब हम सभी आत्मा को अपनी

आत्मा के समान जानेंगे। जब यह समझेंगे कि मेरी वजह से एक भी जीव को कोई नुकसान न हो। किसी की विराधना न हो। तब देखो कैसा सुख मिलता है, कैसी साता मिलती है और उससे कैसी निर्भयता मिल पाती है। सुपार्श्वनाथ भगवान की वंदना की जाएगी तो मन में जागरण होगा कि जैसे मेरी आत्मा सुख चाहती है, निर्भय रहना चाहती है, वैसी चाह अन्य आत्माओं की भी होती है।

सात महाभय टालतो सप्तम जिनवर देव, ललना

सुपार्श्वनाथ भगवान ने सात भयों को टाला। जो सात भयों को टाल देता है, वह निर्भय होता है। यह ध्यान रखने की बात है कि धर्म की आराधना भय से नहीं, निर्भयता से होती है। जो किसी को भय नहीं देगा वह निर्भय बन सकता है। कुछ लोग बोलते हैं कि भय के बिना धर्म से प्रीत नहीं होती। कोई नरक, तिर्यंच गति की वेदना को सुनता है तो वह भयभीत हो जाता है कि पाप करूंगा तो मुझे ऐसे-ऐसे दुःख भुगतने पड़ेंगे। इसलिए मुझे धर्म की शरण ले लेनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति धर्मबोध को जान ही गया हो, यह जरूरी नहीं है। वह मात्र धर्म क्रियाओं से स्वयं को जोड़ लेता है। यह पहली अवस्था है। दूसरी अवस्था में वह देखता है संसार के समस्त जीव कितने संतप्त हैं, वे दुःखी हैं। दुःख की वेलड़ी निरंतर पनपती जा रही है। इस प्रकार के विचार से उसके अन्तर में धर्मबोध होता है। जैसे, साधु बनने वाले जीवों के बारे में आगमों में संसार के भय से, जन्म-मरण के भय से उद्विग्न होने की बात बताई गई है अर्थात् वह वस्तुस्वरूप का ज्ञाता बन जाता है जिससे संसार की अवस्थाएं भय देने वाली हैं। साधु बनने वाला उससे भयभीत नहीं होता अपितु उससे उद्विग्न होता है। 'अहो दुक्खो हु संसार' की भावना से सुप्त आत्मा जागृत हो जाती है।

उस जागरण से वह सोचती है कि मुझे क्या करना चाहिए? वह सोचती है कि क्या मुझे इस संसार के भय वाले दृश्य में ही रहना चाहिए या आगे बढ़ना चाहिए। उसके अन्तर में स्पंदन होता है कि मुझे निज स्वरूप को प्राप्त करना है। वह समस्त प्राणियों के प्रति समभाव लाते हुए, सबके प्रति मैत्री भाव सँजोते हुए अपना कदम आगे बढ़ाने का प्रयत्न करता है। इसका मतलब है कि वह उस सुख का अभिलाषी बनता है जो सुख उसकी आत्मा से उसे मिलने वाला है। उसका दूसरा नाम आत्मपरिणति है। आत्मपरिणति अर्थात् आत्मा में रमण करना। आत्मा में रमण करने से अनन्य अवस्था आएगी। आत्मपरिणति से सुख की जो

परिणति होती है वह इंद्रियों से नहीं होगी। सुपार्श्वनाथ भगवान को, तीर्थंकर देवों को नमस्कार करना, वंदना करना हमें आत्मपरिणति में ले जाने वाला होता है।

कल मैंने संपत्ति के छह अर्थ बताए थे। शम, दम पर कल चर्चा हुई थी। तीसरा है तितिक्षा। इसका मतलब है कि कितने भी कष्ट आ जाएं उसमें मन विचलित नहीं हो।

ऋषभदेव भगवान को कितने समय के बाद गोचरी का लाभ मिला?

आगम कहता है 'संवच्छरेण भिक्खा लद्धा' यानी एक साल के बाद उनको भिक्षा का लाभ हुआ। यह व्यावहारिक कथन है। इसको नैसर्गिक रूप से लेना चाहिए। उन्होंने जिस दिन दीक्षा ली, उसके बाद एक संवत्सर तक उनको गोचरी नहीं मिली। भगवान महावीर की उम्र 72 वर्ष थी। एकदम 72 वर्ष की ही थी या कुछ माह अधिक थी? कहने में समुच्चय रूप में 72 साल कहा जाता है। एक्जेक्ट वर्षों, महीनों, दिनों, घंटों, मिनटों, सेकंडों में बताने की शायद स्थिति नहीं बनती। वैसे ही ऋषभदेव भगवान ने एक वर्ष तक बिना आहार-पानी के समय बिताया। उन्होंने अपने शरीर की सहनशक्ति से, अपने मन की दृढ़ता से क्षुधा को सहन किया। उतने समय तक आहार-पानी नहीं मिलने पर भी वे सहज रहे। यह तितिक्षा गुण की वजह से सम्भव हुआ। तितिक्षा का गुण हर व्यक्ति में रहता है। कभी हम उसको विकसित कर पाते हैं और कभी नहीं कर पाते। कभी वह शक्ति हमारे भीतर जागृत होती है तो कभी दबी रह जाती है।

रामायण का एक प्रसंग है। ऐसा बताया जाता है कि सीता की खोज करने के लिए सुग्रीव द्वारा कई टोली बनाई गई थी। प्रत्येक टोली को अलग-अलग दिशा में जाकर सीता की खोज करने के लिए बोला गया था। अंगद, जामवन्त और हनुमान जी एक टीम में थे। वे सीता की खोज करते हुए जा रहे थे कि समुद्र आ गया। आगे बढ़ने का रास्ता नहीं दिखा। रास्ता नहीं दिखने पर अंगद कहने लगे कि यहीं से हम पीछे लौट जाएं। यह सुनकर जामवन्त जी कहते हैं कि खाली हाथ जाएंगे! किस मुँह से खाली हाथ जाएंगे! खाली हाथ जाकर वहाँ क्या बोलेंगे! हम निकले हैं सीता माता की खोज के लिए, कार्य को सार्थक बनाने के लिए, खाली हाथ नहीं लौट सकते। लौट तो नहीं सकते किंतु बीच में समुद्र आने से समस्या आ गई कि इसको कैसे पार किया जाए। टीम कुछ विचार नहीं कर पा रही थी। सब चिंतनशील थे। इतने में जामवन्त, हनुमान जी से कहने

लगे कि हनुमान तुम्हारे में शक्ति है। तुम समुद्र लाँघ सकते हो, किंतु तुम्हारी शक्ति शापित है। हनुमान को किसी मुनि का शाप मिला हुआ था कि उन्हें अपनी शक्ति याद नहीं आयेगी। किसी के याद दिलाने पर वह शक्ति याद आ जाएगी। कोई याद नहीं दिलायेगा तो वे अपनी शक्ति को भूले रहेंगे। अपनी शक्ति का उपयोग नहीं कर पायेंगे। जामवंत ने हनुमान से कहा कि तुम्हारे में इतनी शक्ति है कि तुम एक छलांग में समुद्र पार कर सकते हो। यह बात सुनते ही हनुमान जी ने देखते ही देखते विराट रूप बना लिया और समुद्र लाँघ दिया।

हनुमान जी में उतनी शक्ति कहाँ से आई?

शक्ति उनके भीतर थी लेकिन उन्हें याद दिलाना पड़ा। जब तक याद नहीं दिलाया गया, तब तक याद नहीं आया। वैसे ही हमारे भीतर भी बहुत शक्तियाँ हैं। हम उन शक्तियों से अनभिज्ञ हैं। हमें अपने भीतर की शक्तियों का ज्ञान नहीं है।

कौन-सी शक्ति हमारे भीतर पड़ी हुई है?

एक छोटा-सा बालक शास्त्र याद कर लेता है, किंतु एक बड़ा बालक शास्त्र याद नहीं कर पाता, क्योंकि उसने अपनी शक्ति की पहचान नहीं की। उसकी शक्ति को उत्प्रेरित करने वाला कोई मिला नहीं।

पहले चूल्हे में आग ओटा कर (ढककर) राख में रखते थे। उसका बड़ा ध्यान रखते थे। ऊपर की राख व कंडा हटाकर अंगारों को फूँक मारकर प्रज्वलित करते थे। फूँक मारने से आग जल जाती थी। उस आग को जलाने के लिए उसमें फूँक मारने वाला चाहिए। कोई फूँक मारेगा तो ही अंगारा जल पाएगा। नहीं तो वह भीतर ही भीतर धधकता रहेगा, किंतु ज्वाला का रूप नहीं लेगा। वैसे ही हमारे भीतर शक्ति बहुत है, किंतु हम उन शक्तियों से अनभिज्ञ हैं। हमारे भीतर मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान है। हमारे भीतर सभी ज्ञान हैं, किंतु सब ढके हुए हैं। हमने सबको रजाई ओढ़ा रखी है। अब तक हमने रजाई को हटाने का यथोचित प्रयत्न नहीं किया।

भगवान महावीर से गोशालक ने तेजो लब्धि प्राप्त करने की विधि पूछी। भगवान महावीर ने विधि बताई।

गोशालक ने उसे साधी, उसे प्राप्त कर ली। यह बात अलग है कि उसने उसका प्रयोग किस प्रकार किया। गोशालक ने उसका प्रयोग भगवान

महावीर पर ही कर दिया। उससे भगवान महावीर का ज्यादा कुछ बिगाड़ नहीं हो पाया। भगवान महावीर ने उस उपसर्ग को झेल लिया। प्रश्न उठता है कि क्या भगवान महावीर में ऐसा सामर्थ्य नहीं था कि वे उसे रिवर्स कर देते। उनमें सामर्थ्य था, उनमें प्रतिकार की क्षमता थी। वे वापस कर सकते थे किंतु भगवान छहकाय की रक्षा करने वाले थे, इसलिए वे ऐसा कार्य कैसे कर सकते थे? उन्होंने प्रतिकार नहीं किया।

कहने का आशय है कि तितिक्षा हम सब में हैं। हम कई बार सह भी लेते हैं, किंतु कई बार नहीं सह पाते और कई बार ऊपर से तो प्रतिकार नहीं करते, पर मन से प्रतिकार किए बिना नहीं रहते। मन से प्रहार करने लग जाते हैं। ये अवस्था तितिक्षा नहीं है। तितिक्षा उसका नाम है कि मन में भी कोई विचार न आए। कोई ऊहापोह न बने। किसी ने मेरे ऊपर प्रहार किया तो उसके प्रति मेरे भीतर गलत विचार नहीं आए। उसे सहन कर लें। सहन करने की अवस्था को कहते हैं तितिक्षा।

एक सेठ जी सामायिक में बैठे थे। एक लड़का आया और बोला, सेठ सा. मैं कंठा ले जा रहा हूँ। वह उनका स्वर्ण कंठा ले जाता है। लड़का सेठ जी का सोने का कंठा ले गया। कंठा ले जाने पर भी सेठ जी न प्रतिकार किया और न सामायिक के बाद उसकी खोज ही की। उन्होंने प्रतिकार नहीं किया। उसकी खोज नहीं की। कुछ ही समय पश्चात् वही लड़का उनकी दुकान पर आता है उसको गिरवी रखने के लिए। वह कंठे के बदले धन लेने के लिए आया। सेठ ने मुनीम से कहा कि उसे गिरवी रखकर धन दे दो। मुनीम ने कंठा गिरवी रखकर उसको पैसे दे दिए। यद्यपि सेठ के मुनीम ने सेठ से कहा था कि सेठ जी ये कंठा तो आपका ही है, तथापि सेठ ने उसे टाल दिया व लड़के को रकम दिलवा दी। कालांतर में वही लड़का पैसा चुका कर कंठा छुड़ाता है। कंठा छुड़ाकर वह सेठ जी के पास आकर कहता है सेठ सा. यह आपका ही है। उस समय मुझे जरूरत थी। अब आप इसे स्वीकारें। सेठ कहता है कि मेरा कुछ भी नहीं है।

यह सोचने की बात है। उनके भीतर सामर्थ्य था। वे चाहते तो उसकी खोजबीन भी कर सकते थे। पेढ़ी पर आया तब पकड़ भी सकते थे, किंतु उन्होंने वैसा नहीं किया अपितु यह विचार किया कि मैं नगर सेठ हूँ। मेरा कर्तव्य है कि हर सदस्य की जरूरत का ध्यान रखूँ। मैं यदि ध्यान रखता तो उसे बच्चे को कंठा

उठा ले जाने की जरूरत ही क्यों होती! मेरी कमजोरी थी जिससे बच्चे को कंठा उठाकर ले जाना पड़ा। कहा जाता है कि नगर सेठ का दायित्व होता है कि सबके लिए खाने-पीने, रहने और वस्त्र की व्यवस्था करे। नगर सेठ का दायित्व होता था कि वह पता करे कि कौन कमजोर है और उसकी यथोचित व्यवस्था करे। सेठ तो विचार कर रहा है कि मैं कर्तव्य का पालन नहीं कर सका। हम क्या विचार कर रहे हैं? हमारी क्या सोच बनती है? हम अपनी सोच को सँवारें। हम भी सहनशक्ति को बढ़ाएं। ये तितिक्षा हमारी संपत्ति है।

हमारी निधि कौन-सी है? हम उस निधि को छोड़ कौन-सी निधि अपनाना चाहते हैं? कौन-सी निधि देखना चाहते हैं? किस संपत्ति के पीछे दौड़ रहे हैं।

हम सोना, चाँदी, माणक-मोती आदि को ग्रहण करना चाहते हैं। इनको तो हम खोजते हैं, किंतु ये हमारे साथ जाएंगी नहीं। ये चीजें हमारा साथ निभाएंगी नहीं। हो सकता है कि कुछ समय के लिए आपको कुछ साता पहुँचा दें, किंतु अंततोगत्वा ये सारी चीजें यहीं की यहीं रह जाएंगी। इनमें से कोई भी चीज मरते वक्त न तो साथ जाने वाली है न ही जा पाएगी।

एक सेठ को अपने पैसों का बहुत अभिमान था। उसे बहुत घमंड था। भले वह मुँह से बोले या नहीं बोले, किंतु उसको लगता था कि मैं बहुत बड़ा भामाशाह हूँ। मैंने ये दान दिया, वह दान दिया। कभी कोई मिलता तो अपने दान की व्याख्या चालू कर देता। उसको लगता कि मुझसे बढ़कर दानी कौन होगा। एक बार वह गुरुनानक के पास भेंट के रूप में विभिन्न मिठाइयों से भरे थाल लेकर पहुँचा। गुरुनानक ने उसे एक सूई देते हुए कहा, सेठ ये सूई अपने पास रखना। मैं अगले जन्म में तुझसे माँगूं तो वापस देना। सेठ ने सूई ले ली। सेठ उसे लेकर घर गया। उसने घरवालों से बताया कि गुरुनानक ने मुझ पर गहरा विश्वास किया है। उन्होंने सूई देकर कहा है कि अगले जन्म में दे देना इसलिए मैं सूई घर लेकर आया हूँ। घरवालों ने कहा कि अगले जन्म में आप इस सूई को कैसे साथ ले जाएंगे। घरवालों ने कहा कि अगले जन्म में आप सूई दे पाओगे क्या? तब तक वह सूई कितनी सूइयों में बदल जाएगी। तब सेठ जी की अक्ल ठिकाने आई कि मैंने यह क्या किया। वह वापस दौड़ा-दौड़ा नानक जी के पास गया और कहा कि मुझसे भूल हो गई। आपने मुझे अगले जन्म के लिए कहा, किंतु मैं

इसको साथ नहीं ले जा पाऊँगा। गुरुनानक ने कहा कि क्या बात करते हो! एक सूई साथ नहीं ले जा पाओगे फिर इतनी संपत्ति को कैसे साथ ले जा पाओगे? सेठ हतप्रभ हो गया? कुछ बोल नहीं पाया, तब नानक जी ने उससे कहा कि तुम अपनी संपत्ति पर नाज कर रहे हो क्या उसको साथ ले जाओगे? कैसे साथ ले जाओगे? उसे ले जाने का कोई तरीका नहीं है। जब संपत्ति को साथ नहीं ले पाओगे तो उसका घमंड क्यों? उसका ममत्व क्यों? उसके प्रति इतना लगाव क्यों?

इस प्रश्न का उत्तर सेठ के पास नहीं था, पर आपके पास तो होगा? आप ही इसका उत्तर दे दें। मौन क्यों साध ली? बंधुओ! लाख वाले का लाख पर ममत्व है, करोड़ों वालों का करोड़ों पर ममत्व है और अरब वालों का अरबों पर ममत्व है। कहीं-न-कहीं हमारा मन अटका हुआ है। हम जानते हैं कि ये संपत्ति हमारे साथ जाने वाली नहीं है। एक कौड़ी भी हमारे साथ नहीं जाएगी। हमने जितना पैसों से लगाव किया, जितना संबंध धन से जोड़ा, उतना लगाव, उतनी प्रीत परमात्मा से कर ली होती तो उद्धार हो जाता। हमने उससे नाता जोड़ा, जो नाशवान है। उससे नाता जोड़ने के चक्कर में, उससे प्यार करने के चक्कर में हमने भगवान से प्रीत करना छोड़ दिया। हमने इनसान और मानवता का नाता तोड़ दिया। हम पैसा-पैसा करते रहते हैं। लगता है कि पैसा मिल गया तो सब कुछ मिल गया, पैसा मिल गया तो परमेश्वर मिल गया। पैसा मिलने के बाद किसी से कोई मतलब नहीं, भले ही मानवता, दानवता में बदले। हमने इनसान के तरीके से जीना छोड़ दिया। पैसे ने हमारी मन:स्थिति को बिगाड़ दिया। एक बार शांत भाव से सोचें कि पैसे की वजह से हमारा दिल संकुचित हुआ या नहीं! हमारी समाधि खंडित हुई या नहीं! पैसे के बहुत सारे नुकसान साक्षात् देख रहे हैं फिर भी मेरे कहने से आप यह सब त्याग देंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता। आपके लिए इतनी आसान बात नहीं है।

जिसके दिल में कोरोना घुस जाए उसे कौन-सा इंजेक्शन लगाते हो? बाहर का कोरोना तो शायद किसी इंजेक्शन से ठीक हो जाए पर भीतर घुसे कोरोना का इलाज क्या इंजेक्शन कर पाएगा? कोरोना के लिए जो खतरनाक इंजेक्शन लगाया जाता है वह शुगर, बीपी आदि को बढ़ाता है, किंतु मरता व्यक्ति क्या नहीं करता। कहते हैं कि डॉक्टर साहब इलाज कर दो। एक बार तो

आप मुझे बचा लो। पैसा चाहे कितना भी लगे पर एक बार मुझे इस कोरोना से बचा लो। जो चीज शरीर के लिए भयंकर नुकसान करने वाली है, जीवन को खतरे में डालने वाली है, उसे भी व्यक्ति स्वीकार कर लेता है। कई लोग कहते हैं कि कोरोना से नहीं अपितु इन खतरनाक दवाओं से लोग मर गए। दवाओं से मर गए क्योंकि शरीर खोखला है। शरीर में ताकत नहीं है कि उन दवाओं को झेल सके। डॉक्टर भी क्या करें। उसके पास भी अन्य उपाय कहाँ है। मरीज मरे या वह क्या करें?

बंधुओ! सोचना यह है कि मैं इस शरीर के ममत्व को छोड़ने में समर्थ हूँ या नहीं? ममत्व, मूर्च्छा, आसक्ति को छोड़ सको तो मन का कोरोना अवश्य ठीक हो जाएगा। भगवान का उपदेश, आचरण में आ जाए तो ...

भगवान महावीर का उपदेश राजाओं को लगा। कई सेठ-साहुकारों को लगा। ऐसा लगा कि वे मोह-माया से पूर्णतया उपरत हो गए। उन्होंने अपने सारे राज-काज, व्यापार-धंधे को छोड़ दिया। नमिराज ऋषि भी एक झटके में सारा राज-काज छोड़कर दीक्षा के लिए तैयार हो गए।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

नमिराज ऋषि का ज्वलन्त उदाहरण है। उन्हें ज्वर की बीमारी थी। शरीर तप रहा था। जैसे लू लगने से शरीर का तापमान 108 डिग्री पर जाता है वैसे ही उनका शरीर जल रहा था, तप रहा था। डॉक्टरों को बुलाया गया, वैद्यों को बुलाया गया। डॉक्टर के बुलाने पर भी कुछ नहीं हुआ, उनको पीड़ा हो रही है। उनकी बीमारी को ठीक करने में डॉक्टर असमर्थ रहे, किंतु जैसे ही उनका आत्मबोध जगा कि मेरी आत्मा शाश्वत है उनकी पीड़ा दूर हो गई। फिर कितने भी झमेले आए, कितनी भी आपत्तियाँ आईं, उनके सामने कितने भी चित्र आए, किंतु उनकी आत्मा को कोई आपत्ति नहीं हुई। बाहर की चीजें जुड़ने पर कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। ये हमारे साथ होता है। हम बाहर की बातों से, बाहर की अलोचनाओं से ज्यादा दुःखी हो जाते हैं। छोटी-छोटी बातें हमारे शरीर को दुःखी करने वाली बन जाती हैं। परेशान करने वाली बन जाती हैं।

थोड़ा-सा अपने आप विचार करें कि मेरा मन कैसा है? मेरा मन राजहंस की तरह है या बत्तख की तरह? बताओ हमारा मन कैसा है?

(सभा में से कुछ लोग कहते हैं-भगवन्! हमारा मन राजहंस की तरह है)

बत्तख पानी में रहने वाले कीड़ों को चुगता है। और राजहंस क्या चुगता है? राजहंस मोती चुगता है। राजहंस मोती को चुगता है। वह मोती की तलाश करता है। हम क्या चुगते हैं? हम किसको चुगते हैं? हम बत्तख की तरह छोटी-छोटी गंदी बातों को चुगते हैं। ऐसी स्थिति में बताएं कि अपने मन को राजहंस कैसे बना पाएंगे?

हमें कितना अच्छा राजा जीवन मिला है, फिर भी निंदा की बातें करना, विकथा करना छोटी और ओछी बातें हैं। इन बातों में ताकत नहीं है। हम यहाँ तो धर्म तत्व की बातों को चुगने का कहते हैं, पर जब निंदा करने लगते हैं तब धर्म तत्व की बातें याद नहीं आती। कहते हैं कि बावजी, प्रतिक्रमण चढ़ता ही नहीं है। व्याख्यान की बातें म्हाने याद कोनी रेवे। धर्म की बात याद नहीं रहती है और यह बात याद रह जाती है कि उसने मुझे दस वर्ष पहले बहुत परेशान किया था। ऐसी बातें कभी नहीं भूलते हैं।

इस प्रकार हम किसको चुगते हैं? हमारा मन राजहंस की तरह है या बत्तख का रूप है?

आपको राजहंस जैसा कितना ऊँचा जीवन मिला है। आपको राजा जीवन मिला है। मनुष्य का चोला मिला है। देव दुर्लभ जीवन मिला है और क्या कर रहे हैं? मनुष्य जीवन में अच्छा मकान, अच्छी कार, गाड़ी व अन्यान्य सुविधाएँ खूब मिल गईं, पर वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। मनुष्य जीवन इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसमें मोक्ष जाने के लिए भी सारी सुविधाएँ मिली हैं। क्या नहीं मिला? कान से भगवान की वाणी सुनने का मौका मिला है। आँख संतों के दर्शन करने के लिए और हाथ से गोचरी बहराने का अवसर मिला है। पैरों को उद्यम करने का मौका मिला है। आपको सारे साधन मिले हैं। फिर यह अवसर गँवा देना तो गलत बात है। उत्तम साधन प्राप्त हो जाने के बाद भी लाभ नहीं उठावे और कोरे के कोरे रह जायें तो यह मौका पुनः कब वापस आएगा, पता नहीं है। मन मिला राजहंस का और बत्तख के जैसा जीवन व्यतीत करें तो यह उचित नहीं है। ऐसा नहीं करना चाहिए। राजहंस जैसा जीवन मिला है तो मोती ही चुगना चाहिए। हम जिनवाणी को अपने मन में पैठ कराएं। अब तक जो हो गया वह हो गया। उसका रोना न रोएं। ''बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेहु।'' जो हो गया उसकी चिंता मत करना पर आगे से यह लक्ष्य बना लें कि मेरा मन कीड़ों

को नहीं पकड़ेगा। साथ ही गत समय में जो गलत हुआ हो उसका सुधार कर लें।

एक परामर्श देना चाहूँगा कि जैन सिद्धांत बत्तीसी हाथ में रहेगी तो कम-से-कम कुछ बोल, कुछ सिद्धांत तो मालूम पड़ेंगे। यदि जैन सिद्धांत बत्तीसी हाथ में नहीं रहेगी तो इधर-उधर की बातों को ही पकड़ेंगे।

हम सड़ी-गली बातों को ज्यादा पकड़ते हैं या धर्म तत्त्व की बातों को? बावजी, बावजी करने से काम नहीं चलेगा। मुझे कुछ तो पता है कि कौन कैसी बातें करता है। यदि अपने मन को राजहंस बना लें तो धन्य हो जाएंगे, किंतु उसमें अपनी ताकत लगाते नहीं हैं। हमारी शक्ति लगती है सड़ी-गली बातों में। जो सड़ी-गली बातों में अपना मन नहीं लगाएगा, उसका बेड़ा पार हो जाएगा। नहीं तो इस जन्म में यहीं भटकते रहेंगे, मोक्ष मिलने वाला नहीं है। कीड़े-मकोड़े पकड़ते रहेंगे तो अपने भीतर की शक्ति को जगा पाना आसान नहीं होगा। उस शक्ति को जगाएं, जिससे हमारे भीतर का बोध जग सके।

मदनरेखा, सुव्रत आर्या के रूप में नमिराज को वृत्तांत सुना रही है। वह उद्यान से घर नहीं गई, उसने जंगल की राह पकड़ी। वह जंगल में जा रही थी कि एक रात्रि उसको प्रसव पीड़ा चालू हो गई। उसने अपने मन में सोचा कि अब मुझे कोई स्थान, आश्रय ले लेना चाहिए। उसने एक स्थान, आश्रय स्वीकार किया। एक घना पेड़ देखकर उसने सोचा कि यहाँ मेरी सुरक्षा हो जाएगी। यहाँ पर मैं सुरक्षित रह सकती हूँ। उसने घने पेड़ के नीचे अपना स्थान लिया। उसने इड़ा, पिंगला अर्थात् सूर्य-चंद्र स्वर को सम किया। उसको कौन-सी जानकारी थी कि उसने स्वर को साधा।

स्त्रियों को कितनी कलाएं सिखाई जाती थीं? औरतों को कितनी शिक्षाएं दी जाती थीं।

(सभा में से कुछ लोग कहते हैं- बावजी, 72)

नहीं, 72 तो पुरुषों को दी जाती थी। स्त्रियों को 64 कलाएं सिखाई जाती थीं। उसने अपने सूर्य, चंद्र स्वर को सम किया जिससे प्रसव आसानी से हुआ। उसके बाद उठकर वह अपने लाल को देखती है। शुभ लक्षणी संतान का जन्म हुआ है। आकाश में एक चंद्रमा खिल रहा था, सुशोभित हो रहा था और दूसरा चंद्र धरती पर चमक रहा है। अपनी संतान को देखकर उसका हृदय धक-धक करने लगा। जैसे शरीर के अंग फड़कते हैं उसी तरह अपनी संतान का मुख

देखने पर उसका हृदय ज्यादा धड़कने लगा। उसने संतान को अपनी गोद में उठाया। हृदय धड़क ही रहा था। उसे लग रहा था कि कोई-न-कोई घटना घटने वाली है। उसने सोचा कि अभी मेरे साथ पता नहीं क्या-क्या घटनाएं घटेंगी। जो भी घटना घटेगी यह उसकी पूर्व सूचना मिल रही है।

कई बार हमारी आँख या अन्य अंग फड़कने लगते हैं। उस अंग स्फुरणा से आभास हो जाता है कि कुछ समस्या होने वाली है अथवा कुछ अच्छा होने वाला है। उसका हृदय धक-धक कर रहा है तो स्पष्ट है कि कुछ-न-कुछ घटना घटने वाली है। जिनका मन मजबूत होता है, जिसका मन प्रबल होता है और जिसका मन धर्म में रमा हुआ होता है उसके भीतर दुर्घटना होने की पूर्व सूचना देने वाले प्रसंग बन जाते हैं।

उसने सोचा कि इसका कुछ-न-कुछ उपाय करना पड़ेगा। उसने ओढ़नी का कुछ भाग फाड़कर झूला जैसा बनाया। उस झूले में अपने लाल को सुलाकर पेड़ की एक टहनी से बाँध दिया और स्वयं अपनी शुचि के लिए तालाब पर पहुँची। वह तालाब पर अपनी शुचि कर ही रही थी कि अचानक से एक प्यासा हाथी कहीं से गया। उसको मस्ती आई हुई थी। उसने मदनरेखा को सूंड में लिया और आकाश में उछाल दिया। संयोग ऐसा होता है कि एक विद्याधर अपने विमान से निकल रहा था। विद्याधर ने उसको आकाश में उछलते हुए देखा तो उसको झेल लिया और अपने विमान को मोड़ लिया। उस समय मदनरेखा आशंकित हो गई। जैसे दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है, वैसे ही वह सशंकित हो गई। मदनरेखा बेहोश नहीं थी। उसने देखा कि किसी नये आदमी से पाला पड़ रहा है। उसने हिम्मत की और पूछा कि आप कौन हैं? विद्याधर ने कहा कि मैं मणिप्रभ विद्याधर हूँ। मदनरेखा ने पूछा कि आप कहाँ पधार रहे थे? विद्याधर ने कहा कि मेरे पिता मुनि बने हुए हैं, मैं उनके दर्शन करने जा रहा था। मदनरेखा ने कहा कि आपने विमान क्यों मोड़ा? उसने कहा- मैंने सोचा कि संतों के दर्शन से पूर्व तुम्हारे जैसा रत्न मिल गया तो उसकी सुरक्षा कर लूँ। तुम्हें घर पर पहुँचा दूँ। तुम्हारी सुरक्षा करने के बाद दर्शन करने के लिए जाऊँगा। मदनरेखा ने कहा कि आप दर्शन के लिए पधार रहे हैं, संत दर्शन में विलंब या देर करना उचित नहीं है। मदनरेखा ने कहा कि यदि आप जानते हैं कि संत दर्शन से आपको मेरे जैसा रत्न मिला है तो यह आपके हाथ में है और संत

दर्शन के लिए चलने से मुझे भी दर्शन का मौका मिल जाएगा।

मणिप्रभ ने सोचा कि स्त्रियों के मनोनुकूल होता है तो वे जल्दी से कंट्रोल में आ जाती हैं। इसकी मंशा है कि वह भी दर्शन करे तो चलो कोई बात नहीं है। ऐसा सोचकर उसने वापस विमान को मोड़ा। विद्याधर का विमान संत दर्शन की दिशा में बढ़ने लगा। आगे क्या प्रसंग बनता है, यह हम समय के साथ सुन पाएंगे।

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख-संपत्ति नो हेतु, ललना

दो लाभ प्रत्यक्ष बताए। तीसरा लाभ मन की समाधि और चौथा लाभ परभव का सेतु आने वाले भवों में भी शांति देने वाला बनेगा, सुख देने वाला बनेगा। यह वंदना का लाभ बताया गया है। हम भी इनका लाभ लेंगे तो निश्चित ही एक दिन धन्य बनेंगे। आज का इतना ही।

17 सितम्बर, 2021

4

अवसर लाखीणो

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख-संपत्ति नो हेतु, ललना

एक प्रश्न है कि हमें कहाँ तत्पर रहना चाहिए और कहाँ विलम्ब करना चाहिए?

कुछ ऐसे स्थान होते हैं जहाँ पर देर करना, विलम्ब करना फायदे का काम होता है, जबकि कुछ ऐसे स्थान होते हैं, जहाँ पर विलम्ब करने पर हानि उठानी पड़ती है। सामान्य रूप से कहा जाता है 'वैला रा वायोड़ा मोती निपजे' अर्थात् समय पर किया हुआ कार्य फलीभूत होता है। कुछ ऐसी बातें या कार्य होते हैं जिनको समय पर ही करना चाहिए। श्रावण-भाद्रपद में वर्षा होती है और किसान सोचे कि दिसम्बर में बीज बोएंगे तो उसे क्या मिलेगा। दिसम्बर में बीज बोने से किसान को क्या मिलेगा? शायद उसे कुछ भी नहीं मिले। इसलिए कुछ विषय ऐसे हैं जिनको समय पर पूरा करना जरूरी है। समय पर ही करना चाहिए, किंतु कुछ ऐसे विषय भी होते हैं जिनमें विलम्ब करना चाहिए। तत्काल जवाब नहीं देना चाहिए। तत्काल उसका प्रतिकार नहीं करना चाहिए।

नदी में जिस समय पूर आया हुआ हो, उस समय धैर्य रखना चाहिए। उस समय नदी पार नहीं करनी चाहिए। जब नदी का पूर या वेग घट जाए तो नदी को पार करना चाहिए। पूर के समय पानी का वेग तेज होता है। यदि कोई तेज वेग को चीरकर निकलना चाहे तो कभी निकलने में समर्थ हो भी सकता है, किंतु बहुत बार व्यक्ति उस वेग में बह जाता है। उसकी नौका डूब जाती है। नाव डूब जाती है। उसको बहुत नुकसान होता है।

अभी दो-चार दिन पहले ही जानकारी मिली कि एक भाई अपने गाँव के लिए निकल रहा था। वह मोटरसाइकिल के साथ पानी में बह गया। कभी-कभी प्रवाह इतना तेज होता है कि गाड़ियां भी बह जाती हैं। इसलिए नदी का पूर

आया हुआ हो तो थोड़ा रुकना चाहिए। थोड़ा इंतजार करना चाहिए।

आचार्य पूज्य नानालाल जी म.सा. का भावनगर चातुर्मास के पश्चात् रतलाम की तरफ विहार हो रहा था। जिस रास्ते से विहार होना था, उस मार्ग पर पहुँचे तो मालूम पड़ा कि वहाँ पर समुद्र की भरती आई हुई है। समुद्र का पानी आ गया है। उस पानी की भरती को उतरने में कुछ समय लग सकता है। दो-चार घंटे भी लग सकते हैं। चूंकि साधुओं को वैसे ही पानी में जाना नहीं होता तो भरने की वजह से इंतजार करना पड़ा। हमने इधर-उधर देखा कि कोई जगह मिल जाए, जहाँ वह समय निकाला जा सके। देखने पर एक झोंपड़ी नजर आई। हम उस झोंपड़ी में बैठकर इंतजार करते रहे। जब पानी उतरा तब रास्ता तय किया। वह रास्ता भी बहुत खतरनाक था। लगभग तीन फीट चौड़ी पुलिया बनी हुई थी। वह भी बीच से टूटी थी। आगे रेती के बोरे रखे हुए थे। उन बोरों के ऊपर से पार होकर आगे जाना था। कोई थोड़ा-सा भी इधर-उधर हो जाए, असंतुलित हो जाए तो शायद पानी में गिर जाए।

मेरे कहने का आशय है कि वहाँ पर चार घंटे का इंतजार करना पड़ा तो करना पड़ा। नदी का पूर आया हुआ हो और दूसरी तरफ जाना हो तो उसको टालना होगा। यदि ट्रेन में जाना हो वहाँ आप चार घंटे लेट हो जाएं तो क्या होगा? ट्रेन छूट जाएगी।

इसी प्रकार कहीं पाप करने की नौबत आ जाए, झूठ बोलने की नौबत आ जाए, हिंसा करने का प्रसंग आ जाए, चोरी करने की स्थिति आ जाए तो जहाँ तक हो सके बचाव करें। इनको टालते जायें, टालते जायें, टालते जायें। ऐसा कोई भी प्रसंग सामने आ जाए तो उस प्रसंग को टाल देना चाहिए। किसी भी हिंसा की प्रवृत्ति को टाल देने से हो सकता है कि हम उससे बच जायें। समय निकल जाने पर हो सकता है कि उसकी जरूरत ही न रहे। इस तरह टालने से उस हिंसा से बचाव हो सकता है। इसके अलावा अजीर्ण हो गया हो, पहले से खाया हुआ खाना पचा नहीं हो तो भी खाना खाने के लिए इंतजार करें। पहले का खाया हुआ खाना पचा नहीं हो और ऊपर से और खा लिया तो निश्चित बीमारी होगी। यह शरीर के लिए दुःखदायक होगा। इसलिए ऐसे समय में खाने में विलम्ब करें। इंतजार करें और जब अजीर्ण ठीक हो जाए तो खाएं।

भय के स्थान का भी परिहार करना चाहिए। यदि शक्ति है तो भय के

प्रसंग का मुकाबला कर लो, नहीं तो भय के स्थान को टालने की कोशिश करो। जहाँ भय होने वाला है, भयभीत होने वाले हो, वहाँ जल्दी मत करो। ये सारे ऐसे कार्य हैं जिनमें विलम्ब करने से फायदा होता है। लाभ होता है। इन कार्यों में विलम्ब करना ही चाहिए, किंतु कुछ कार्य निश्चित समय पर ही करने चाहिए। जैसा मैंने कहा कि गाड़ी का समय निश्चित है। उस समय यदि आप विलम्ब करोगे तो गाड़ी हाथ नहीं आने वाली है। गाड़ी जाएगी। फिर कहोगे कि हमने सुना था कि विलम्ब करना चाहिए इसलिए विलम्ब किया तो गाड़ी हाथ से निकल गई। यह भी हो सकता है कि गाड़ी के निकल जाने से कभी-कभी किसी को फायदा हो जाये किंतु वह बात अलग है। आपको गाड़ी की यात्रा करनी है तो समय से पहले पहुँचना पड़ेगा। तीन बजकर चालीस मिनट पर ट्रेन रवाना होनी है और आप तीन बजकर पैंतालिस मिनट पर पहुँचे तो ट्रेन चली जाएगी। आपकी ट्रेन छूट जाएगी। ट्रेन छूटे नहीं इसके लिए कुछ समय पहले पहुँचना पड़ेगा। मैं तो कभी प्लेन में उड़ा नहीं किंतु आपको मालूम ही है कि प्लेन पकड़ने के लिए एक-डेढ़ घंटे पहले पहुँचना पड़ता है।

सावधान व्यक्ति कौन है?

एक-डेढ़ घंटे पहले जानेवाला, समय से पहुँचने वाला व्यक्ति सावधान है। कोई ट्रेन की यात्रा करता है तो वह चाहेगा कि मेरी ट्रेन न छूट जाए इसलिए वह पहले जाने की कोशिश करेगा। धर्मध्यान ऐसा प्रसंग है जिसे समय पर करना चाहिए। संत दर्शन, व्याख्यान समय पर करना उचित रहता है।

आज करे सो काल कर, काल करे सो परसों।
फिक्र है किस बात की, हम जियेंगे बरसों।।

यदि उसमें विलम्ब करते रहे, आलस व प्रमाद करते रहे तो समय चूकने पर महत्त्वपूर्ण लाभ से वंचित रहना पड़ेगा। कई लोग कहते हैं फिक्र है किस बात की हम जिएंगे बरसों।

कहते हैं कि अभी क्या जल्दी है साधु बनने की। अभी तो छोटी उम्र है। अभी तो संसार को देखा ही नहीं। पहले संसार को देख लो। दीक्षा लेनी है तो बाद में ले लेना।

भगवान महावीर की वाणी सुनकर जमाली को वैराग्य आ गया तो वह कहता है कि भगवन्! मैं अपने माता-पिता से पूछकर शीघ्र ही आपके पास आ

दीक्षा लेना चाहता हूँ। वह माता-पिता के पास आ यह बात कहता है कि मैंने भगवान महावीर के दर्शन किए। मैंने उनकी वाणी को सुना। यह सुनकर उसकी माता ने कहा कि बेटा तुम धन्य हो गए। तुम्हारी आँखें पवित्र हो गईं। तुम्हारे कान सार्थक हो गए। यहाँ तक तो प्रशंसा की जाती है, किंतु जैसे ही जमाली आगे बढ़ता है, दीक्षा लेने की बात बताते हुए कहता है कि हे माता-पिता, मैंने साधु बनने का निश्चय किया है, वैसे ही उसकी माँ कटी डाल के समान धड़ाम से नीचे गिर जाती है। जैसे मोतियों की माला टूट जाती है, टूट कर नीचे गिरकर बिखर जाती है, वैसे ही जमाली की माँ नीचे गिरी धड़ाम से। उपचार किया गया तो वह होश में आई। होश में आने के बाद उसकी आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी। उसने रोते हुए कहा कि बेटा यह क्या विचार किया तुमने! मेरे कौन-से दस बेटे हैं! तुम एक ही तो हो मेरे बेटे।

माँ उसको समझाती है कि बेटा तुम्हारे बाप-दादा की पीढ़ियों से इतनी संपत्ति है। अगर तेरी सात पीढ़ियां भी नहीं कमाएंगी तो भी संपत्ति का अंत नहीं होने वाला। अत: पहले तुम उसका भोग करो। पहले अपने वंश को बढ़ाने का काम करो। जब बेटा-पोता हो जाए और हम मर जाएं तो तुम दीक्षा ले लेना।

माता की बात सुनकर जमाली कहता है कि माता-पिता, आप विचार करो कि इसका कोई भरोसा है क्या कि आपने जो संपत्ति संग्रहीत की है वह सात पीढ़ियों तक चलेगी? राजाओं का राज भी खिसक जाता है या नहीं?

राज खिसक जाता है। कई राजाओं का राज चला गया। रातोंरात प्रधानमंत्री बदल जाते हैं। रातोंरात मुख्यमंत्री बदल जाते हैं।

बदल जाते हैं या नहीं? नहीं बदले गए क्या?

बदल जाते हैं और बदले भी हैं। बदलने में क्या देर लगती है। हमने बहुतों की बातें सुनीं कि कल तक जिनकी तूती बज रही थी, आज वे लापता हो गए। कहीं भी नजर नहीं आते। कहाँ चले गए पता नहीं। अरबों-खरबों की संपत्ति का दिवाला निकाल दिया और स्वयं ही लापता हो गए।

कौन कहाँ चला गया किसी को मालूम है क्या?

किसी को कुछ भी पता नहीं है कि कहाँ चले गए। मालूम ही नहीं है। संपत्ति का कोई ठिकाना नहीं है। जमाली ने कहा कि माता! धन-वैभव शाश्वत तो है नहीं! ऐसा तो है नहीं कि मैं लिखाकर आया हूँ कि मेरे साथ ऐसा कुछ नहीं

होगा, मुझे अपनी संपत्ति का टोटा देखना नहीं पड़ेगा।

किसको भरोसा है?

(सभा से आवाज आती है- भरोसा किसी को भी नहीं है। न अपनी जिंदगी का, न स्वयं का)

खैर, कुछ बुजुर्गों को भरोसा है कि हमारी पत्नी हमको तलाक नहीं देगी। आप बोलो! भरोसा नहीं है क्या! हाँ तो भरो कि हमारी पत्नी हमें तलाक नहीं देगी। भरोसा है आपको! किंतु जिनकी शादी हुए चार-पाँच साल ही हुए हैं उनको कितना भरोसा है? आप लोगों ने देख-परखकर शादी की या माता-पिता ने आपको खूंटे से बाँध दिया? पहले जमाना था कि लड़का, लड़की को नहीं देखता था। उसके माता-पिता, पारिवारिकजन ही देखते थे। उन्होंने जिस लड़की को देख लिया उसी लड़की से शादी होती थी। अब तो माता-पिता लड़की का चेहरा देखें नहीं देखें, लड़का पहले ही देख लेता है और बात फाइनल कर लेता है।

अभी तलाक के मामले पहले से बढ़े या घटे? पहले से संपत्ति के मामले बढ़े या घटे? पहले से समभाव बढ़ा या घटा?

(श्रोता- समभाव घटा है)

आप ध्यान से बोल रहे हो इसका मतलब ध्यान से प्रवचन सुन रहे हो। पहले स्कूल में कई बार पूछते थे कि बीड़ी नहीं पीओगे तो छात्र कहते थे कि नहीं पीएंगे। गुटखा नहीं खाओगे तो वो कहते कि नहीं खाएंगे। तंबाकू नहीं खाओगे तो भी कहते कि नहीं खाएंगे। इसी क्रम में पूछते कि रोटी नहीं खाओगे तब भी बोल देते कि नहीं खाएंगे। ऐसा इसलिए बोलते क्योंकि ध्यान से सुनते नहीं, किंतु आप ऐसा जवाब नहीं दे रहे हो इसका मतलब है कि आप जागृत हो। आप सबका ध्यान सुनने में है। ध्यान से सुन रहे हो तो अब तपस्या के उपलक्ष में क्या करना बोलो। नवकारसी, सामायिक, पौषध करना? आप कह सकते हो रात को तो पानी पी लिया इसलिए अब उपवास, पौषध, नवकारसी नहीं कर सकता, नहीं तो उपवास कर लेता। अब उपवास नहीं कर सकते हो, यह बात समझ में आ गई, पर क्रोध तो कम कर सकते हो! निंदा, बुराई तो छोड़ सकते हो! झूठ नहीं बोलना, यह तो कर सकते हो। यह काम तो आप कर सकते हो कि किसी को आँख नहीं दिखाना, किसी को अंगुली नहीं दिखाना। कर सकते हो या

नहीं? कर सकते हैं। करेंगे?

यह भी कम तप नहीं है। खाने में एक बार अपने को रोक लेना आसान है, किंतु मुँह में आई बात को रोक पाना आसान नहीं है। बोले बिना रहना संभव नहीं है। बिना बोले काम नहीं चलने वाला। इन सबको रोक लेना, नदी के तेज बहाव के समय डेम बाँधने के समान श्रमसाध्य काम है। भीतर के वेग निकलते समय उस पर नियंत्रण कर लेना 120-140 की स्पीड से चल रही गाड़ी को एकदम से ब्रेक लगाने के समान काम है। 180 की स्पीड से चलती गाड़ी में ब्रेक लगाने वाला ड्राइवर कुशल हो तभी गाड़ी रुकेगी, नहीं तो पलटी खा जाएगी। ऐसा करने से कई गाड़ियों ने पलटी खाई है। हमने यदि भीतर के वेग को एकदम से थाम लिया तो बड़ी बहादुरी का काम होगा। सामान्य बात नहीं है वेग को थाम लेना। वेग को रोक लेना बड़ी शक्ति का परिचायक है। पॉवर पास में होता है तो ही ऐसा संभव है अन्यथा वह बात कइयों को लेकर डूब जाएगी।

हमारी क्या बात चल रही थी?

बात चल रही थी कि तपस्या के उपलक्ष्य में कुछ-न-कुछ करना था। बात चल रही थी कि अच्छा कार्य हो तो उसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। धर्म के कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए क्योंकि आयुष्य का कोई भरोसा नहीं। धन का कोई भरोसा नहीं। जमाली ने अपने माता-पिता से कहा कि धन का कोई भरोसा नहीं। और इसका भी कोई भरोसा नहीं है कि कौन पहले मरेगा और कौन बाद में। बाप के रहते हुए बेटे की मौत हो जाती है। क्रम के हिसाब से ही मौत होगी क्या कि पहले दादा की मौत होगी, बाप की मौत होगी, उसके बाद पोते की मौत होगी। उसने कहा कि मौत का कोई भरोसा नहीं है कि कब किसकी मौत आ जाए। ऐसा नहीं होता कि अभी तो मेरे पिता जी जिंदा हैं तो मेरा नंबर अभी नहीं आएगा!

ऐसी ही सोच में कोणिक पागल हो गया था। कोणिक क्यों पागल हो गया? वह कैसे पागल हो गया?

उसने सोचा मेरे पिता बूढ़े हो गए और अभी भी उन्होंने राजगद्दी नहीं छोड़ी तो मैं राजा कब बनूंगा! क्या बूढ़ा हो जाऊंगा तब राजा बनूंगा! उस स्थिति मैं राजसुख का भोग कब करूंगा! उसने अपने दूसरे भाइयों को बुलाया, उनसे चर्चा की। ग्रुप बनाकर उसने कहा कि अपने को राजसत्ता पर कब्जा करना है।

आज अपने बेटे पर विश्वास करना खतरे से खाली नहीं है। मगध सम्राट निश्चिंत थे। उनको अपने पुत्रों पर विश्वास था, किंतु कोणिक ने विश्वासघात किया और मगध सम्राट को जेल में डालकर स्वयं राजा बन गया।

अफगानिस्तान में क्या हुआ?

अफगानिस्तान का राष्ट्रपति तालिबान से डरकर भाग गया। सैनिक नहीं भाग पाए तो वे पिंजरे में बंद हो गए। अगर राष्ट्रपति वहाँ मौजूद होता तो क्या होता? भगवान को मालूम है कि उसको बंद किया जाता या बंदूक से धड़, धड़, धड़... पता नहीं क्या होता... यह समझने की बात है। सोचने की बात है। खाली मन को तसल्ली देने वाली बात नहीं है। हमारे भीतर भी यही चल रहा है। कभी हम भारतवासी बनते हैं और कभी पाकिस्तानी बनते हैं तो कभी चाइनीज बन जाते हैं। हमारे मन में कभी शांति का झरना बहता है तो कभी पालतू पशु बनते हैं और कभी जंगली जानवर बन जाते हैं। यह हमारी बुद्धि का खेल है। हमारे भीतर क्या-क्या होता है हमें भी उसकी खबर नहीं पड़ती। कभी हम इतने खूँखार बन जाते हैं जिसकी कभी समीक्षा ही नहीं की। इस पर विचार नहीं करते कि हमारा बैठना कहाँ होता है और हम क्या-क्या कर रहे होते हैं। हम ध्यान करें कि हमारी अध्यवसाय धारा में भावना क्या चल रही है, कैसी चल रही है हमारी विचारधारा। यदि खराब विचार आए तो उन पर विराम लगाओ, किंतु कोई शुभ विचार आ जाए तो उस पर विलंब नहीं करना। उसको तत्काल पूर्ण करना चाहिए।

एक कथा परम्परागत रूप से चल रही है। कथा के अनुसार रावण मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ था। उसके शरीर पर तीर लगे हुए थे। खून बह रहा था। वह कुछ घंटों का, कुछ मिनटों का मेहमान रहा होगा तब राम युद्ध विराम की घोषण करते हैं। राम उसके बाद लक्ष्मण से कहते हैं कि भैया लक्ष्मण, रावण बहुत नीतिवान रहा है, उसको नीति का बहुत ज्ञान है, उसके मरने से नीति का ज्ञान उसके साथ चला जाएगा, इसलिए तुम जल्दी जाओ और उससे नीति की शिक्षा ले लो। राम ने यह कहते हुए कहा कि समय बहुत कम है। लक्ष्मण का मन तो नहीं मान रहा था, किंतु भाई की आज्ञा का पालन करना था। उन्हें भाई के कहने पर जाना ही पड़ा। लक्ष्मण, भाई की आज्ञा से चले गये। रावण के पास पहुँचकर लक्ष्मण ने कहा कि रावण, मैं आपसे नीति की शिक्षा लेना चाहता हूँ तो

रावण ने कहा कि चला जा यहाँ से, भाग यहाँ से। तुम शिक्षा के काबिल नहीं हो। लक्ष्मण वहाँ से वापस मुड़े और मन-ही-मन रावण से कहने लगे, जल्दी खत्म हो जाये। मैं तो भाई की आज्ञा से आ गया नहीं तो यहाँ थोड़े ही आता। लक्ष्मण वापस राम के पास लौट आए। उनका चेहरा तमतमा रहा था।

आते ही राम ने पूछा कि क्या हुआ? लक्ष्मण ने बताया कि रावण ने कहा कि तुम योग्य नहीं हो, भाग जाओ यहाँ से तो मैं वापस आ गया। राम ने पूछा कि तुमने क्या पूछा वहाँ जाकर? लक्ष्मण ने बताया कि मैंने रावण से कहा कि मुझे नीति की शिक्षा दो। राम ने फिर पूछा कि तुम कहाँ खड़े रहे तो लक्ष्मण ने कहा कि मैं सिर की तरफ खड़ा था। राम ने कहा कि शिक्षा सिर में भरी रहती है और पैरों से आती है।

माथा से माथा भिड़े तो क्या होता है?

माथा से माथा भिड़े तो सिर फूटेगा।

यह बताओ कि गुरु में ज्ञान कहाँ भरा रहता है?

गुरु का ज्ञान माथे में भरा रहता है किंतु माथा से माथा लगाने से गुरु का ज्ञान मिलेगा नहीं। यदि आप गुरुजी के चरणों में सिर लगाएंगे तो ज्ञान मिलेगा। ज्ञान के प्रवेश का दरवाजा चरण है। कौन-सा दरवाजा है ज्ञान के प्रवेश का? ज्ञान के प्रवेश का दरवाजा विनय है। पैरों से केवल माथा रगड़ने से भी वह विद्या नहीं आती। वह विद्या, वह ज्ञान आएगा विनयपूर्वक गुरु के चरणों की उपासना करने से। कई लोग चरण स्पर्श के दौरान अपने सिर को चरणों में रगड़ने लगते हैं, पैरों को दबाने लगते हैं। यह तरीका सही नहीं है। आपका विनय सही है तो पैरों को दबाने की जरूरत नहीं है। खाली उसको स्पर्श करने की आवश्यकता है। यदि विनय नहीं है तो चरणों को कितना ही दबा लो काम में नहीं आयेगा। इसलिए पहले देखना चाहिए कि मेरा विनय कैसा है। ज्ञान प्राप्ति का स्विच है गुरु के पाँव का अंगुष्ठ। उसका इतना धीरे से स्पर्श किया जाना चाहिए कि गुरु को उस स्पर्श से थोड़ा भी कष्ट न हो।

यह सोचने की बात है। यह बहुत गंभीर बात है कि जो चीज केवल टच करने से आ जाती है, केवल छूने से आ जाती है, वह रगड़ने से नहीं आती। वर्तमान में कुछ दरवाजे ऐसे हैं जो केवल हाथ के अंगूठे का स्पर्श पाते ही खुल जाते हैं। उस दरवाजे को कोई धक्का लगाए तो नहीं खुलेगा। उस दरवाजे को

अंगूठे से स्पर्श किया जाएगा तो अपने आप खुल जाएगा। उस दरवाजे को चाहे कितना ही धक्का लगा लो खुलने वाला नहीं है पर केवल अंगुष्ठ से स्पर्श करवाने पर वह खुल जाता है। कई लोग गुरु चरणों में माथा भी लगाते हैं और हाथ भी लगाते हैं फिर भी उनका दरवाजा खुल नहीं पाता, पर जो विनय भाव से अंगूठे का स्पर्श करता है, उसके लिए दरवाजा खुल जाता है।

गौतम जी आपने शादी कर ली?

(गौतम जी चौधरी (ब्यावर) कहते हैं– हाँ बावजी! शादी हो गई)

कित्ता साल हुग्या?

(गौतम जी चौधरी कहते हैं– शादी किए लगभग 30 साल हो गये)

आपने फेरा खाया याद है

(गौतम जी कहते हैं– हाँ बावजी!)

शादी के पहले झोल चढ़ाया जाता था, पीठी की जाती थी। इतना याद नहीं होगा, पर हथलेवा जोड़ा गया वह याद होगा। हाथ से हाथ मिलने पर ऊर्जा का संचार होता है। विद्युत का प्रवाह कब होता है? विद्युत का प्रवाह रगड़ने से नहीं होता है। उसको क्या बोलते हैं? प्लस, माइनस। पॉजिटिव और नेगेटिव। दोनों का अर्थिंग मिलेगा तो उसका प्रवाह बनेगा। वैसे ही हाथ से हाथ का संबंध जुड़ेगा तो भीतर का प्रवाह बनेगा। वैदिक संस्कृति वालों को कभी वंदन करते देखा होगा! वे दोनों हाथों से दोनों पैरों का स्पर्श करते हैं। दाहिने हाथ से दाहिने पैर का और बायें हाथ से बायें पाँव का। सिर लगाने के लिए दाहिने पाँव का अंगुष्ठ होता है। वहाँ पर सिर लगाने से शक्ति हमारे भीतर प्रवाहित होने लगती है।

मैं बता रहा था कि लक्ष्मण, रावण से शिक्षा लेने के लिए गया था। लक्ष्मण को भी थोड़ा अहंकार था। उसने सोचा कि रावण के पैरों के पास कैसे खड़ा रहूँ। राम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम वापस जाकर उसके पैरों को स्पर्श करते हुए कहना कि आप बड़े नीतिज्ञ हो और मैं आपसे नीति की शिक्षा लेने के लिए आया हूँ। मुझे भाई राम ने आपसे शिक्षा लेने के लिए भेजा है। लक्ष्मण वापस रावण के पास गए और उसके पैरों के पास खड़े होकर कहा कि मुझे नीति की शिक्षा चाहिए तो रावण ने कहा कि ठीक है। रावण ने कहा कि देखो मेरे पास ज्यादा समय नहीं है, मैं ज्यादा बोल नहीं पाऊँगा, किंतु मुझे जो बात याद है

उसको मैं आपको बता देता हूँ कि यदि आपके पास शुभ अवसर आ जाये तो उसे पूरा करने में विलम्ब नहीं करना। यदि उसमें विलम्ब कर दिया तो उसका सार निकल जाएगा। उसका सार खत्म हो जाएगा। उसके बाद वह लाभ मिलने वाला नहीं है। उसके बाद वह अवसर मिलने वाला नहीं है। उसके बाद वैसा अवसर वापस कब मिलेगा कोई पता नहीं है। यदि एकदम सही समय पर, सही मौके पर काम कर लिया तो उसका परिणाम अच्छा मिलेगा। यदि सही समय पर बीज बो दिया तो फसल भी बढ़िया आएगी।

पुराने लोगों से सुना था ''ज्येष्ठ की बाजरी और मोभी पूत कठे पड़िया है।'' टाइम पर पानी बरसे और किसान जेठ माह में समय पर बाजरी बो देता है तो फसल अच्छी होती है। उसी प्रकार पहली संतान का पुत्र रूप में जन्म होना सौभाग्यशालियों को ही नसीब होता है। मारवाड़ी में एक कहावत है जिसे शुरू में भी कह चुका हूँ ''वैला रा वायोड़ा मोती निपजे'' अर्थात् जो समय पर बीज बो देता है, वह अच्छी फसल पा लेता है। यदि कोई कहता है कि अभी वर्षा कम हुई है, वर्षा होने के बाद बीज बोएंगे, थोड़ा और पानी बरसे, थोड़ा और पानी बरसे तब बोएंगे तो समय निकल जाता है और व्यक्ति रीता ही रह जाता है। उसके हाथ से वह सुनहरा अवसर निकल जाता है। इसलिए कहा गया है कि 'वैला रा वायोड़ा मोती निपजे' यानी जिसने मौके का लाभ उठा लिया या जिसने मौके को गँवाया नहीं वह आगे निकल जाता है। जो सोचता है कि अबकी बार करूंगा, अगली बार करूंगा वह सोचता ही रह जाता है। समय की चीज समय के साथ महत्त्व रखती है।

आज तारीख क्या हुई?

आज 18 सितंबर है। हमारे सामायिक की पच्चीस रंगी रूपी यज्ञ का कौन-सा समय है। 2, 3 अक्टूबर को बहुत बड़ा काम करने जा रहा है ब्यावर संघ। इस यज्ञ में सबका सहयोग चाहिए। चाहे ब्यावर शहर का जैन हो या किसी गाँव का जैन या अजैन हो। हिंदू हो या मुस्लिम, जो भाग लेना चाहे ले सकता है। किसी को मना नहीं है। यह तो भगवान का धर्म है। भगवान के दरवाजे सबके लिए खुले हैं। भगवान सबके लिए बराबर हैं। सिक्ख, मुस्लिम या ईसाई किसी धर्म का आदमी सामायिक कर सकता है।

पिपलिया कलां वाले सलीम जी मुस्लिम हैं। वह जब भी आते हैं

मुँहपत्ती लगाकर आते हैं। उन्होंने कई लोगों को कत्लखानों का त्याग करा दिया। जोधपुर चातुर्मास में वे कई मुस्लिम भाइयों को लेकर आये कि अब ये कत्लखाना नहीं चलाएंगे। इसलिए चाहे सिक्ख हो या ईसाई, किसी को मना नहीं है। भगवान सबके लिए बराबर हैं। आप लोगों के लिए वह दिन सुनहरे अवसर के रूप में आ रहा है। इस मौके का सही फायदा उठाना है। यह मौका कहीं हाथ से निकल नहीं जाए। 2 तारीख को प्रारंभ होगा व 3 अक्टूबर को 11.30 बजे के लगभग जवाहर भवन में पूरा होगा। यह मौका है। यह अवसर है।

25 सामायिक साधना करने से हृदय में कैसा भाव और कैसी उमंग उठेगी, यह तो वही अनुभव कर पाएंगे, जो करेंगे। पच्चीस रंग यानी 25 सामायिक के लिए 25 जने, 24 के लिए 25 जने और 23 के लिए 25 जने। ऐसा करते हुए अंत में 1 सामायिक के लिए 25 जने चाहिए। कुल 625 लोगों की आवश्यकता है।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

प्रसंग ऐसा बना कि हाथी द्वारा उछाली गई मदनरेखा को मणिप्रभ विद्याधर ने नभ में झेल लिया और अपने विमान को मोड़ लिया। विमान को मोड़ लिये जाने पर मदनरेखा ने विचार किया कि इनको कहीं और जाना था और मेरे आने से विचार बदल दिया। मदनरेखा ने पूछा कि आप कौन हैं और आपने अपना विमान वापस क्यों मोड़ लिया तो उसने कहा कि मेरा नाम मणिप्रभ विद्याधर है। मैं यात्रा कर रहा हूँ। मदनरेखा ने कहा कि आप कहीं जा रहे थे तो आपने विमान क्यों मोड़ दिया। उसने कहा कि मेरे पिता मुनि बने हुए हैं। मैं उन्हीं के दर्शन के लिए जा रहा था। उनकी पर्युपासना करने जा रहा था, किंतु तुम्हारे जैसा स्त्री रत्न मिल गया तो मैंने सोचा कि पहले इसकी सुरक्षा करना ठीक है। मैंने सोचा कि पहले आपको घर पर छोड़ आऊँ फिर मुनि के चरण स्पर्श के लिए निकलूँगा। उसकी बात सुनकर मदनरेखा ने सोचा कि नीति से काम चलाना चाहिए। जोर जबरदस्ती से काम नहीं चलेगा। उसने बड़े विनम्र भाव से कहा कि मैं भी संतों की चरण वंदना करना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि आपके साथ मैं भी संतों के दर्शन हो कर लूँ बहुत सुंदर बात होगी। विद्याधर ने कहा कि आपकी इच्छा है तो मैं आपको संतों के दर्शन करा देता हूँ। आपकी इच्छा की पूर्ति करा देता हूँ।

वे दोनों संतों के चरण में आये और पर्युपासना की। दोनों, भाव से संतों के चरणों में उपस्थित हो गए। बैठने और पर्युपासना के भावों से दोनों मूकदर्शन लाभ ले रहे हैं।

इतने में एक घटना घटी। अचानक से घड़घड़ाहट की आवाज आने लगी, किंतु मदनरेखा भावों में लीन बैठी हुई थी। वह पर्युपासना में लीन थी। इतने में तेजस्वी विमान नभ से नीचे उतरा। उससे दिव्य प्रकाश प्रकट हुआ। इसके साथ ही उसमें से एक पुरुष आ सभा में उपस्थित होता है। उसे देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये। यह कौन है, कहाँ से आया है, यह जानने के लिए सबकी जिज्ञासा बनी हुई है। यदि आपकी भी जिज्ञासा है तो आपको थोड़ा इंतजार करना पड़ेगा। आज समय थोड़ा है।

कहाँ से आया, कैसे आया, इसका क्या-क्या हेतु है, यह हम समय के साथ जानें। आगे क्या स्थिति बनती है हम समय के साथ विचार करेंगे।

18 सितम्बर, 2021

5

जीवन बगिया महकाएं

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख सम्पत्ति नो हेतु, ललना...

ललना शब्द कुछ लोगों के लिए परिचित है, तो कुछ के लिए अपरिचित। इसका अर्थ यदि हमारे ध्यान में हो तो उसके साथ भावों का सम्बन्ध जुड़ता है। ललना स्त्रीवाचक शब्द है पर इसका प्रयोग बुद्धि के लिए, प्रज्ञा के लिए हुआ है। मनुष्य का जो जीवन संचालित हो रहा है, व्यतीत हो रहा है उसमें बुद्धि का बहुत बड़ा योगदान है। यदि मैं कहूँ कि ड्राइविंग सीट पर बुद्धि बैठी हुई है तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कोई भी विषय जब हमारे सामने आता है तो वह बुद्धि के पास जाता है। बुद्धि उस पर विचार करती है, तर्क प्रस्तुत करती है और निर्णय लेती है। ये सारे कार्य बुद्धि द्वारा संपादित होते हैं। इसलिए बुद्धि को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि हे ललने, सुपार्श्वनाथ भगवान के चरणों में वंदन करो। उनके चरण सुख और संपत्ति देने वाले हैं। उन चरणों की यदि उपासना कर ली, उन चरणों में सच्चे मन से वंदना हो गई तो जीवन सुखी हो जाएगा। यदि बहुत छोटे रूप में व्याख्या करूँ तो संपत्ति का सीधा-सा अर्थ होगा कि जो सम्प बढ़ाये, वह संपत्ति।

सम्प बढ़ाने का अर्थ क्या लेंगे?

इसके दो अर्थ हैं। एक अर्थ प्रचलित है जो जल्दी से हमारे दिमाग पर असर करने वाला है। वह अर्थ है- स्नेह के धागे से जुड़ जाना। यह पहला अर्थ है सम्प का। इसका दूसरा अर्थ होता है अपने आपको जोड़े रखना। सम्प का प्रयोग स्वयं पर हो। देखें कि अब तक मैं स्वयं से जुड़ा या नहीं जुड़ा! मेरे भीतर जितना बिखराव होगा उतना ही बिखराव बाहर भी होगा। मैं जितना सम्प रखूँगा

उतना ही बाहर भी शांति और समाधि का विस्तार हो पाएगा। इसलिए मेरे में सम्प होना बहुत जरूरी है। मेरा अपना सम्प हो गया, स्वयं से जुड़ाव हो गया तो फिर दुराव की स्थिति नहीं रहेगी। दुराव की स्थितियाँ तब होती हैं, जब हम विभाव में होते हैं। जब हम अंदर से बिखरे होते हैं। जब हम टुकड़े-टुकड़े में बिखरे होते हैं तो बिखराव पैदा होता है। यदि एकरूप हो जाएं तो बिखराव पैदा नहीं होगा। बिखराव जैसी स्थितियाँ पैदा नहीं होंगी। कम-से-कम अपने निमित्त से बिखराव नहीं होगा, किंतु विडंबना यह है कि हम एक नहीं होते।

बहुत बार संत एग्जाम्पल देते हैं कि एक अध्यापक ने विद्यार्थी को कुछ टुकड़े दिये और कहा कि इन्हें जोड़कर तुम्हें भारत का नक्शा बनाना है। भारत का नक्शा विभिन्न टुकड़ों में बँटा हुआ है। उन सबको जोड़ें तो भारत का नक्शा बन जाएगा। उस विद्यार्थी को मालूम नहीं था कि भारत के कितने प्रान्त हैं, कौन-सा प्रान्त किस जगह स्थित है। ऐसी स्थिति में उसके लिए नक्शा बनाना कठिन था, दुरूह था।

यहाँ बैठे हुए कितने लोग ऐसे हैं जो भारत का नक्शा बना सकते हैं? अच्छी तरह से नक्शा बना सकते हैं?

हाथ खड़ा करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं समझ सकता हूँ कि कितने जने नक्शा बना सकते हैं! आप सब भारत के ही हैं। भारत में जी रहे हैं। आपने भारत का नक्शा बहुत बार देखा भी होगा, किंतु भारत का नक्शा बनाने के लिए दें तो मेरे खयाल से यहाँ बैठने वालों में से एक प्रतिशत से अधिक लोग शुद्ध नक्शा नहीं बना पाएंगे। मैं एक प्रतिशत भी शायद अधिक बोल रहा हूँ। हमने बहुत बार भारत का नक्शा देखा है। हम स्वयं भारत में जी रहे हैं, किंतु भारत का नक्शा बनाना नहीं आ रहा है। यदि हमें नक्शा बनाना नहीं आ रहा है तो उसका कारण क्या है? कारण स्पष्ट है कि हमारी वैसी प्रवृत्ति नहीं है। और तो और आपसे कोई कह दे कि अपने विचारों का नक्शा बनाओ तो वह नक्शा बनाना भी कठिन होगा। अधिकांश लोग समझ नहीं पाएंगे कि विचारों का नक्शा कैसे बनाऊँ। विचार तो भागते रहते हैं, दौड़ते रहते हैं, उनका नक्शा कैसे बन पाएगा। यह नक्शा बनाना आपके लिए कठिन होगा, मुश्किल होगा।

यदि आपने अपना नक्शा भी व्यवस्थित नहीं किया है तो दुनिया का नक्शा कैसे बना पाएंगे? उसके लिए प्रयत्न व्यर्थ है।

विद्यार्थी की बात हो रही थी कि उससे नक्शा बनाने के लिए कहा गया। विद्यार्थी नक्शा बनाने के लिए दिमागी कसरत करता रहा, किंतु नक्शा नहीं बन पाया। उससे कुछ-न-कुछ छूट जाता। किसी तरफ अधिक हो जाता तो किसी तरफ छूट जाता। अध्यापक ने उससे कहा कि सब कागजों को उलट दो। उसने उलट दिया। पीछे एक मनुष्य का ढांचा बना हुआ था। उसने देखा कि ये मनुष्य के शरीर के अवयव हैं। उसने कागज के टुकड़ों को मनुष्य के आकार में जोड़ना शुरू किया। जैसे ही मनुष्य का आकार जुड़ा, भारत का नक्शा बन गया।

उस विद्यार्थी ने मनुष्य का नक्शा क्यों बना दिया? क्योंकि मनुष्य की आकृति से वह परिचित था। यह एक एग्जाम्पल है कि परिचित काम आसान होता है। जो कार्य परिचित नहीं होता वह कठिन होता है। दुष्कर होता है।

क्रोध करना आसान है। किसी से ईर्ष्या करना आसान है। किसी से तुलना आसान है। किसी की बराबरी करना सरल है, किंतु सम्प करना, निर्लोभ जीवन जीना, अपने भीतर अहंकार पैदा नहीं होने देना बहुत कठिन है। बहुत दुरूह है। यहाँ बैठने वाले सभी लोग, कई बार अपनी समीक्षा करें। सभी में मैं भी शामिल हूँ। एक बार अभी समीक्षा कर लें। यदि हमने कभी ईर्ष्या न की हो तो भी अभी समीक्षा कर लें कि क्या हमने अपने जीवन में कभी किसी के प्रति ईर्ष्या की भावना पैदा नहीं होने दी! प्रश्न होगा कि ईर्ष्या कैसे पैदा होती है? दूसरों की बढ़त देखकर उनके प्रति खिन्नता पैदा होना, दूसरों की प्रशंसा सुनकर मन खिन्न होना, ईर्ष्या का लक्षण है। कहीं यह दशा हमारी तो नहीं है? यदि ऐसा है तो समझ लो कि कहीं-न-कहीं हमारे मन में ईर्ष्या रही है, जबकि वह नहीं होनी चाहिए। यदि हम सिद्धांत को जानेंगे तो ईर्ष्या की भावना पैदा नहीं होगी, किंतु कई बार सिद्धांत को जानते हुए भी जब हमारी चर्या सिद्धांत से बाहर होती है तब हम द्वेष और ईर्ष्या में आ जाते हैं। हमारे भीतर हीन भावना पैदा हो जाती है। हममें अहंकार आ जाता है। यह मनुष्य जीवन के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इस कारण व्यक्ति सुखी जीवन नहीं जी पाता।

सुख मनुष्य के अधिकार की बात है। मनुष्य चाहे तो अपने घर को जला दे और चाहे तो अपने घर को रोशन कर दे। वह दोनों ही काम कर सकता है, किंतु अधिकतर मनुष्य जलाने का काम करते हैं। रोशन करने वाले कम ही होते हैं। जलाने का मतलब क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष करना। इनका होना यानी अपने घर

को जलाना है। अपने सद्गुणों को नष्ट करना है। कभी बैठकर समीक्षा करेंगे तो मालूम होगा कि इनसे हमारे कितने सद्गुण नष्ट हो गए। समीक्षा करेंगे तो मालूम होगा कि क्रोध करने वाला अन्ततोगत्वा पश्चात्ताप करता है। वह पछतावा करता है। क्रोध के समय उसके मुँह से निकली शब्दावली भी उसको लज्जित करती है।

ईर्ष्या तो निरंतर सुलगाने वाला भाव है। जिनके भीतर ईर्ष्या पैदा होती है वे सुलगते रहते हैं। लोग कहते हैं कि उनको एसीडिटी है। यदि आज लोगों का सर्वे किया जाए, सारे भारतीयों का सर्वे किया जाए तो एसीडिटी की बीमारी बहुतों को होगी। डॉक्टर प्रयत्न करते हैं उस बीमारी को मिटाने का, किंतु आयुर्वेद ग्रंथ कहते हैं कि इस बीमारी का मूल है ईर्ष्या, द्वेष व क्रोध। यदि इनको हटा दो तो एसीडिटी नहीं होगी। खाने से होने वाली एसीडिटी की बीमारी स्वयं ठीक हो सकती है, किंतु ईर्ष्या, द्वेष व क्रोध से पैदा होने वाली बीमारी भावात्मक है। भावों और विचारों का बार-बार आघात होते रहने से वह पैदा होती है, बढ़ती है। उसका समाधान दवाइयों से नहीं हो सकता। उन पर मरहमपट्टी नहीं कर सकते। थोड़े समय के लिए दवाइयाँ कारगर हो सकती हैं, किंतु अन्ततोगत्वा वे भी निष्फल हो जाती हैं। वे काम करना बंद कर देती हैं।

उसका उपचार है मधुरता, किंतु हमारे भीतर माधुर्य पैदा होता कहाँ है। मधुरता पैदा होती है अहंकार हटने पर। अंहकार हटेगा तो मधुरता प्रकट होगी। जब तक अहंकार, घमंड पैदा होता रहेगा, बना रहेगा, तब तक तथाभूत माधुर्य पैदा नहीं होगा। जिसके भीतर माधुर्य का झरना झरता है उसको एसीडिटी की बीमारी सहन नहीं होती।

सभी चाहते हैं कि हर इनसान मुझसे मधुर व्यवहार करे। सबकी इच्छा रहती है कि हर इनसान मुझसे मधुरता रखे, किंतु वापस पलटकर देखने की बात आती है कि मैं किसके साथ कितना मधुर व्यवहार करता हूँ। हमारी चाह जरूर है कि लोग मेरे साथ मधुर व्यवहार करें, किंतु हम यह सोचने को तैयार नहीं हैं कि मैं हर किसी के साथ मधुरता का व्यवहार करूंगा। यदि हम थोड़ी देर के लिए मधुर व्यवहार करने के लिए सोच भी लेते हैं तो समय आने पर उस विचार को भूल जाते हैं। हमारा विचार वहाँ से भाग जाता है, दूर हो जाता है और अशोभन व्यवहार हो जाता है।

यह जीवन की सच्चाई नहीं है। यह जीवन की गड़बड़ी है इसलिए जीवन का जो सच्चा सुख मिलना चाहिए वह नहीं ले पाते हैं। मनुष्य जीवन को राजा जीवन कहा गया है। इसे सबसे ऊँचा जीवन कहा गया है। हम सोच सकते हैं कि यदि सबसे ऊँचा जीवन इतना दु:खी है तो उससे निम्नतम जीवन जीने वाले कितने दु:खी होंगे।

प्रश्न उठता है कि मनुष्य दु:खी क्यों है?

मनुष्य के दु:ख का कारण है दूसरों की तरफ देखना। वह दूसरों की तरफ देखकर स्वयं को दु:खी कर लेता है। वह दूसरों की बढ़त देखकर स्वयं को दु:खी कर लेता है। दूसरों की प्रशंसा होती देख वह दु:खी हो जाता है। उसकी सोच है कि दूसरा मुझसे ऊँचा नहीं उठे। सब में मेरी संप्रभुता रहनी चाहिए, किंतु विचार करने पर ज्ञात होता है कि रावण की संप्रभुता भी एक समय तक चली। उसके बाद नहीं रही। चक्रवर्ती की संप्रभुता भी एक समय तक के लिए होती है। उसके बाद उसकी संप्रभुता समाप्त हो जाती है। कृष्ण वासुदेव की संप्रभुता का डंका चलता था। तीन खंडों में उनके आज्ञा की धारा प्रवाहित होती रही, किंतु एक दिन वे भी दर-दर के यात्री बन गए। उनकी द्वारिका का विनाश हो गया। वे जंगलों में खाक छानते रहे। कहाँ जन्म लिया, कहाँ कर्म किया और कहाँ भटके। कहा जाता है-

कहाँ जाया कहाँ उपन्या, कहाँ लडाया लाड।
क्या जानूं क्या होवसी, कहाँ पड़ेगा हाड।।

कहाँ जन्म लिया और कहाँ अन्त हुआ? ये हड्डियाँ कहाँ जाकर गिरेंगी पता नहीं है। जीवन का अंत कहाँ होगा पता नहीं। इस जीवन का उपयोग क्या होना चाहिए? जन्म आपके और मेरे हाथ में नहीं था। मरेंगे कब ये भी हमारे हाथ में नहीं है। यह डिसीजन हमारे पास नहीं है। किसी के मौत का निश्चित टाइम किसी को मालूम है तो हाथ खड़ा करें कि इतने बजकर इतने मिनट और इतने सेकेंड पर मेरी मृत्यु होगी। अमुक जगह पर मेरी मृत्यु होगी। है किसी को मालूम? है तो बता दो। सब अंधेरे में चल रहे हैं। आगे कौन-से खड्ढे में गिरेंगे कुछ पता नहीं। उसका कोई ठिकाना नहीं है। जन्म-मरण हमारे हाथ में नहीं है, किंतु जीवन हमारे हाथ में है। जन्म और मरण के बीच का समय हमारे हाथ में है। उसका उपयोग हमें करना है। किस रूप में करना है, यह हमारे हाथ में है। उसका

उपयोग हम ही करने वाले हैं। कोई और नहीं करेगा। जो अपने जीवन का सही उपयोग कर सकता है, वह जीवन को रोशन कर सकता है।

एक तो दीपक की तरह जलते हैं और एक केरोसीन डालकर आग लगाते हैं। घी का दीया भी जलता है और केरोसीन का दीया भी जलता है। केरोसीन का दीया भयंकर जलेगा पर रोशनी नहीं दे पाएगा। वह ज्योति नहीं ज्वाला का रूप लेता है। घी, दीये में भी जलता है और श्मशान में भी घी को जलाया जाता है। श्मशान में जलाया गया घी थोड़ी देर में जलकर खत्म हो जाता है। दीपक का घी घर को रोशन करता है। दीपक हमें प्रकाश देता है। वैसे ही प्रयास करना चाहिए कि हम जीवन को रोशन करें। हमें समीक्षा करनी है कि हमने जो जिंदगी जी है उसे जी कर सुख पाया या दुःख!

हममें से बहुत-से लोग 50, 60, 70, 80, 90 साल के हो सकते हैं। एक गणित लगाएं, कैलकुलेशन करें कि किसी की उम्र 80 साल है, उसने अपने जीवन के कितने क्षण सुख में बिताए। उसके कितने घंटे सुख में बीते। उसके सुख का समय निकालें। रात के नींद के छह घंटे सुख के हो सकते हैं, किंतु वह भी तब, जब सही नींद आए। नींद आने के लिए भी मेहनत करनी पड़ती है। नींद आने के लिए भी प्रयत्न करना पड़ सकता है। मान लो कि छह घंटे नींद आती है तो 80 वर्ष में कितने घंटे नींद मिली। छह घंटे के औसत से एक साल में 2190 घंटा सुख से रहा। दिन 24 घंटे का होता है तो छह घंटे उसका चौथा हिस्सा हुआ। बहुत गहराई में जाने की जरूरत नहीं है। सीधा चौथा हिस्सा करो। 80 वर्ष की उम्र में चार का भाग लगा दो तो बीस वर्ष उसके सुख के निकले।

अब मेरा प्रश्न यह है कि उसने 20 वर्ष सुख से निकाले, पर उसने उस सुख का संवेदन कितना किया? वह आज बेहोश हो जाए, शराब का नशा कर ले, बेहोशी या नशे से उसे दुःख का संवेदन न हो तो क्या उसे सुख माना जाय?

हकीकत में वे 20 वर्ष सुख में नहीं, बेहोशी में निकले।

हो सकता है कि हमारे जीवन में लड़के की शादी हुई हो, पहली बार संतान का, पोते का जन्म हुआ हो या पहली बार किसी कंपनी का मोटा काम मिला हो तो कुछ घंटों, कुछ मिनटों के लिए अच्छी अनुभूति हुई हो, किंतु वह भी सही सलामत रह नहीं पाई। इधर लड़के की शादी करने जा रहा था उधर टेंशन की कोई बात आ गई। बीच में कोई झमेला खड़ा हो गया। उस झमेले को

मिटाते-मिटाते शादी तो हो गई, पर शादी का जो आनंद मिलना था वह नहीं मिल पाया। घर में संतान की पैदाइश हुई। हमने विचार किया कि उसका अच्छा जन्मोत्सव मनाएंगे लेकिन घर में इनकम टैक्स की रेड पड़ गई। ऐसी बहुत सारी परिस्थितियाँ सामने आती हैं। हो सकता है पुण्य योग से ऐसी स्थितियाँ हमारे सामने नहीं आई हों, फिर भी अच्छी तरह से जीवन जीने में समर्थ नहीं रहे।

यह भी हो सकता है कि हमने जितना समय सामायिक में बिताया वह समय सुख से व्यतीत हुआ हो। अब तक जितनी सामायिक की, जितनी बार पौषध किया, संवर किया, वह समय बड़ा सुख से व्यतीत हुआ हो, किंतु प्रश्न खड़ा होता है कि 1, 2, 3 और 4 सामायिक क्यों करूँ, जब एक ही सामयिक सुख देने वाली है। इससे फलित होता है कि हमने सामायिक कर ली जरूर, किंतु उससे जो सुख की पैदाइश होनी थी वह नहीं हो पाई।

किसी ने जमीन का एक टुकड़ा खरीदा। उस टुकड़े में हीरे भरे हुए हैं। 10 साल में उसकी खुदाई करनी है, किंतु प्रमाद में, लड़ाई-झगड़े में खुदाई रह गई। भाई की, परिवार की किचकिच में रह गया। 10 वर्षों के समय में एक दिन बाकी रह गया। उस समय वह यह सोचकर एक दिन का भी उपयोग नहीं करे कि अब फावड़ा लेकर खुदाई करने से मुझे क्या मिलेगा, तो क्या समझना? वह सोचे कि खुदाई के लिए 10 साल का समय मिला था, जब इतने वर्षों में उस जमीन से कुछ नहीं निकाल पाया तो अब एक दिन में क्या निकाल पाऊँगा, तो क्या समझना? हो सकता है एक दिन में उसे ऐसा रत्न मिल जाय जो उसके भाग्य को चमका दे।

एक गरीब ब्राह्मण सम्राट के पास पहुँचा। उस समय जमाना राजनीति का नहीं था, जनतंत्र का नहीं था। उस समय जमाना राजतंत्र का था। राजा के पास आसानी से पहुँच सकते थे। वर्तमान में राजनेताओं के पास पहुँचना आसान काम नहीं है। नेताओं से मिलने के लिए कई पापड़ बेलने पड़ते हैं। अप्रोच लगानी पड़ती है, तब जाकर कहीं मौका मिलता है। यह तो नेताओं से मिलने की बात है। काम होना तो आगे की बात है।

राजाओं के राज में व्यवस्था होती थी कि कोई दु:ख में है, किसी को राजा से मिलना है, किसी को अपनी बात राजा के पास पहुँचानी है तो नगाड़े पर चोट करे। उस गरीब ब्राह्मण ने नगाड़े पर चोट की। चोट हुई तो राजा ने पूछा कि

कौन है। वह गरीब, राजा के पास पहुँचा। उससे राजा बोला, भाई कैसे आए हो और मौसी का क्या हाल है, तो उसने कहा, अब तक तो जिंदा थी, आपके दर्शन होते ही उनकी मृत्यु हो गई। राजा ने कहा कि एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ उसको खजाने से दे दी जाएं।

यह सुनकर मंत्री, कोषाध्यक्ष विचार करने लगे कि राजा की कौन-सी मौसी मर गई। वह सोचने लगे कि यदि इस प्रकार खजाना लुटाया जाएगा तो थोड़े ही दिन चलेगा। पर राजा के चेहरे को देखकर उनकी बोलने की हिम्मत नहीं हुई। कोषाध्यक्ष ने उसको एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ दे दीं। राजा ने उससे कहा, भाई मौसी के पीछे अच्छे से बारहवाँ करना, ताकि लोग वाह वाह करें। वह गरीब ब्राह्मण स्वर्ण मुद्राएँ ले वहाँ से चला गया।

राजा ने तो एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ दे दीं, किंतु आज प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री या राष्ट्रपति के पास चले जाएं तो क्या वे कुछ देंगे! वे कागज पर लिखकर आपको कुछ सुविधाएँ दे देंगे वह बात अलग है। मेरे कहने का मतलब है कि राजा के पास गरीब व्यक्ति गया तो उसको धन मिल गया।

एक दूसरे व्यक्ति को मालूम पड़ा कि उस आदमी को राजा ने एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ दीं तो वह भी राजा के पास गया और अपनी अपील प्रस्तुत की कि मैं गरीब हूँ तो राजा ने कैशियर के नाम पर चिट्ठी लिखी कि सुबह 10 बजे से एक बजे तक ये जितनी संपत्ति खजाने से ले जाना चाहे उतनी संपत्ति उसको ले जाने देना। वह आदमी अपने घर गया और अपनी पत्नी से कहा कि दाल-बाटी चूरमा बना ताकि खा-पीकर जाऊँगा तो ज्यादा खजाना ले आऊँगा। वह खा-पीकर गया, तब तक पौने एक बज गए थे। अब उसके पास केवल 15 मिनट का समय बचा था।

15 मिनट में खजाने से कितना धन निकाला जा सकता है? बताओ, बोलो आप, कितना धन निकाला जा सकता है?

15 मिनट में करोड़ों का माल निकाला जा सकता है।

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की, कटे कोटि अपराध।।

24 मिनट की घड़ी होती है। आधी घड़ी यानी 12 मिनट। आधी से भी आधी घड़ी यानी 6 मिनट। 6 मिनट में करोड़ों पाप नाश हो जाते हैं। उसकी

तुलना में 15 मिनट बहुत है। 15 मिनट में बहुत कुछ किया जा सकता है। बहुत खजाना निकाला जा सकता है। छह मिनट में एक डिब्बा बहुमूल्य हीरे का भरा हुआ यदि वह उठाकर ले जाए तो 9 मिनट में उसका आना-जाना हो सकता है, पर उस गरीब आदमी की बुद्धि काम नहीं कर पाई। वह एक मोटा बोरा लेकर उसको भरने लगा। बोरे को भरते-भरते समय हो गया। कोषाध्यक्ष आया और बोला कि 'यू कैन गो।' आप जा सकते हो। आपका समय पूरा हो गया है। अब आप ये बोरा नहीं ले जा सकते। आप यहाँ से एक कौड़ी भी अपने साथ नहीं ले जा सकते।

वह कहने लगा कि मैंने जो बोरे में डाल लिया, वह तो ले जाऊँ। कोषाध्यक्ष ने कहा, आपने बोरे में डाल लिया होगा, किंतु राजा का आदेश 10 बजे से 1 बजे तक का था। उस समय तक आप जितनी संपत्ति खजाने से बाहर ले जा सकते थे वह ले जाने दी जाती, किंतु अब नहीं।

उसको 15 मिनट का समय मिला था पर उसने वह समय बोरा भरने में लगा दिया। 15 मिनट में कुछ भी धन बाहर नहीं निकाल पाया। वह दो डिब्बा लेता और बाहर निकल जाता तो कितना समय लगता? हीरे की खदान से एक दिन में भी बहुत माल निकाला जा सकता था, पर प्रमाद ने उसकी बुद्धि को ग्रस लिया। जिससे उसने सोचा कि अब क्या मिलेगा इसलिए वह रीता ही रह गया।

इसी तरह हमारी जिंदगी के बहुत सारे लम्हे निकल गए। हम सोचते रह गये और बहुत सारे वर्ष निकल गए। थोड़ा-सा समय बचा है। बचे हुए समय को बोरा भरने में ही लगाना है या डिब्बा उठाकर ले आना है? डिब्बा उठाने की हमारी हिम्मत ही नहीं होती। हम तो मंसूबा करने वाले हैं। हमने अपनी जिंदगी का बहुत बड़ा हिस्सा सोचने में गँवा दिया। जो बचा है, उसे सोचने में नहीं करने में लगाओ।

समय को यदि सोच-सोच में निकाल दिया तो वह सार्थक नहीं हो पाएगा। जो लोग सोच-सोच में ही समय निकालते हैं वे हिम्मत नहीं कर पाते। जो चार कदम आगे चलते हैं तो दस कदम पीछे की ओर मुड़ जाते हैं, वे सक्सेज नहीं हो पाते।

नमिराज सक्सेज हुए। उन्होंने एक झटके में निर्णय लिया कि मुझे क्या करना है। उन्होंने डिसीजन बहुत जल्द ले लिया। उन्होंने किसी से पूछा नहीं।

किससे पूछना। जब परिवार का, समुदाय का, समाज का निर्णय लूं तब तो उन लोगों से पूछना, किंतु अपने जीवन का निर्णय लेना है तो फिर किससे पूछना। आनंद श्रावक ने क्या किया?

आनंद श्रावक ने जब देखा कि मेरा पुत्र तैयार हो गया, तब उन्होंने निर्णय कर लिया कि अब मुझे गाड़ी में बैल की तरह गृहस्थी में जुते हुए नहीं रहना है। अब संसार की गाड़ी में नहीं रहना है। आनंद श्रावक ने परिवार वालों को बुलाया। सबके साथ बैठकर भोजन किया और सबको अपना निर्णय सुनाया।

उसके भीतर से आवाज आई कि आनंद क्या कर रहे हो, कितनी रात्रियाँ व्यतीत हो चुकी हैं, वे रात्रियाँ वापस लौटकर आने वाली नहीं हैं। अधर्म में जिन रात्रियों को तुमने बिताया है वह व्यर्थ में चली गई। अब तुम्हें क्या करना है। इसी प्रकार आरंभ और परिग्रह से अपने आपको कीचड़ में डाले रखोगे, दलदल में फँसे रहोगे या दलदल से निकलने का मन हो रहा है?

आपके मन में क्या विचार चल रहा है। दलदल में फँसे रहने का मन हो रहा है या उससे बाहर निकलने का मन हो रहा है? आप क्या करना चाह रहे हो यह तो आपका मुँह ही बता रहा है। हम कहने में शूरवीर हैं। कहते तो हैं किंतु करते नहीं क्योंकि आज का संसार राजनीति का संसार है। जो कहा जाता है वैसा होता नहीं है। हमें जीवन जीना है। इसलिए समझने की बात है। विचार करना है कि जो समय हमारे पास बचा है उसका क्या करना चाहिए।

10 बजे और 1 बजे के बीच के समय में कितने घंटे हुए?

केवल तीन घंटे हुए। 15 मिनट तीन घंटे का कौन-सा भाग है? 12वाँ भाग है। अच्छी तरह गिनना। 12 हिस्सों में से लगभग 11 हिस्से हमारे जीवन के बीत गए या नहीं। यदि जीवन की समीक्षा करें तो गौतम जी कितने हिस्से निकल गए आपकी जिंदगी के?

यदि हम मानें 70 वर्ष तो कितने हिस्से रहे। गणित लगाने की बात बता रहा हूँ। 15 मिनट का हिसाब यदि हमारा बचा हुआ है तो उस 15 मिनट के हिस्से का क्या उपयोग होना चाहिए।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

अध्यक्ष साहब से कल समाचार मिला कि जब बाहर के लोग आयें तो

11 बजे तक व्याख्यान चलाओ। मैंने उस पर कोई जवाब नहीं दिया, किंतु आप लोगों की आवाज मुझसे धीमी आ रही है। मेरे अकेले की आवाज आप लोगों की आवाज पर भारी पड़ रही है। मेरी जितनी बुलंद आवाज आ रही है आप सब लोगों की मिलकर भी उतनी आवाज नहीं हो रही है।

जो बाहर से लोग आये हैं उनको नमिराज ऋषि के बारे में थोड़ा संक्षिप्त विवरण दे देता हूँ। नमिराज ऋषि अपनी बीमारी से परेशान हैं। वे बीमारी से ग्रस्त हैं। उनकी महारानियाँ चंदन घिस रही हैं। महारानियों के कंगन की आवाज उनको सुहा नहीं रही है। जब कंगनों की आवाज रुक गई तो नमिराज को मालूम हुआ कि कौन-सी आवाज आ रही थी जो अब रुक गई। नमिराज ने कहा, क्या चंदन घिसना बंद हो गया। मंत्री ने बताया कि महारानियों ने अपने हाथों में एक-एक कंगन रखकर बाकी सभी कंगन हटा दिये। इससे कंगनों की ध्वनि नहीं आ रही है। नमिराज ऋषि को चिंतन के लिए एक सूत्र मिल गया। उनके मन में विचार हुआ कि जहाँ बहुजन सम्मेलन होता है, वहाँ विपत्ति होती है। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। उन्हें लगा कि अकेले में जो आनंद है वह समुदाय में नहीं हो सकता। वहीं से उनके भीतर बदलाव आया कि अब मुझे साधु जीवन स्वीकार करना है।

फिर जाति स्मरण ज्ञान से उनको अपने पूर्व जीवन की झलक स्पष्ट हो गई कि मेरा पिछला जीवन कैसे व्यतीत हुआ। वे युद्ध के मोर्चे पर खड़े हैं। युद्ध के मोर्चे पर अपने तंबू में हैं। वहाँ पर साध्वी सुव्रत आर्या पहुँची और उसने कहा कि हे राजन्! एक हाथी के लिए अपने भाई से युद्ध करना क्या उचित है? उसने कहा कि हे राजन्! यह युद्ध करना आपके लिए उचित नहीं है।

नमिराज ने कहा कि चन्द्रयश मेरा भाई कैसे हो गया, वह तो युगबाहु का बेटा है और मैं पद्मरथ का बेटा हूँ। हम दोनों की राजधानियाँ अलग-अलग हैं। हम दोनों का राज्य अलग है तो वह मेरा भाई कैसे है! इस पर सुव्रत आर्या ने कहा कि मैं तुम्हें सुनाती हूँ, सुनो। वह नमिराज ऋषि को पूरा घटनाक्रम सुनाती है।

सुव्रत आर्या ने बताया कि किस प्रकार मणिरथ की दृष्टि मदनरेखा पर पड़ी और अपने छोटे भाई की पत्नी होते हुए भी उसके मन में बुरे विचार आ गए। उसने बताया कि कैसे उसने युगबाहु का वध किया और अंततोगत्वा उसे अपना

राज्य छोड़कर निकल जाना पड़ा। अपना महल छोड़कर निकल जाना पड़ा। मदनरेखा को अपना राज्य छोड़कर रात्रि को ही प्रस्थान करना पड़ा। उसने एक बालक को जन्म दिया। बालक को पेड़ की शाखा पर एक झूला बनाकर उसमें सुला दिया और शुचि करने के लिए तालाब पर गई। उस समय एक हाथी मस्ती करते आया और उसको सूंड में पकड़कर उछाल दिया। उसी समय आकाश में मणिरथ विद्याधर, मुनि बने अपने पिता के दर्शन के लिए जा रहा था। विद्याधर ने मदनरेखा को अपने विमान में बिठाया व मुनि चरणों में पहुँचा। उसी समय वहाँ पर एक देव ज्योतिर्मय विमान पर आरूढ़ होकर पहुँचता है। उसका विमान बहुत आकर्षक था, बहुत लुभावना था। वह दूर खड़े लोगों को भी अपनी तरफ आकर्षित कर रहा था। उस विमान को देखकर आँखें भी देखने के लिए तरसती थीं। कितना चमक रहा है, कितना प्रिय विमान है। यह ज्योतिर्मय विमान अमूल्य है। आज तक हमने ऐसा विमान नहीं देखा। यह अब तक सुनाया जा चुका है।

उस विमान से एक दिव्य आत्मा, देवपुरुष बाहर निकला। उसका सौंदर्य अद्भुत था। वह रव करता हुआ आया, जय जयकार गुंजायमान करता हुआ आया। उस देवपुरुष ने जैसे ही मदनरेखा को देखा, मुनि को वंदन करने से पहले मदनरेखा को नमस्कार करता है। उल्टी गंगा बहती देखकर मणिरथ के मन में विचार पैदा हुआ कि क्या कारण है कि यह दिव्यपुरुष मुनि को वंदन करने के बजाय पहले इस स्त्री को नमस्कार कर रहा है। उसने सोचा कि लगता है यह भी इस पर मुग्ध हो गया है। उसने सोचा कि इस स्त्री को देखकर प्रभावित हो गया होगा इसलिए पहले उसको नमस्कार कर रहा है और बाद में मुनि को नमस्कार कर रहा है। उसके मन में कौतूहल या जिज्ञासा चल ही रही थी कि उसकी बुद्धि ने उसको झकझोरा कि यहाँ मुनिराज भी विराज रहे हैं व देवपुरुष भी, अतः क्यों न उन्हीं से पूछ लिया जाए! उसी से पूछा–

हे देवानुप्रिय! आप उत्तम पुरुष ज्ञात होते हो। उत्तम सुर नर नीति बनाते हैं। यानी कि उत्तम लोग नीति का निर्धारण करने वाले होते हैं। वे न केवल कानून, नियम और मर्यादा बनाने वाले होते हैं, अपितु उसकी सुरक्षा भी करते हैं। उससे विपरीत आचरण वे नहीं करते। नीति का निर्धारण सर्वजन हिताय होता है। जिससे सारे लोगों का हित हो उसका निर्धारण नीति है। ऐसे नियम सबके लिए सुविधाजनक होते हैं। जैसे– झूठ नहीं बोलना, क्रोध नहीं करना, चोरी नहीं

करना, अपराध नहीं करना। ये नियम सर्वजन हिताय हैं। ये सबके हित में हैं। ये नियम सबको शांति व विश्वास देने वाले हैं। ऐसे नियमों को नीति कहा गया है।

चाहे देव हों या मनुष्य जो नीति का निर्धारण करते हैं, जो नीति बनाते हैं, वे ही यदि नियमों का, नीतियों का उल्लंघन करेंगे तो नीति कहाँ टिकेगी। मदनरेखा ने कहा- देवपुरुष! आपने अभी मुनि के विराजते हुए पहले मुनि को वंदन-नमस्कार नहीं करके एक स्त्री को वंदन किया। एक नारी को वंदन करना उचित नहीं लगता। यह मर्यादा का उल्लंघन है। यह बात हमारे लिए शोभा नहीं देती। आप जैसे उत्तम पुरुष, उत्तम नर और उत्तम देव ऐसा करेंगे तो फिर न्याय और नीति कहाँ टिकेगी।

उस देव ने कहा कि महानुभाव मैंने नीति का उल्लंघन नहीं किया है। स्त्री को वंदन पहले क्यों किया, यह मैं तुम्हें बताता हूँ। सुदर्शन नगर के राजा मणिरथ को अकृत्य करने में कोई लज्जा नहीं आई। उसने अपने भाई के सिर पर तलवार से वार कर दिया। युगबाहु छटपटा रहा था और उसको क्रोध आ रहा था। उसके मन में बड़ा आक्रोश हो रहा था। बार-बार उसके मन में ऐसे विचार उठ रहे थे कि अभी मेरे हाथ में तलवार आ जाये तो मैं मणिरथ के टुकड़े-टुकड़े कर दूं। मैं उसका काम तमाम कर दूं। वह मन में सोच रहा था कि मणिरथ मेरा भाई नहीं, दुश्मन है। उसके मन में द्वेष के भाव, शत्रुता के भाव, आक्रोश के भाव आ रहे थे। उस समय उसकी पत्नी मदनरेखा ने कहा कि पतिदेव जो हो गया सो हो गया। उसने अपने पति को धर्म ध्यान सुनाया। उसको धर्म की शरण दी। उसने कहा कि पतिदेव अपने हृदय में चार शरण धारण करो। उनको हृदय में धारण करने से जीव का कल्याण होता है। मंगल होता है। जीवन को दिव्यता प्राप्त होती है।

उसका ऐसा उपदेश सुनकर उसके द्वारा दी गई शरण में युगबाहु का मन लीन हो गया और वहाँ से मरकर वह देव बना। वहाँ पर जयकार हो रहे थे। देव के उत्पन्न होने की खुशियाँ मनाई जा रही थीं। उस देव ने अपने अवधिज्ञान का प्रयोग किया कि मैंने यह देवऋद्धि कैसे पाई। जब पूर्व भव की ओर उसका ध्यान गया तो उसने जाना कि अपनी पत्नी मदनरेखा द्वारा धर्म ध्यान सुनाये जाने पर उसे यह देव भव मिला है। यह ज्ञात होने पर वह अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए उपस्थित हुआ। वह देव और कोई नहीं मैं स्वयं हूँ। यह

(इशारा करते हुए) मदनरेखा मेरे पूर्व भव की पत्नी है। मेरी उपकारी होने से मैंने मुनिवर से भी पहले उसको नमन किया। अत: मैंने नीति विरुद्ध कार्य नहीं किया।

बात 15 मिनट की चली थी। यदि 15 मिनट आपको याद रहेगा तो कल्याण की बात है। यदि 15 मिनट को आप सार्थक कर लें तो कल्याण हो जाएगा। युगबाहु ने पहले क्या किया? किंतु पिछला थोड़ा समय ऐसा था जिसमें मदनरेखा कह रही थी कि

प्रितम धारी जे होय भवियन मांगलिक शरणा चार...

प्रीतम आप चार शरण हृदय में धारण करें। कौन-से हैं चार शरण?

अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि,
साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

ये चार शरण उत्तम हैं, मंगल हैं। इनको हृदय में धारण किया तो युगबाहु देव बन गया। यदि कषाय हालत में मृत्यु होती, आक्रोश के भावों में मृत्यु होती, वैर-भाव में मृत्यु होती तो वह चार गति में पता नहीं किस गति में जाता या किस नरक में जाता। वैर भाव हमारे कल्याण मार्ग में बाधक हैं। चाहे किसी के प्रति थोड़ा-सा ही क्यों न हो।

यदि हमारे जीवन के दूध में जावण लग जाये तो दूध का दही जम जाएगा। जीवन का आनंद आ जाएगा। यदि हमने हमारे जीवन में जावण नहीं लगाया तो जीवन कोरा रह जाएगा।

हमने सुना है- 'एक वचन श्री सतगुरु केरो...' यह यदि हमारे दिल में पैठ जाये तो हमारे जीवन को रूपान्तरित किये बिना नहीं रहेगा। एक घटना है। महात्मा बुद्ध सभा में बैठे हुए थे। उनका सत्संग चल रहा था। उनका उपदेश चल रहा था। उनके सत्संग का समय लगभग दो घंटे का था। अपना भी हो रहा है दो घंटे का समय। अपना भी लगभग दो घंटे का समय व्यतीत हो रहा है। जिस नगर में सभा हो रही थी उस नगर में एक सेठ था। वह बहुत प्रभावी था। उस नगर में वह बहुत प्रतिष्ठित सेठ था। वह तमतमाये चेहरे से आया। उसको बहुत गुस्सा आ रहा था। वह मान रहा था कि यह व्यक्ति लोगों को बहकाने में मशहूर है। धर्मोपदेश के नाम से वह सबको बहकाता रहता है। धर्म-वर्म कुछ भी नहीं है। धर्म से कुछ होने वाला नहीं है। लोगों को बहकाना और धर्म के नाम पर भावनाओं को भड़काना ही उसका काम है। इसके पीछे उसका दर्द यह था कि

कि उसका लड़का रोज सत्संग में आता था। उसका गुस्सा अपने लड़के पर था कि वह रोज दो घंटे खराब कर रहा है। यदि वह दुकान में बैठता तो कितना धन कमाता। कितना धन इकट्ठा कर लेता। वहाँ तो फालतू की बातें हो रही हैं। इससे वह गुस्से में था।

वह महात्मा बुद्ध के पास गया तो उसका मुँह हिल रहा था पर शब्द नहीं निकल पा रहे थे। उसका मुँह काँप रहा था। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। गरदन अकड़ी हुई थी। सारे लोग देख रहे थे कि अब कुछ होगा। सारे लोग उसको देख रहे थे कि उसका गुस्सा इतना तीव्र है, इतना तेज है कि उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकल पा रहे हैं। उसके मुँह से शब्द निकलना अवरुद्ध हो गया। गौतम बुद्ध ने भी उपदेश छोड़कर उसकी तरफ देखना शुरू किया। उनके चेहरे पर बड़ी मस्ती थी। बड़ी मुस्कान थी। महात्मा बुद्ध को देखकर उसका गुस्सा और तेज हो गया। उसने कहा कि कैसा ढीठ आदमी है, हँस रहा है। उसको बड़ा गुस्सा आया। उसने महात्मा बुद्ध की आँखों पर थूक दिया। ऐसा करने पर भी महात्मा बुद्ध शांति से अपनी जगह पर बैठे रहे।

कहना बहुत आसान है, किंतु कोई धक्का भी दे दे तो उसको सहना बहुत कठिन है। पर महात्मा बुद्ध शांति से बैठे रहे। जो जीवन को जान लेता है, वह गुस्सा नहीं करता। जिसने घी का मूल्य जान लिया वह घी का डब्बा कभी उलटा नहीं करेगा। घी के मूल्य के बारे में पहले भी चर्चा चली कि 400 से लेकर 1400 रुपये तक मिलता है। देशी गाय का घी कितने में मिलता है? 2200 रुपये किलो। अलग जगह अलग-अलग भाव है। जैसा घी होगा, वैसा उसका मूल्य होगा।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के कानों में एक बात पड़ी। लोग बातें कर रहे थे कि 'घी घणो महँगों हुग्यो' तो उन्होंने कहा कि साधुओं के लिए घी महँगा नहीं है। उनके पातरे में पहले भी घी आता था आज भी यदि वह लेना चाहे तो आसानी से मिलता है। यह स्पष्ट है कि जिसने घी के मूल्य को जान लिया वह घी का डब्बा कभी उलटा नहीं करेगा। यदि हमने अपने जीवन मूल्य को जान लिया तो उसमें घी डालकर माचिस लगाने का काम नहीं करेंगे। यदि उसमें घी डालकर माचिस लगा दी तो आग लग जाएगी और सारा घी जल जाएगा। हमारे द्वारा क्रोध करना, द्वेष करना, ईर्ष्या करना, लोभ करना जीवन में

आग लगाने की बात है। यदि हम ऐसा कर रहे हैं तो क्या होगा?

माया मद लोभ मुझे क्रोध ने सताया है
बहुत रुलाया बहुविध से जलाया है
भूला शक्ति चेतना की किया ना संधान जी
मैं तो हूँ नादान प्रभु तेरी ही संतान जी

माया, मद-मान, क्रोध, लोभ ने हमें बहुत सताया है। इसने हमें बहुत रुलाया है। क्यों सताया माया ने, क्यों सताया लोभ ने? इन सबने मुझे क्यों सताया? गलती है हमारी चेतना की। हमने अपनी चेतना की शक्ति का संधान नहीं किया। हम अपनी चेतना को भूल गए और क्रोध, लोभ हम पर हावी हो गए। इसी कारण से ये और सारे मुझे सता रहे हैं, रुला रहे हैं। इन कषायों ने बार-बार मुझे जलाया है, मुझे बहुत परेशान किया है, क्योंकि मैं अपनी चेतना की आवाज को भूल गया। मैं अपनी चेतना की शक्ति को भूल गया।

महात्मा बुद्ध का चैतन्य जागृत था। उन्होंने अपने जीवन में आग लगने नहीं दी। उन्होंने अपने जीवन को क्रोध के हवाले नहीं किया। वे उस सेठ पर आक्रोशित नहीं हुए। उनके भीतर से गोला-बारूद नहीं चला। उनके चेहरे पर जो मधुरता पहले थी, जो मुस्कान पहले थी, वैसी की वैसी मुस्कान बनी रही। यह देखकर सेठ का गुस्सा थोड़ा शांत हुआ।

रात को थोड़ी ठंडी हवा चली। सेठ करवटें बदल रहा है। उसको नींद नहीं आ रही है। उसका मन बार-बार उद्वेलित हो रहा है। वह सोच रहा है कि मैंने जो किया वह अच्छा नहीं किया। सेठ के मन में महात्मा बुद्ध की वही मूर्ति, वही शक्ल-सूरत और खुद द्वारा उनकी आँखों पर थूका जाना बार-बार नजर आ रहा है।

बुद्ध के जीवन से लगभग मिलती-जुलती एक घटना नाना गुरु के जीवन की है। आचार्य देव बैतूल स्थानक में विराज रहे थे। रात्रि के समय वहाँ एक कार आकर रुकी। उस कार में से दो सज्जन उतरे। एक सज्जन खुले सिर का था और दूसरे का सिर टोपी से ढका हुआ था। उसके सिर पर गांधी जी वाली टोपी लगी हुई थी। वह धोती का पल्लू पॉकेट में डाले और वहाँ पहुँच गए, जहाँ गुरुदेव विराज रहे थे। वहाँ पहुँचकर मत्थएण वंदामि कर बैठे। ज्ञान चर्चा के दौरान खुले सिर वाले भाई ने गुरुदेव से एक प्रश्न पूछा कि गुरुदेव इतनी बड़ी

सभा होती है, यदि माइक का प्रयोग हो जाए तो बहुत से लोग आसानी से धर्मदेशना सुन सकते हैं। गुरुदेव उसको बहुत शांत भाव से समाधान दे रहे थे, तब तक सिर पर टोपी लगाए व्यक्ति उछल गए और जोर-जोर से बोलने लगे कि क्या है ये, ऐसे थोड़ी होता है। बोलते-बोलते वे आपे से बाहर हो गए। नहीं बोलने जैसी भाषा भी बोलने लगे। गुरुदेव बड़े प्रेम से कहते हैं कि मुणोत जी सुनो तो सही, पर वे और जोर से बोलने लगे। ऐसे में भी गुरुदेव बार-बार फरमाते रहे मुणोत जी आप शांत भाव से सुनें पर उनको सुनना था ही नहीं। रात का समय ज्यादा हो गया। 9.30-10 बज गए। अत: गुरुदेव ने मांगलिक सुना दी। वे चले गये।

यह बात मैं इसलिए बता रहा हूँ कि गौतम बुद्ध के ऊपर थूका गया और यहाँ पर थूका तो नहीं गया, किंतु आक्रोश भयंकर था। आक्रोश मतलब मन की भड़ास निकालना। उसको एक मौका मिल गया था कि ऐसा करने से किसी को क्या फर्क पड़ता है। बोलते हुए उनके मुँह से निकला आपने श्रमण संघ तोड़ दिया। इससे स्पष्ट हुआ कि उनका दर्द क्या था। मुणोत जी भी रात को सो नहीं सके। उनकी नींद हराम हो गई। वह मन में सोच रहे थे कि मैंने क्या कर दिया। वे दूसरे दिन फिर आये तो गुरुदेव ने उसी शांत भाव से कहा कि मुणोत जी और प्रश्न हो तो पूछ सकते हो। इस पर मुणोत जी ने कहा कि गुरुदेव मैं बहुत लज्जित हूँ। आपने आचार्य के 36 गुण साक्षात् बता दिए। 36 गुणों से युक्त आचार्य की मैंने अवहेलना की। यहाँ से नीचे उतरते हुए मुझे अपने अपराध का बोध होने लगा। जो मेरे साथ थे उन्होंने भी दु:ख व्यक्त किया और बोला कि तुझे इतना गुस्सा आएगा यह मुझे मालूम होता तो मैं प्रश्न पूछता ही नहीं। फालतू में इतना गुस्सा कर दिया। मैंने अनावश्यक रूप से इतनी बातें कह दीं। उन्होंने कहा कि मैं दिल से माफी चाहता हूँ, गुरुदेव मुझे क्षमा करना। मैं आपकी चर्या को देखता हूँ तो मन में लगता है कि होना तो ऐसा चाहिए। मैं ऐसे ही श्रमण संघ का आकांक्षी हूँ। अब हमको पीड़ा होती है। हमारी चाह थी कि आप सुधार करते तो एक अच्छी बात होती, किंतु जो कुछ भी हुआ मेरा इतना बोलना सही नहीं था, पर आपने कुछ भी जवाब नहीं दिया। यह 36 गुणों की महानता है। वस्तुत: आचार्य के लिए जो क्षमाशील होना बताया गया है, आप 100 टका सही हैं। इतना कहते हुए वे गुरुदेव के चरणों में गिरकर क्षमायाचना करने लगे।

गुरुदेव की शांत मुद्रा ने उनको सोचने को बाध्य कर दिया। वहीं यदि बराबरी में बाँह खींच ली होती तो शायद उनको आराम की नींद आ गई होती कि मैंने क्या कर दिया। उनको रात निकालना मुश्किल हो गया।

उधर वह सेठ भी परेशान हो रहा है। उसकी रात नहीं बीत रही है। अंततोगत्वा वह सेठ उनके चरणों में पहुँचकर क्षमायाचना करता है कि मैंने बहुत बड़ा अपराध कर दिया। यह विषय हमारी समझ में भी आना चाहिए कि मैंने अपने जीवन का कितना घी जला दिया और जीवनी शक्ति को कितना बर्बाद कर दिया। गुरुदेव वैज्ञानिक शोध के आधार से फरमाते थे कि जो एक बार जोर से गुस्सा करता है, उसका एक पौंड खून जल जाता है। गुस्सा करने वाले के हीमोग्लोबिन की जाँच करें तो निश्चित रूप से उसमें कमी आएगी।

पूज्य आचार्य गुरुदेव नानालाल जी फरमाया करते थे कि कोई खून माँगने के लिए आ जाये तो लोग कहते हैं कि म्हारे कठे खून है। यह कहकर वे खून देने के लिए तैयार नहीं होते और गुस्सा करके खून को जला देते हैं।

साथियो! विचार करने की आवश्यकता है कि हमें अपने जीवन की पहचान है या नहीं! हमें अपने जीवन की पहचान करनी है और यह जानना है कि मैं जीवन को किस रूप में ढालूं जिससे मैं स्वयं सुख से जी सकूँ। ऐसा न हो कि जो मेरे अधीन है उसको ही खो दूं।

मैं देव और मदनरेखा की बात कर रहा था। देव कहता है कि यह मदनरेखा सती है जिसने मुझे धर्म का बोध दिया। यह मेरी उपकारी है इसलिए पहले मैंने उपकारी को वंदन किया, उसके बाद मुनि को वंदन किया। इसमें शिष्टाचार की कमी लग रही है, किंतु हकीकत में शिष्टाचार की कोई कमी नहीं है। यह सामान्य शिष्टाचार है कि उपकारी का पहले उपकार मानना। इसके बाद दूसरी बात होनी चाहिए। वही कार्य मैंने किया है।

बंधुओ! हम भी अपने आप में सम्प बढ़ाने के लिए विचार करें। अपनी संपत्ति, अपनी आत्मा से हमारा सम्प बढ़े। हम लोभ, मान-माया, क्रोध से बाहर निकलें। हम दिखावे की भावना से हटकर वापस अपनी आत्मा में स्थित हो जाएं। हमारा सम्प बढ़ जाए। अपना प्रेम सदा बना रहे। ऐसा हमारा जीवन का लक्ष्य बन जाएगा तो हम अवश्य समर्थ होंगे। जिस दिन हमारा सामर्थ्य जगेगा उस दिन हम धन्य हो जाएंगे।

सेठ ने महात्मा बुद्ध पर थूक दिया और अमरावती के मुणोत जी ने नाना गुरु पर आक्रोश किया। गुस्सा किया। नहीं बोलने योग्य शब्दों का उच्चारण किया, किंतु महात्मा बुद्ध व नाना गुरु के चेहरे पर रत्ती भर भी बदलाव नहीं आया।

हम किसके उपासक हैं?

नाना गुरु की उपासना की होती तो आज हममें भी वह क्षमता होती। लेकिन एकदम नहीं जैसी बात भी नहीं है। हमारा सामर्थ्य विकसित हुआ है। हमारी क्षमता का विकास हुआ है, किंतु अभी क्षमता को और विकसित करना है। अभी भी कभी-कभी थोड़ी विषमता में चले जाते हैं। विषमता में नहीं, समता में ही चलें। यह विश्वास होना चाहिए कोई कैसा भी व्यवहार करेगा, उसके व्यवहार से कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। अपनी इज्जत को रोने से अशांति के अलावा अन्य कुछ भी मिलने वाला नहीं है। यह बात विशेष रूप से ध्यान में लेना कि असली मोती का पानी उतरता नहीं है और नकली मोती का पानी ज्यादा समय ठहरता नहीं है। इसलिए हमें अपने मान-सम्मान का विचार करने की आवश्यकता नहीं है। तपस्वी आत्माएं तपस्यारत हैं। आप भी तपस्या की ओर आगे बढ़ेंगे तो एक दिन निश्चित तौर पर धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देता हूँ। आज इतना ही।

19 सितम्बर, 2021

6

अपने जीवन के जौहरी बनो

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख संपत्ति नो हेतु, ललना...

इस स्तुति में श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की वंदना करने को कहा गया है। साथ ही उसका फल निर्देश सुख-संपत्ति की प्राप्ति के रूप में किया गया है। वंदना, आध्यात्मिक साधना का एक अभिन्न अंग है। वह भौतिक फल देने वाली नहीं हो सकती। उसका मुख्य फल आध्यात्मिक शांति है, समाधि है। पुण्य के फल की प्राप्ति और साता की प्राप्ति होना परंपरागत है, आनुषंगिक लाभ है। प्रधान फल आत्मिक शांति, आत्मिक समाधि के रूप में होता है।

कई भव्यों के मन में प्रश्न पैदा हो जाता है कि यदि वंदना करने से सुख-संपत्ति मिलती है तो वह महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि उसे तो हम व्यापार व अन्य कई कार्यों से भी कमा लेते हैं। अतः उसके लिए वंदना क्यों करना। उनका कहना है कि संपत्ति आएगी तो सुख भी आ ही जाएगा। इसके लिए वे 'पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख है घर में माया' का उदाहरण देते हैं। लोग कह देते हैं कि सुख माया से है। इसलिए जब घर में माया आ जाएगी, धन आ जाएगा तो सुख स्वतः आ जाएगा, किंतु सुख माया से या माया में नहीं है। यथार्थ सुख बहुत अलग है। वह इंद्रियों के विषयों से निरपेक्ष होने पर प्रकट होता है। उस अवस्था में किसी प्रकार का द्वंद्व नहीं रहता।

सुख और संपत्ति के विषय में मैं बोल गया कि संपत्ति के छह भेद किए गए हैं; सम, दम, उपरति, श्रद्धा, समाधान और तितिक्षा। यदि हम स्वयं में समाहित हो जाएं, अपने आप में समाहित हो जाएं तो उससे बड़ी बात और कोई नहीं हो सकती। उपरति का मतलब है उपरत होना।

अब प्रश्न होगा कि किससे उपरत होना?

इसका समाधान है– काम, क्रोध, लोभ, माया से उपरत होना। ममत्व बुद्धि से उपरत होना। हमने व्याख्यानों में बहुत सुना है कि क्रोध नहीं करना चाहिए। लोभ नहीं करना चाहिए। द्वेष नहीं करना चाहिए, किंतु इसका असर बहुत कम हो पा रहा है। असर न होने का कारण है कि हमने अभी तक बिना क्रोध की अवस्था से होने वाले लाभ को जाना नहीं है। हमको क्रोध से होने वाला लाभ नजर आता है लेकिन अक्रोध से होने वाला लाभ नजर नहीं आता। क्रोध से होने वाले लाभ से ज्यादा अक्रोध से लाभ की प्राप्ति होती है। जो कार्य प्रेम से हो सकता है, प्यार से हो सकता है, वह क्रोध से कभी नहीं हो सकता। क्रोध से आप किसी पर हावी हो सकते हो, भय पैदा कर सकते हो, दूसरों को आतंकित कर सकते हो, किंतु उसका प्रेम, उसका प्यार, उसका वात्सल्य, उसकी श्रद्धा, समर्पणा क्षमा से ही प्राप्त हो सकती है। वात्सल्य, प्यार, समर्पणा से प्राप्त हो सकता है। अभी हम जिस स्थिति में हैं, वह स्थिति वास्तविक नहीं है। अभी हम अवास्तविक स्थिति में जी रहे हैं। वैभाविक स्थिति में जी रहे हैं। यह हमारा स्वभाव नहीं है। यह विभाव है। इस स्थिति में हमें काम, क्रोध, तृष्णा के भाव निरंतर परेशान करते रहते हैं।

विरक्ति या उपरति हमें यह निर्देश देती है कि अपेक्षा में मत जीओ। यदि अपेक्षा में जीओगे तो तुम्हें उपेक्षा का सामना करना पड़ेगा। उपेक्षा में जीना बहुत कठिन होता है। हम दूसरे की उपेक्षा कर देते हैं, किंतु अपनी उपेक्षा हमें सहन नहीं होती। उपेक्षा घर से हो, परिवार से हो या समाज से हमारा मन भीतर से चीत्कार उठता है। हमारे भीतर विद्रोह के भाव उभरने लगते हैं। भीतर ही भीतर क्रोध भभकने लगता है। मौका लगे तो वह बाहर भी प्रज्वलित हो जाता है। इससे बहुत हानि है, किंतु हम हानि सहते चले जाते हैं। अपने अहंकार को बचाए रखने के लिए हम सोचते हैं कि सामने वाला कुछ समय के लिए दब गया। हो सकता है कि सामने वाला दब गया हो, किंतु वो आपका नहीं बन पाया। इसके विपरीत जब आप सभी को मैत्री भाव से देखते हैं, सभी पर प्रेम, प्यार, वात्सल्य उड़ेलना शुरू कर देते हैं तो कोई पराया नहीं रह जाता। दुनिया में यदि पराया ढूँढने निकलेंगे तो कोई भी पराया नहीं मिलेगा। सारा विश्व एक कुटुंब के समान परिभाषित होगा। 'वसुधैव कुटुंबकम' की स्थिति दृष्टिगोचर होगी।

एक सुंदर बात बताई गई कि बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय। कमी है तो मेरे में है। मैं अपने वात्सल्य का विस्तार नहीं कर पा रहा हूँ इसलिए सबको अपना नहीं बना पा रहा हूँ। सब मेरे नहीं बन पा रहे हैं। मैं सबको अपना बनाना चाहूँ तो मुझे वात्सल्य उड़ेलना होगा। मेरा वात्सल्य असीमित रूप से प्रवाहित होते रहना चाहिए। अपने आदर्श पुरुष भगवान महावीर के आधार पर हम धर्म साधना कर रहे हैं। भगवान महावीर ने शत्रु के साथ भी मित्रता का व्यवहार किया। उन्होंने न किसी का प्रतिकार किया और न किसी की कोई शिकायत की। उन्हें कोई शिकायत थी ही नहीं। गोशालक ने तेजोलेश्या डाली तो भी उससे भगवान को कोई शिकायत नहीं थी। उनको यह भी विचार नहीं आया कि मैंने उसको तेजोलेश्या दी और यह मेरे ऊपर ही प्रयोग कर रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि वे सिद्धांत के मात्र उपदेष्टा नहीं थे। तत्व को जान रहे थे। वे सिद्धांत में जी रहे थे।

वस्तुतः क्रोध, मान, माया, अवसाद हमारे हैं ही नहीं। ये सब हमारे बनकर रह रहे हैं। जो हमारा बनकर रहता है उसका अपना स्वार्थ जुड़ जाता है। क्रोध, मान-माया लोभ आदि तब तक हमारे साथ टिके हुए हैं जब तक उनका स्वार्थ बना हुआ है। जैसे ही उनका स्वार्थ बाधित होगा वे हमको आँख दिखाने लगेंगे। जैसे लकड़ी को दीमक खोखला कर देती है, वैसे ही ये कषाय हमारी आत्मशक्ति को खोखला कर देते हैं।

भगवान महावीर कहते हैं- ''कोहो पीइं पणासेइ'' यानी क्रोध से प्रीति का नाश होता है। भीतर का वात्सल्य निर्झर सूख जाता है। जब हमारे भीतर वात्सल्य प्रवाहित नहीं होगा तो दूसरों का वात्सल्य भी नहीं मिल पाएगा। मिल भी जाए तो हम उसका अहसास नहीं कर पाएंगे। उनके साथ दिल नहीं जुड़ पाएगा, दिल का अटैचमेंट नहीं होगा। यदि दिल का अटैचमेंट करना है तो क्रोध, मान, माया, लोभ से दूर हट जाएं। इन सबको दूर करें। फिर देखें कि दुनिया में कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपना नहीं। शायद ढूँढने पर भी पराया व्यक्ति नहीं मिलेगा। जहाँ जाएंगे सब अपने ही अपने नजर आएंगे।

मारवाड़ में एक कहावत है 'राख पत रखाय पत।' इसका तात्पर्य है तुम दूसरों की इज्जत करोगे तो वह भी तुम्हारी इज्जत करेगा।

एक प्रसंग है। एक सेठ की पत्नी की स्वर्गवास हो गया। सेठ का एक

बच्चा था, जो डेढ़-दो साल का रहा होगा। सेठ जी ने विचार किया कि दूसरी शादी नहीं करूँगा। उन्होंने सौतेली माता के बहुत सारे उदाहरण सुन रखे थे। बहुत सारे प्रसंग सुन रखे थे। उन प्रसंगों को ध्यान में रखकर उन्होंने निर्णय किया कि मैं दूसरी शादी नहीं करूँगा। यदि मैंने दूसरी शादी कर ली तो मेरे बेटे का जीवन खतरे में पड़ जाएगा। सेठ जी ने चार-छह महीने बच्चे की देखभाल की, किंतु उसके बाद सेठ जी परास्त हो गए। वे दुःखी रहने लगे। द्वंद्व में जीने लगे।

गुरु महाराज फरमाया करते थे कि बहनें जिस दायित्व का निर्वाह करती हैं, वह दायित्व भाइयों के ऊपर आ जाए तो भाई थोड़े ही दिनों में हार जाएंगे। बच्चों का लालन-पालन कोई खेल नहीं है। यह बहुत टेढ़ा काम है। कठिन काम है। कभी बच्चा रूठ जाता है, नाराज हो जाता है तो कभी हाथ-पैर चलाता है। उन सबको सहती हुई माता ही पालन करती है। बच्चे के प्रति उसका वात्सल्य है इसलिए वह सब सह लेती है। जैसे माँ में वात्सल्य भाव है, वैसे ही वात्सल्य भाव हमारे अंदर हो जाए तो हम भी सबको सह लेंगे। कहीं रुकावट नहीं आएगी। हमारे भीतर तर्क खड़े होते हैं तो हमारी सहने की क्षमता मंद से मंदतर होने लगती है।

हमारे भीतर तर्क होता है कि मैं क्यों सहूँ? ऐसा क्यों होता है? क्या माँ के भीतर ऐसा तर्क पैदा होता है कि मैं क्यों सहूँ? क्या माँ सोचती है कि बच्चा हाथ-पैर पटकता है तो पटकने दो, भूखा मर रहा है तो मरने दो, मैं दूध नहीं पिलाऊँगी। क्या ऐसा तर्क माँ के भीतर होता है कि भूखा मरेगा तो अपने आप खा लेगा?

नहीं, माँ के भीतर ऐसा तर्क नहीं आता। वैसे ही हमारे भीतर ऐसे तर्क नहीं उठें तो हम सहन करने वाले बनेंगे। हमारे भीतर सामर्थ्य की कमी नहीं है, किंतु हमारे सामर्थ्य को हम लोग ही चुनौती देने वाले बनते हैं। समुद्र में जैसे पानी का ज्वार उठता है, वैसे ही हमारे मन में ज्वार उठने लगता है। समुद्र के पानी में कितना भी ज्वार उठ जाए, किंतु उसमें सहने की क्षमता है। वह मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता। वैसे ही हमें मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करना है। चाहे कैसी भी स्थिति आ जाए, हम मर्यादा के बाहर नहीं जाएं। मर्यादा के भीतर जो सुरक्षा है, वह मर्यादा के बाहर जाने पर नहीं रहेगी। लक्ष्मण रेखा का उदाहरण हमारे सामने है।

सेठ जी की बात चल रही थी। सेठ जी ने विचार किया कि शादी नहीं करूंगा, किंतु चार-छह महीने में हालत पस्त हो गई। आस-पास के लोगों तथा परिवार के लोगों ने कहा कि भाई दूसरी शादी कर ले। सभी औरतें एक जैसी नहीं होतीं। सभी अलग-अलग होती हैं। सेठ जी ने दूसरी शादी कर ली। कुछ दिन निकले। 10-15 दिन निकले। महीना निकला। नई श्रीमती ने कहा कि क्या बात है, मुझे आए हुए महीना भर हो गया, किंतु मैं देख रही हूँ कि मेरे आने के बाद से एक भी अतिथि इस घर में नहीं आया। उसने आगे कहा कि जिस घर में मेहमान नहीं आएं, वह घर कैसा। घर वह होता है, जहाँ पर मेहमान आते रहते हैं। मेहमान आते रहने चाहिए अन्यथा श्मशान और घर में क्या फर्क रहेगा।

यह सुनकर सेठ जी एकदम से चौंके और श्रीमती से बोले कि तुम क्या बोल रही हो? उसने कहा कि मैं ठीक बोल रही हूँ। वो घर कैसा जिस घर में मेहमान न आएं। सेठ जी ने कहा, मेहमान तो बहुत आते हैं, किंतु मैं उन मेहमानों को घर पर नहीं लाता। सीधा होटल ले जाता हूँ। होटल से ही काम निपटा देता हूँ। तुम अकेली हो इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम पर किसी प्रकार का भार न पड़े, यह सोचकर मैं मेहमानों को होटल ले जाता हूँ।

श्रीमती ने कहा कि मेहमान भार थोड़ी होते हैं। अगर घर में मेहमान आएं तो अच्छी बात होती है। उसने कहा कि आज से आप यह बात गाँठ बाँध लें कि कोई भी व्यापारी या मेहमान हो, उन्हें कभी भी होटल में नहीं ले जाएंगे। उन्हें घर पर लाएंगे। सेठ जी ने कहा कि मेहमान/व्यापारी कभी ज्यादा हो जाते हैं। कभी-कभी 20 हो जाते हैं तो कभी 50 भी हो जाते हैं। श्रीमती ने कहा कि चाहे 100 भी क्यों न हों, किसी को होटल नहीं ले जाएंगे। सेठ की नई सेठानी की बात आपने सुनी।

आपके घर पर मेहमान आते हैं तो कहाँ ले जाते हैं? घर पर या होटल में? आप कहेंगे कि हम तो घर पर ही ले जाते हैं।

बिना बुलाए जो घर आए ऐसे मेहमानों से डरियो...

(सभा में उपस्थित लोग हँसने लगे)

आप तो हँसने लगे। कुछ मेहमान बुलाने पर आते हैं और कुछ मेहमान बिना बुलाए आ जाते हैं। अतिथि का मतलब होता है- जिसकी आने की कोई तिथि निश्चित नहीं है। जिस अतिथि को बुलाते हैं उसकी तिथि निश्चित होती

है। आप कहते हैं कि अमुक तारीख को फंक्शन है। उसमें आप किसी को बुलाते हो तो उसकी तिथि फिक्स है, निश्चित है पर अतिथि के आने का समय निश्चित नहीं होता। वे कभी भी आ सकते हैं। मेहमान कभी भी आ जाए तो आपके नाक में सल नहीं पड़ना चाहिए। ललाट में सल नहीं पड़ना चाहिए। ऐसा विचार नहीं आना चाहिए कि यदि मेहमानों की अच्छी खातिरदारी कर दी तो उनकी लाइन लग जाएगी। वे बार-बार आने लगेंगे। सारे लोग ऐसे नहीं होते, सभी एकसमान नहीं होते। सबकी भावना एकसमान नहीं होती। किसी को मेहमान से खुशी होती है तो किसी को लगता है कि ये आफत कहाँ से आ गई, अब इनकी सेवा करनी पड़ेगी, अब इनको कैसे निपटाऊँ। ध्यान रहे, मेहमान घर में आते हैं तो आपके पुण्य को बढ़ाने वाले होते हैं। भारतीय संस्कृति 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, अतिथि देवो भव' की है। यहाँ अतिथि को देवता के समान माना गया है।

कृष्ण वासुदेव के यहाँ पर कौन पहुँचा था?

सुदामा पहुँचा था। कृष्ण वासुदेव ने सुदामा को सिंहासन पर बिठाकर सोने के थाल में उसके पैर धोए। पैर धोने का मतलब है मेहमानों को सम्मान। ये मत समझो कि मेहमान कैसे आ गए। मेहमान बहुत दुर्लभ होते हैं।

सेठ के घर में मेहमानों की लाइन लग गई। कभी दो, कभी चार, कभी दस मेहमान आते फिर भी सेठानी ने कभी नाक में सल नहीं डाला। उसके ललाट पर सल नहीं आए, सभी मेहमानों की आत्मीयता से, वात्सल्य भाव से सेवा की। मेहमान भी कहते थे कि क्या औरत है, कितनी सेवा करती है। सबसे मिलने वाली है, अच्छी औरत है।

महिला में वात्सल्य का एक धागा न हो तो परिवार बिखरने में देर नहीं लगती। वात्सल्य के धागे से पूरे परिवार को, पूरे घर को एक करके रखा जा सकता है।

एक दिन मैंने कहा था कि नारी का तू कर सम्मान, नारी उत्तम नर की खान।

मनुष्य की पैदाइश किस खान से होती है?

नारी की खान से मनुष्य की पैदाइश होती है। मेरा उस दिन का विषय था कि महिला को सम्मान मिलना चाहिए या नहीं? राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को चर्चा का विषय बनने के समाधान में मैंने कहा कि बहनों को अपनी जिम्मेदारी पहले निभानी चाहिए। उनकी जिम्मेदारी है अपनी संतान को

उत्तम बनाने की, उन्हें संस्कारित करने की। यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी है नारी की। नारी इस जिम्मेदारी का निर्वाह कर ले तो बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। राष्ट्र की बहुत बड़ी समस्या का समाधान हो जायेगा। हम राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जिन-जिन का नाम लेते हैं, उनकी माताओं ने उन्हें वैसा बनाया। आज अपराध बढ़ते जा रहे हैं। बालको में, संतानों में अच्छे संस्कार नहीं होने से, गलत संस्कारों से आज ये दुर्दशा हो रही है। वस्तुतः नारी उत्तम नर की खान है। उत्तम नर उसी खदान से पैदा होते हैं।

सेठ की पत्नी का नाम लक्ष्मी था। उसके पास वात्सल्य का ऐसा धागा था कि जितने भी मेहमान आए, किसी को ऐसा नहीं लगा कि हम पराए घर में आए। सालभर बीत गया। सालभर में पता नहीं कितने ही मेहमान आए। एक बार सेठ जी को सात दिन के लिए बाहर जाने का प्रसंग बन रहा था। व्यापारिक यात्रा थी। सेठ जी ने सेठानी से कहा कि मैं सात दिन के लिए बाहर जा रहा हूँ। मेरे लिए सारे सामान के साथ टिफिन भी तैयार कर देना। सेठ जी ने जैसा कहा, सेठानी ने वैसा ही किया। सेठ जी रवाना हो गए। सेठ जी पहले कहीं जाते थे तो उनको होटल में रुकना पड़ता था किंतु इस बार जहाँ भी गए, वहाँ सब लोग कहते थे कि आप हमारे घर ही पधारना। कोई कहे हमारे घर पधारना और कोई कहे हमारे घर पधारना। होटल नहीं जाना। कोई कहता है आज भोजन के लिए हमारे घर आना। सेठ जी की इतनी मनुहार होने लगी कि उन्हें सोचना पड़ता कि किसके घर जाऊँ और किसके घर नहीं जाऊँ। कभी-कभी तो उनको दो-दो, तीन-तीन घरों में भी जाना पड़ा।

सेठ जी मन में विचार करने लगे कि पहले मैं यहाँ आता था तो होटल में खाना खाता था और अब लोग मुझे बुला-बुलाकर अपने घर ले जा रहे हैं। सेठ जी ने सोचा कि पहले इतनी पूछ-परख नहीं थी, अब इतनी कैसे हो गयी! इतने आत्मीय भाव कैसे हो गए! सेठ जी यात्रा करके लौटे तो उनको याद आया कि मैंने तो टिफिन खोला ही नहीं। उन्होंने पत्नी से कहा, मैंने टिफिन नहीं खोला। तू देख लेना कि कहीं टिफिन खराब तो नहीं हो गया। पत्नी ने कहा कि मैंने ऐसा टिफिन तैयार नहीं किया जो खराब हो जाए। मैंने आपका टिफिन पहले ही आगे भेज दिया था, इसलिए आपको टिफिन की जरूरत नहीं पड़ी। सेठ जी इतने खुश हुए कि कहाँ पहले वाली मेरी पत्नी और कहाँ नई वाली पत्नी। पहले कोई

मेहमान घर में आता तो उसको सिरदर्द हो जाता था। वह माथा बाँधकर खाट पर सो जाती थी। किसी रसोइया को बुलाकर चार जनों की रसोई बनवानी पड़ती थी। इसलिए मेहमानों को खिलाने के लिए होटल में ले जाना पड़ता था। नई धर्मपत्नी ने सेठ जी की पूर्व पत्नी के सारे जीवन व्यवहार को बदलकर रख दिया। सेठ जी सात दिन की यात्रा पर निकले और जहाँ गए, वहाँ खातिरदारी हुई।

'राख पत रखाय पत'

यदि अपना व्यवहार अच्छा हो, दूसरों से अच्छा व्यवहार रखें तो सामने वाले भी हमारे साथ अच्छा व्यवहार रखेंगे। सब चाहते हैं कि मेरे साथ अच्छा व्यवहार हो। सब चाहते हैं कि हमारे साथ सब अच्छा व्यवहार करें। यदि हम सबके साथ अच्छा व्यवहार करेंगे तो हमारे साथ भी अच्छा व्यवहार होगा। हम दूसरों से बहुत अपेक्षाएं करते हैं इसलिए वहीं जाकर बाजी हार जाते हैं। यदि हम दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करेंगे, उनके साथ प्रेम से रहेंगे तो वह भी हमारे साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे। इसलिए सबसे पहले यह सोचना चाहिए कि हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं! हमें हमारे व्यवहार पर दृष्टि डालनी चाहिए कि हमारे द्वारा दूसरों के साथ कैसा व्यवहार हो रहा है।

जीवन रो, जीवन रो व्यवहार सुधारे, तो जीणे रो रस आवे...

जीवन का व्यवहार सुधारोगे तो ही जीवन जीने का रस आएगा। जीवन जीने का आनंद आएगा। जीवन में आनंद कैसे आता है, यह सेठ जी की धर्मपत्नी लक्ष्मी ने अपने व्यवहार से बता दिया। उसने बता दिया कि जीवन क्या होता है और व्यवहार क्या होता है। जिसका व्यवहार लोगों को पसन्द आता है, लोग उसके व्यवहार के कायल हो जाते हैं। मारवाड़ में एक और कहावत है कि 'गुड़ देने से काम हो जाये तो जहर क्यों देना' अर्थात् यदि काम प्रेम से हो जाये तो क्रोध क्यों करना! यदि क्रोध से काम निकालना चाहते हो और कुछ उलटा हो गया तो फिर कहोगे कि गलती हो गई, मुझे क्षमा करना। इसलिए पहले अपने व्यवहार को सुधार लो तो गलती मानने की, क्षमा माँगने की नौबत ही नहीं आएगी।

क्रोध, मान-माया लोभ से उपरत होने के बाद हम अनुमान नहीं लगा सकते कि जीवन में कितना आनंद आएगा, पर उस आनंद के अधिकारी नहीं हो सकते क्योंकि हम आनंद लेना ही नहीं चाहते तो आनंद मिलेगा कहाँ से। यदि

कोई सोचे कि ज्यादा पैसे बटोरने से या ज्यादा संपत्ति होने से आनंद आ जाएगा तो वह आने वाला नहीं है।

पंकज जी शाह ने कहा कि मैंने देख लिया खूब पैसा कमाकर, उससे आनंद नहीं मिलता। एक बात ध्यान में रख लेना, यदि कोई ऐसा सोच रहा हो कि मैं मरूँगा तो पैसे की पोटली छाती पर बाँधकर साथ लेता जाऊँगा, तो ऐसा होने वाला नहीं है।

एक ग्राम सोना भी शरीर पर रहने नहीं देंगे लोग। सोना काम नहीं आएगा। जब मौत का तांडव होगा तो न सोना काम आएगा और न चाँदी काम आएगी। सोना-चाँदी कुछ भी काम आने वाले नहीं हैं। सब-के-सब यहीं रह जाएंगे। कुछ भी साथ नहीं चलेगा। साथ चलेगा तो अपना पुण्य और अपना पाप। बाकी सारे यहीं छूट जाएंगे। आपका व्यवहार जरूर काम आएगा। लोग आपके साथ नहीं जाएंगे। ऐसा हो सकता है कि श्मशान तक आपके साथ मन से जाएंगे और कहेंगे कि अरे, सेठ जी का व्यवहार कितना अच्छा था। उनका साथ छूट गया। सेठ जी हमको छोड़कर चले गये। लोग पीछे आपको याद करेंगे। इसलिए बहुत महत्त्वपूर्ण होता है व्यवहार। हम व्यवहार को सीख गए तो जीवन में सहसा कोई अवसाद नहीं होगा। जीवन में कभी दुःखी नहीं होंगे। खेद नहीं होगा। हमारे भीतर कभी अवसाद पैदा नहीं होगा। कभी खिन्नता पैदा नहीं होगी।

कई लोग सोचते हैं कि कोई भी हमारा साथ देने वाला नहीं है। मैंने देख लिया कि सब लोग स्वार्थी हैं। कोई काम आने वाला नहीं है। ऐसा उसने क्या देख लिया? उसने दूसरों को देखने से पहले अपने आपको नहीं देखा। यदि पहले अपने आपको देख लिया होता और स्वयं में सुधार शुरू किया होता तो बाजी उसके हाथ में होती। हमारे जीवन की बाजी हमारे हाथ में है। किसी दूसरे के हाथ में नहीं है। हमारे जीवन की बाजी स्वयं के वश में है। हम जैसी अपेक्षा दूसरों से करते हैं, वैसे ही जीना सीख लें। जैसे व्यवहार की अपेक्षा दूसरों से करते हैं वैसा ही व्यवहार करना सीख लें।

हम दूसरों से क्या अपेक्षा करते हैं? हम दूसरों से क्या ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि वह मुझसे क्रोध में बोले, आक्रोश से बात करे या मुझसे चिढ़े? ऐसा व्यवहार हम पसन्द करते हैं क्या?

नहीं। हम ऐसा नहीं चाहते।

तो कैसा व्यवहार आप पसन्द करते हो?

आप चाहते हो कि सब मुझसे प्रेम से बोलें। सम्मान के साथ बोलें। आदर देते हुए बात करें। मेरे प्रति खिन्नता का भाव नहीं हो।

ये बातें आपके जीवन में आ जायें तो कौन पराया रहेगा बताओ?

फिर कोई पराया नहीं रहेगा। जिससे जान-पहचान नहीं भी होगी, वह भी आपका हो जाएगा। वह भी अपने घर के सदस्य के समान हो जाएगा। केवल मधुर वचनों से सब कुछ अपना हो सकता है।

"कौआ किसका धन हरे, कोयल किसको देत।
मिष्ट वचन के कारणे, जग वश में कर लेत।।"

महाभारत की एक घटना है। कृष्ण वासुदेव की अग्रमहिषियां थीं।

क्या नाम थे?

(सभा में उपस्थित लोग बताते हैं- सत्यभामा, रुक्मिणी)

दो ही थीं क्या? आपको दो नाम ही याद है। मेरा विषय भी दो अग्रमहिषियों का है- सत्यभामा और रुक्मिणी। सत्यभामा सोचती है कि रुक्मिणी के आने के बाद कृष्ण के सामने मेरा स्टेटस कमजोर पड़ रहा है। मेरा बहुमान उनके सामने कम हो रहा है। कृष्ण का प्रेम प्रवाह रुक्मिणी की तरफ ज्यादा बह रहा है। परिवार में भी रुक्मिणी को ज्यादा माना जा रहा है। यह सब देखकर सत्यभामा दु:खी हो गई। एक बार वह किसी तांत्रिक के पास पहुँची और उससे कहने लगी कि मुझे ऐसा मंत्र दें जिससे श्रीकृष्ण वासुदेव को अपने वश में कर सकूं।

वह कौन-सा मंत्र है?

वशीकरण मंत्र है। वशीकरण मंत्र से किसी दूसरे को अपने वश में रख सकते हो। मंत्र से किसी को अपने वश में किया जा सकता है, परंतु उसका हृदय मिल ही जाय कहना कठिन है। मधुर व्यवहार ही वशीकरण मंत्र है। और किसी मंत्र की जरूरत नहीं है। यदि कठोर वचन कहना छोड़ दें, चिढ़ के बोलना छोड़ दें तो व्यक्ति अपने आप आपके अनुकूल व्यवहार करने लगेगा। भगवान महावीर ने साधुओं को खडूस, कर्कश, पीड़ाकारी भाषा बोलने का निषेध किया है। यदि उनके भीतर कठोरता है, रुक्षता है और रुक्षतापूर्वक कोई वचन बोला जा रहा है, वह वचन बोलने में भले ही मीठा हो सकता है, किंतु वह वचन खडूस है। सुनने में मधुर हो सकता है, किंतु हकीकत में वह खडूस भाषा है। जिसके भीतर रुक्षता

नहीं है, आत्मीयता का भाव है वह ऊपर से कठोर वचन भी कह रहा है तो वह शब्द खड़ूस नहीं है। उसके भीतर रुक्षता नहीं है, बल्कि उसके हृदय में आपके लिए वात्सल्य भरा हुआ है। उदाहरण है राजमती का।

धिरत्थु ते जसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे।।

सती राजमती, रथनेमि से कहती है कि तुम्हें धिक्कार है जो असंयमी जीवन के कामी बन वमन किए हुए भोगों की कामना कर रहे हो। किसी समर्थ पुरुष को धिक्कारना महत्त्व रखता है, किंतु ऐसा कहने की हिम्मत भी होनी चाहिए। राजमती के मन में मुनि रथनेमि के प्रति आत्मीयता का भाव था। इसलिए शास्त्रकार उसे खड़ूस वचन नहीं कहते, अपितु सुभाषित वचन कहते हैं। उसको कठोर वचन नहीं कहते हैं। राजमती के भीतर रुक्षता होती है तो वह वचन ऊपर से लाभदायक भी हो, वे वचन प्रभावित नहीं करेंगे। यदि अन्तर में सुधार का भाव है तो वचन महत्त्वपूर्ण और मार्मिक होते हैं। जैसे कि राजमती के वचन हुए। उधर सत्यभामा ने कहा कि मुझे वशीकरण मंत्र की जरूरत है और सत्यभामा को वशीकरण मंत्र मिल गया।

सत्यभामा को कहा गया कि इस मंत्र का पालन करना पड़ेगा। इस मंत्र का पालन करने के लिए आपको मधुर बोलना पड़ेगा। आप कभी भी कठोर भाषा नहीं बोलेंगी। इस पथ्य का पालन कर लिया तो मंत्र सार्थक है, अन्यथा वह विफल हो जाएगा। हमारे शरीर के लिए दवाई ज्यादा महत्त्वपूर्ण है या पथ्य पालन? पथ्य पालन ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। दवाई हमारे शरीर में चार गुना काम करती है तो पथ्य पालन से 12 गुना काम हो जाता है। कोई भी मंत्र तभी सिद्ध होगा जब हमारा जीवन उसको साधे। किसी ने भी कहा नहीं कि घमंड करते हुए, क्रोध करते हुए, राग-द्वेष करते हुए, ईर्ष्या करते हुए, नफरत करते हुए, मंत्र का जाप करते रहो तो मंत्र सिद्ध हो जाएगा। ऐसे में वह मंत्र फलीभूत नहीं होगा। मंत्र के लिए अपने आपको साधना पड़ेगा। अपने जीवन को सहज और सरल बनाना पड़ेगा। ऐसा हुआ तो मंत्र को सधते देर नहीं लगेगी।

कौन-सा मंत्र है?

तज दे वचन कठोर। यह मंत्र कठिन है। अपने व्यवहार से कठोरता को हटा देना आसान नहीं है। जैसे ही व्यवहार सरल हो जाएगा, मधुर हो जाएगा,

वैसे ही सब अपने हो जाएंगे। उस समय ऐसा नहीं लगेगा कि कोई भी मेरा नहीं है। सती मदनरेखा की कहानी चल रही है। मदनरेखा कहाँ गई थी? वह मुनि के वहाँ गई थी। मणिप्रभ विद्याधर के साथ मुनि के वहाँ पहुँचना हुआ और रहस्य का उद्घाटन हुआ। युगबाहु देव बन गया। वह पहले मदनरेखा को वंदना करता है और उसके बाद मुनि को वंदना करता है। इससे ये समाधान मिला कि उपकारी के उपकार को पहले महत्त्व देना चाहिए।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

मुनि को वंदना कर सभी पर्युपासना में बैठे हुए थे। मदनरेखा ने मुनि से पूछा कि मुनिवर! जो घटना घटी है उसके बारे में जानना चाहती हूँ। मणिरथ सम्राट और राजकुमार चन्द्रयश के विषय में जानना चाहती हूँ। मुनिराज ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाकर कहा कि मणिरथ युगबाहु का वध करके निकला। उसको बड़ी उम्मीद थी कि मेरा काम सफल हो गया। वह उसी भावना में मदोन्मत्त होते हुए आगे बढ़ रहा था कि अकस्मात् अंधेरे में सर्प की पूँछ पर उसके घोड़े की टाँग पड़ी। सर्प को बहुत गुस्सा आया। वह लपककर मणिरथ के पैर के अंगुष्ठ को डँस लिया। घोड़ा भी वहीं गिर गया और मणिरथ भी घोड़े से नीचे गिर गया। सर्प का जहर बहुत तेज था। मणिरथ के पूरे शरीर में जहर चढ़ गया। वह अब करे तो क्या करे! रात के अंधेरे में कोई चिकित्सक या उपाय करने वाला मिला नहीं। वह उन्हीं भावों में और उन्हीं अध्यवसायों में सातवीं नरक का मेहमान बना। वह नरक गति में चला गया। उसके बाद पूरे परिवार ने मिलकर, पूरे राष्ट्र ने मिलकर चंद्रयश का राज्याभिषेक कर उसको राजगद्दी पर बिठा दिया।

मणिप्रभ ये बातें सुनकर जागृत हो गया कि मैं क्या सोच रहा था। इस रत्न के विषय में। इसने अपने शील की रक्षा के लिए कितने कष्ट सहे हैं। धिक्कार है मेरे जीवन को! अंत:पुर में पर्याप्त स्त्रियां होते हुए भी मैंने इस बहन पर गलत दृष्टि डाली। वह मदनरेखा से क्षमायाचना करता है और मुनिराज से ''स्वदार संतोष परदार विवर्जन'' व्रत को स्वीकार करता है अर्थात् संकल्प करता है कि मैं आज से किसी परस्त्री पर कुदृष्टि नहीं डालूँगा, किसी के साथ गलत व्यवहार नहीं करूँगा। अब वह मदनरेखा को बहन के रूप में अपनी दृष्टि में ले रहा है।

मदनरेखा ने अपनी अगली जिज्ञासा मुनिराज के चरणों में रखी कि भगवान आपके ज्ञान से बहुत सारी बातें झलकी हैं, अब मैं जानना चाहती हूँ कि

मेरे लघु पुत्र की क्या स्थिति है, जिसे जन्म के बाद जंगल में वृक्ष पर एक झूले में बाँधकर आ गई थी? वह अब तक जिंदा है या मर गया? मदनरेखा ने कहा कि मेरा मन तो नहीं कहता है कि वह मर गया, किंतु आप से सुनना चाहती हूँ।

मुनिराज ने कहा कि जो पुण्यवान पुरुष होता है, जिनका पूर्व का पुण्य प्रबल होता है उसको कोई कठिनाई नहीं आती। उसको कोई-न-कोई आधार उपलब्ध हो जाता है। मुनिराज ने कहा कि मैं उसकी बात बताने के साथ-ही-साथ यह बता देना चाहता हूँ कि कैसे क्या योग बना। अब मुनिराज कैसे उसके सम्बन्ध में फरमाएंगे, यह हम समय के साथ सुन पाएंगे, समय के साथ जान पाएंगे, किंतु इतना अवश्य है कि मदनरेखा ने जो विचार किया था उसने बड़े विनीत भावों से मणिप्रभ विद्याधर को कहा कि हम पहले मुनिराज के दर्शन कर लें फिर जैसा होगा वैसा विचार करेंगे तो मुनिराज के चरणों में आने से कई बातों का समाधान हो गया और मणिप्रभ उसका भाई बन गया। मदनरेखा को अपने जेठ मणिरथ के विषय में जानकारी मिल गई, चंद्रयश के विषय में उसको जानकारी मिल गई। लघु पुत्र के विषय में भी जानकारी प्राप्त होगी। अब आगे हम समय के साथ विचार करेंगे।

बंधुओ! हम विचार करें कि एक महिला कैसे और कितना साहस कर लेती है। मदनरेखा अपने शील की रक्षा के लिए जान देने को भी तैयार है, किंतु अपने जीवन को लांछित करने के लिए तैयार नहीं है। उससे हमें भी प्रेरणा लेनी चाहिए। बहनों को ही नहीं, भाइयों को भी प्रेरणा लेनी चाहिए। हम किस तरफ घूम रहे हैं और कहाँ-कहाँ हमारी दृष्टि चली जा रही है। हम अपने आपमें संयमित बनें, अपने आपमें नैतिक बनें और अपने व्यवहार को ठीक बनावें, सही बनावें ताकि जीवन का आनंद ले सकें।

आज महासती निर्मलयशा जी की 30 की तपस्या है। आज वे मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो चुकी हैं। जब पच्चक्खाण ले लिया जाता है तो काम पक्का हो जाता है। बाकी भाई-बहनों की तपस्या चल रही है। हम उनसे प्रेरणा लें। अपने आपको पवित्र बनावें। धन्य बनावें। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

20 सितम्बर, 2021

7

अपना सुख-दुःख अपने हाथ

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख-संपत्ति नो हेतु, ललना...

पिछले दिनों से हम सुख और संपत्ति की चर्चा कर रहे हैं। चर्चा में संपत्ति के छह अर्थ बताए गये। यथा; सम, दम, तितिक्षा, उपरति, समाधान और श्रद्धा। इनमें हम समाधान की बात कहते हैं तो एक प्रश्न होता है कि समाधान मिलेगा कहाँ पर? इस प्रश्न का जवाब है कि समाधान हमारे भीतर मौजूद है। हम जहाँ चाहें वहाँ समाधान है और जैसा चाहें वैसा समाधान है। केवल अपनी अपेक्षा को बाहर निकालना है। केवल अपनी चर्या को निहारना है। अपनी चर्या को देखना है।

हम समाहित नहीं होते उसके कई कारणों में से एक कारण अपनी धारणा या अपनी पकड़ है। हम दुःखी इसलिए होते हैं क्योंकि हमारी पकड़ गहरी होती है। यदि पकड़ को गौण कर दिया जाए और सत्य को सम्मुख रखा जाए तो समाधान हर स्थान पर होगा। हर समस्या का समाधान है।

अपन विचार करें अनाथी मुनि की बात पर। वे बहुत दुःखी थे। उनको धन की कमी नहीं थी। परिवार की कमी नहीं थी। स्नेह की भी कमी नहीं थी। उनके घर में कोई कचकच नहीं थी। संक्लेश जैसी भी कोई बात नहीं थी। इलाज के लिए पानी की तरह पैसों को बहाया जा रहा था। किसी के मन में विचार नहीं आ रहा था कि इतना पैसा खर्च किया जा रहा है। कहीं-कहीं घर में किसी की पढ़ाई या इलाज में खर्च होने पर बात अटक जाती है। कहा जाता है कि हम भी हैं, इसके लिए इतना धन खर्च किया जा रहा है, हमारे लिए क्यों नहीं? किंतु वहाँ ऐसी कोई बात नहीं थी। लेकिन पानी की तरह पैसा बहाने के बाद भी अनाथी मुनि का शरीर रोगमुक्त नहीं हो रहा था।

कौन सुखी हो सकता है? कोई कहता है कि साधु सुखी है। यह भी एकांत बात नहीं है कि साधु बनने से सुख हो ही जाएगा, समाधान मिल ही जाएगा। जब तक मन की अटारी भरी रहेगी, तब तक मन को समाधान नहीं मिलने वाला। मन को खाली कर देने से, मन में उठ रहे विचारों को हटा देने से सारे विकल्प दूर हो जाएंगे। कोई भी विकल्प नहीं रहेगा। उसको कहते हैं निर्विकल्प समाधि। कोई विकल्प नहीं। एकमात्र मौजूदगी अपनेपन की। केवल एक अपनी मौजूदगी बहुत कठिन काम है। भगवान महावीर कहते हैं- 'एगओ चर' यानी अकेले विचरण करो, किंतु हम अकेले विचरण नहीं करते। हमने अपनी आकांक्षा, अपने क्रोध, मान-माया, लोभ, राग-द्वेष, ईर्ष्या, नफरत को साथ में लगा रखा है। हमने इन सबको अपना परिवार मान रखा है। इस परिवार के साथ हम अपने आपको सुखी मानते हैं, जबकि इनसे सुख नहीं मिलेगा। इन सबको हटा देंगे तो जो अवस्था बचेगी वह समाधान देने वाली बनेगी। वह अवस्था समाधि देने वाली बनेगी।

अब आप कहेंगे कि ''न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी'' अर्थात् क्रोध पूर्णतया हटने वाला नहीं है। यदि क्रोध हटने वाला नहीं है तो हम कभी सुखी भी होने वाले नहीं हैं। इस स्थिति में हम सुखी नहीं होंगे यह ठीक बात है, किंतु हम यह सोचें कि क्रोध, माया, मोह, लोभ को हटाना है। बहुत बार यह सुनने को मिलता है कि इन सबसे मुक्त होना बहुत कठिन है। जब पहले ही मान लेते हैं कि बहुत कठिन है तो वह कठिनाई सदा खड़ी रहती है।

एक बड़ी कंपनी में सीईओ की तलाश हो रही थी। उसके लिए परीक्षण किया जा रहा था। कई लोग आए थे। सभी को एक हॉल में बैठाया गया। उन्हें सारी सुविधा उपलब्ध करा दी गई और हॉल का दरवाजा बंद कर दिया गया। उनको सूचना दी गई कि दरवाजा बाहर से बंद रहेगा, दरवाजे पर ताला लगा रहेगा। इस दरवाजे को खोलकर आपको बाहर निकलना है। सारे लोग उसे खोलने के लिए माथापच्ची करने लगे। सारे विचार करने लगे। उनमें एक व्यक्ति ऐसा था जो आराम की नींद सोया था। उसने सोचा रात को तो दरवाजा खोल बाहर जाना नहीं है। अत: रात भर आराम से सोना है। दूसरे लोग उसी समय से खटपट में लग गए थे। हमारे सामने भी विकल्प आता है तो हम खटपट करने लगते हैं। मन को घुमाते रहते हैं, किंतु वह आदमी आराम से सो गया। सुबह

उठा तो देखा कि सभी लोग उठकर दरवाजा खोलने के लिए दिमागी कसरत कर रहे हैं। वह आदमी उठा, नित्य नियम किया और पूरे आत्मविश्वास से दरवाजे को खींचा तो दरवाजा खुल गया।

कहने का आशय यह है कि खाली हम अपने मन में विकल्प खड़े करते रहेंगे तो समाधान नहीं होगा। समाधान के लिए पुरुषार्थ करना होगा। पुरुषार्थ करते रहो। यदि गीता के आधार से कहा जाए तो यह कहा जाता है कि अपना कर्म करते रहो, पुरुषार्थ करते रहो। फल के आकांक्षी मत बनो। यह विश्वास रखो कि मैं जो कर रहा हूँ वह कभी निष्फल जाने वाला नहीं है। हकीकत है कि जो क्रिया की जाएगी उस क्रिया का कोई-न-कोई परिणाम मिलेगा। सारी क्रियाएं परिणामदायक होती हैं। हमारी क्रिया जैसी होगी, जितनी सशक्त होगी वैसा और उतना परिणाम देगी।

उस व्यक्ति ने दरवाजा खोला तो उसको परिणाम मिल गया। क्रिया, मन, वचन और काया से होती है। मन, वचन और काया की युति से की गई क्रिया लाभ देने वाली होगी। वह अच्छी होगी तो सुख देने वाली होगी। जीवन को समाधान देने वाला सूत्र है; अपने लाभ में संतुष्ट रहना। अन्य आकांक्षा नहीं होना। जीवन जीने की सामग्री कम हो या ज्यादा उसमें संतुष्ट रहना। मकान अनुकूल हो या प्रतिकूल, बड़ा हो या छोटा, हवादार हो या बिना हवा वाला, प्रकाश वाला हो या कम प्रकाश वाला, जैसा भी हो उसमें संतुष्ट रहना। अर्थात् हर हालत में प्रसन्न रहना।

शालिभद्र जैसा जीवन प्राप्त हो तो भी मस्ती और सुदामा की तरह खाने-पीने के लाले पड़ रहे हों तो भी मस्ती। पूणिया श्रावक के पास विशेष संपत्ति नहीं थी। वह पुणी-रूई कातता था। उस धागे को बेचा करता था। उससे जितनी भी कमाई होती थी, उसी में खुश रहता था। ऐसा बताया जाता है कि इसी कारण उसका नाम पुणिया श्रावक पड़ गया था। जो कुछ रहा हो, जैसी भी स्थिति रही हो, उसकी जीवनचर्या सीमित थी, किंतु वह उसमें सुखी था।

शालिभद्र जैसी जिंदगी दुनिया में सभी को नहीं मिलती। यहाँ पर बैठने वालों में से शालिभद्र जैसा कोई नहीं है। संपत्ति से भी कोई नहीं है और विचारों से भी कोई नहीं है। शालिभद्र संपत्ति से सुखी नहीं था। वह परिवार के कारण सुखी नहीं था। वैभव भी उसके सुख का कारण नहीं था। उसे सुख था उसके

विचारों से। उसके मन में न कोई फिक्र थी, न ही लोभ-लालच। उसको यह नहीं लगता था कि इतने महँगे-महँगे कपड़े-आभूषण को ऐसे ही कैसे लुटा दूं! उसकी संग्रह बुद्धि नहीं थी कि कपड़े और आभूषण का संग्रह करके रखूँ। उसको कोई फिक्र नहीं थी कि संपत्ति किधर से आ रही है और किधर जा रही है। उसको इससे कोई लेना-देना नहीं।

संपत्ति की चिंता करनी चाहिए या जिंदगी की चिंता करनी चाहिए?

हमें जिंदगी की चिंता करनी चाहिए। हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि मैं प्रसन्न रहूँ। खुश रहूँ। बीमारी में भी लोग खुश रह सकते हैं। आचार्य पूज्य गणेशलाल जी म.सा. कैंसर जैसी भयंकर बीमारी में भी प्रसन्नचित्त थे। आज कैंसर की बीमारी उतनी भयंकर नहीं रही, किंतु उस जमाने में कैंसर का नाम लेते ही आदमी सदमे में चला जाता था। कैंसर की बीमारी बहुत कष्टदायक थी, पर उस बीमारी में भी आचार्यश्री ने कोई हायतौबा नहीं किया, कभी चिल्लाए नहीं। वे सौम्य भाव से रह रहे थे। अन्यथा कैंसरग्रस्त आदमी दूसरों को परेशान करता है कि मुझे यह नहीं मिला, वह नहीं मिला, लेकिन आचार्यश्री संतुष्ट थे। खामोश थे। वह बीमारी उनको पीड़ित नहीं कर पा रही थी, क्योंकि शरीर के प्रति उनका तथाभूत राग नहीं था। शरीर के प्रति तथाभूत ममत्व नहीं था। शरीर के प्रति जितना राग रहेगा, जितना ममत्व रहेगा, उतना ही पीड़ा देगा। जिसने शरीर की संगति छोड़ दी, शरीर से अलगाव कर लिया, अपने को शरीर से जुदा कर लिया, उसे पीड़ा पीड़ित करने वाली नहीं होगी।

हमने कई बार सुना होगा कि सनत्कुमार चक्रवर्ती के शरीर में सोलह महारोग पैदा हो गए थे। एक रोग आदमी को कितना परेशान करता है। कहते हैं कि लंबे समय तक कोई रोग रहे तो आदमी चिड़चिड़ा हो जाता है। उसको लगता है कि लोग क्यों बोलते हैं। वह किसी से बोलेगा तो चिढ़कर बोलेगा, किंतु सनत्कुमार को सोलह महारोग होने पर भी उनके मन में प्रसन्नता वैसी-की-वैसी रही, बल्कि पहले से ज्यादा प्रसन्न ही होंगे। चक्रवर्ती ने कोई इलाज नहीं कराया। उन्होंने साधु जीवन स्वीकार कर लिया। उन्होंने शरीर का कोई इलाज नहीं कराना चाहा। शरीर को ज्यादा सुविधा देने की नहीं सोची। सोलह रोगों से ग्रस्त होकर भी प्रसन्नता से जीवन जी रहे थे।

सोलह रोगों के होते हुए भी उनको कोई दुःख नहीं था। यह जीने का

राज है। इसका पहलू यह है कि शरीर मेरा है ही नहीं तो मैं इसके लिए दुःखी क्यों होऊं। शरीर जैसा है, वैसा चलता रहेगा। इसी तरह मकान जैसा मिला, वही अच्छा है। करना क्या है, कितने वर्ष व्यतीत करने हैं? थोड़ी-सी जिंदगी बितानी है। जिंदगी बीत जाएगी।

झोपड़पट्टी में भी लोग जीते हैं या नहीं?

कई लोग झोपड़पट्टी में भी जीवनयापन करते हैं। जरूरी नहीं कि सबके घर में लाइट लगी रहेगी। सबके घर में पंखे लगे रहेंगे। बिना लाइट-पंखे के लोग झोपड़पट्टी में भी जी रहे हैं। झोपड़पट्टी में कम जगह होती है। घर के लोग बाहर बैठते हैं। औरतें उसी कम जगह में स्नान कर लेती हैं। वहीं पर कपड़ा बदल लेती हैं। वहीं पर रसोई बना लेती हैं। वहीं सोना और वहीं बैठना। सारा काम एक स्थान पर। छोटे-से स्थान में पूरा परिवार पल जाता है। दुःखी रहने वाले बड़े-बड़े आरामदायक मकानों भी दुःखी रहते हैं।

आचार्य पूज्य गणेशलाल जी म.सा. का पहला चातुर्मास एक निबारे में हुआ था। घर के चारों तरफ दीवार खड़ी थी, जिसमें एक दरवाजा, एक बरामदा था। उस स्थान में गुरुदेव का पहला चातुर्मास संपन्न हुआ। आज हमें शिकायत रहती है कि यह स्थान हवा वाला नहीं है, इसमें प्रकाश नहीं है, उजाला नहीं है। जितनी अपेक्षा होगी, जितने विकल्प होंगे उतने ही दुःख होंगे। इसलिए अधिक विकल्प सामने हो तो एक को चुन लो। उसके बाद वह विषय बार-बार दिमाग में नहीं आना चाहिए कि वह ठीक था, वह ठीक रहा होगा। अब उससे क्या लेना-देना! जो भी साधन हैं, कम है या ज्यादा है, नो टेंशन। कम है तो कम में ही जीना है, ज्यादा है तो ज्यादा में जीना है। इसका मतलब यह नहीं कि वह पुरुषार्थ नहीं करे। प्रयत्न नहीं करे। पुरुषार्थ करे। प्रयत्न करे किंतु जितनी सुविधाएं मिलें उसी में आनंद रहे।

हम आनंद श्रावक की बहुत बार चर्चा करते हैं। भिन्न-भिन्न एंगल से चर्चा करते हैं। उनकी चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएं व्यापार में लगी हुई थीं। उनका जीवन सुख से व्यतीत हो रहा था। उन्हें कोई कठिनाई नहीं थी। न परिवार की कमी थी न आदर की। न ही मान-सम्मान की कोई कमी थी। पूरे परिवार में, पूरे गाँव में, आस-पास के गाँवों में, पड़ोसियों में वह एक अलग ही विभूति थे। सबको दिशा देने वाले, सबको मार्गदर्शन देने वाले थे। जीवन में कोई भी समस्या

आ जाए तो आनंद श्रावक से पूछने पर समाधान मिल जाता। इतना होने के बाद भी उनके मन में विचार पैदा हुआ कि ये स्थिति सदा रहने वाली नहीं है। एक दिन मुझे भी मृत्यु का मुकाबला करना पड़ेगा। वह सोचने लगे कि इसके लिए मुझे क्या करना चाहिए। ऐसा सोचते-सोचते उनके मन में एक विचार पैदा हुआ कि साधु जीवन स्वीकार कर लूं। फिर लगा कि मेरी स्थिति साधु जीवन जीने जैसी नहीं है। अपने भीतर साधु जीवन जीने जैसा सामर्थ्य अभी अनुभव नहीं कर रहा हूँ। मेरे पास शक्ति है, ताकत है, किंतु साधु जीवन को स्वीकार कर सकूँ, ऐसा फिलहाल अपने आप में अनुभव नहीं कर रहा हूँ। उन्होंने विचार किया, संकल्प किया और निश्चय कर लिया कि मुझे भगवान महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके अपने पिछले जीवन को सार्थक करना है। आनंद श्रावक ने जीने के लिए सीमित वस्त्र ग्रहण किए और पौषधशाला में आ गए।

साधु के लिए कितने वस्त्र होते हैं?

सरदी हो या गरमी, एक साधु के 72 हाथ वस्त्र और साध्वी के लिए 96 हाथ वस्त्र होते हैं। उसी में ओढ़ना, उसी में बिछौना, उसी में गोचरी-पानी लाने की झोली आदि। वस्त्र, मुँहपत्ती वगैरह सब उसी में। एक मच्छरदानी को छोड़कर बाकी सभी वस्त्र उसी 72 हाथ की गिनती में। मर्यादित वस्त्र में सारा जीवन जीना। कितनी भी सरदी हो जाए उससे अधिक वस्त्र वह स्वीकार नहीं करता।

एक साधु के लिए चार पात्रे हो सकते हैं। यदि दो साधु हैं तो आठ पात्रों में काम चलाना। तीन साधु हैं तो बारह पात्रे। पानी भी उसी में, गोचरी भी उसी में। इससे पहले कि और बात करें, आगम हमारे सामने हैं। पहले ऐसे भी मुनि हुए जो केवल एक पात्र रखते थे। उसी में खाना लाना। चावल, दाल, साग-सब्जी जो भी लाना हो एक ही पातरे में लाते। लाने के बाद आराम से भोग लगाते। फिर उसी पातरे में पानी लाकर पी लेते थे। पिछले वर्षों श्री केसरकुँवर जी म.सा. से सुना था कि उनकी दीक्षा के समय एक टाइम खाना, दो बार पानी मिलता था। अब तो हम जब चाहे तब पानी पी लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि जीवन को जैसा ढालो वैसा हो जाएगा। एक बार खाना खाने और दो बार पानी पीने से काम चले तो ज्यादा बार खाने की क्या जरूरत। उसमें भी असुविधा कुछ नहीं थी। पर हाँ, सुविधा जितनी देंगे उतनी दुविधा होगी।

वैज्ञानिक युग में व्यक्ति को बहुत सुविधाएँ मिली हैं।

सुविधाओं से सुख घटा या बढ़ा? सुविधाएँ बहुत मिली हैं तो आपका सुख घटा या बढ़ा? आज से पचास वर्ष पहले लोग जितने सुखी थे, जितने संतोष से जी रहे थे आज सुविधाएँ मिल जाने के बाद वह सुख मिला क्या? वह संतोष रह पाया क्या?

नहीं। जीवन को समाधान नहीं मिला। आज से 50 साल पहले लोग जितने सुखी थे, जितने संतोष में जी रहे थे अब बहुत सुविधा मिल जाने के बाद भी उतने सुखी नहीं हैं। बहुत सारी सुविधाओं से भी समाधान नहीं मिला। समाधान हमारे मन में है। इसीलिए भगवान की बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि व्यक्ति अपनी वृत्ति को संक्षिप्त बना ले, सीमित बना ले, मर्यादित बना ले तो उसको समाधि मिल सकती है।

आनंद श्रावक के पास बहुत संपत्ति थी, किंतु उसने 26 बोलों की मर्यादा कर ली। उसने 26 प्रकार की चीजें ही काम में ली, बाकी सबको त्याग दिया। 26 चीजों में जीवन चल सकता या नहीं चल सकता?

(सभा में से आवाज आती है- चल सकता है)

खाने में कितने आइटम जरूरी हैं।

(सभा में से कोई कहता है 21 आइटम और कोई कहता है 30)

आनंद श्रावक ने 26 चीजें सीमित कर ली। और हमें सिर्फ खाने के लिए कितनी चीजें चाहिए? ब्यावर में पूज्य बोथलाल जी म.सा. विराज रहे थे। कवि अमरचंद जी म.सा. आए और वंदना की। म.सा. ने कहा, दया पालो। बोथलाल जी म.सा. आँखों से लाचार थे। उनको मालूम नहीं कि साधु है या श्रावक। उन्होंने कहा, कितने द्रव्यों की मर्यादा कराऊं? श्री अमरचंद जी म.सा. ने कहा 21 द्रव्य के नियम दिला दें। मुनिश्री बोथलाल जी ने कहा, काँई ढांढों है। यहाँ प्रश्न खड़ा होता है कि ढांढों-पशु को कहाँ 21 द्रव्यों की जरूरत है। उसे धरम चारा, बांटा, पानी मिल गया, बहुत हो गया। उसका काम तो 5-7 द्रव्यों से चल जाता है, किंतु वह हर कहीं मुँह डालता रहता है। परिणामस्वरूप उसके द्रव्यों की मर्यादा नहीं हो पाती। मुनिश्री के कहने का आशय था कि पशु तो कहीं मुँह डाल देता है। उसके 21 द्रव्य या ज्यादा भी लग जाए कोई भरोसा नहीं। तुम इनसान हो। तुम्हारा जीवन सीमित साधनों से काम चलाने वाला होना चाहिए।

आपके पड़ोसी गाँव बाबरा के श्री प्रकाश जी खिंवसरा चेन्नई में रहते हैं। उन्होंने छह महीने के एकासन के पच्चक्खाण लिए। छह महीने के एकासन छह मिनट में करना। बोलो यहाँ कौन-कौन है जो छह महीने तक एकासन करेगा और केवल छह मिनट में। उन्होंने एकासन में द्रव्य भी छह ही रखे थे। बोलो आज का एकासन छह मिनट में पूरा करना है और छह आइटम से ज्यादा लेना नहीं। आज का नहीं होता है तो कोई बात नहीं, कल का कर लो। कल का एकासन छह मिनट में कर लो। छह मिनट से ज्यादा नहीं। और आइटम भी छह ही। यहाँ शूरवीरों की कमी नहीं है। असंभव कुछ नहीं है।

(एक-एक कर कुछ लोग खड़े होने लगे)

कई लोग खड़े हो रहे हैं। कल का है या आज का?

(खड़े लोगों की तरफ से आवाज आती है- कल का)

तो कल का एकासन छह आइटम और छह मिनट में करना। छह आइटम से ज्यादा नहीं।

(आवाज आती है कि छह आइटम में पानी भी गिना जाएगा क्या?)

हाँ, धोवन पानी भी गिना जाएगा। अब आज का नियम; आज जो खा लिया, वह खा लिया। अब 11 आइटम से ज्यादा नहीं खाना।

वास्तव में जब हम अपने आपको सीमित कर लेते हैं तो ज्यादा दुःख नहीं रहता। सीमित करने का मतलब ये नहीं कि जरूरत से ज्यादा संग्रह नहीं करना। हमारी इच्छाएँ दौड़ती रहती हैं कि यह भी संग्रह कर लूं, वह भी कर लूं, इतना पैसा कमा लूं। आनंद श्रावक ने अपने परिग्रह की मर्यादा की। उसने व्यापार बंद नहीं किया। व्यापार में लाभ होना स्वाभाविक है। उस पर उसकी सोच स्पष्ट थी कि मेरी संपत्ति बढ़े तो बढ़े पर मुझे संग्रह नहीं करना है। वह विचारता है कि मुझे और संपत्ति का संग्रह नहीं करना। जो मेरे पास है, उसी से मैं सुखी हूँ। उसने संपत्ति पर ताला लगा दिया। उसकी संपत्ति पर ब्रेक लग गया। उसने सोच लिया कि मुझे अब आगे के लिए संपत्ति संगृहीत नहीं करनी। मुझे और संपत्ति संगृहीत नहीं करनी है। जितनी संपत्ति मिली उसी में उसका मन तृप्त है।

स्थानांग सूत्र में सुख शय्या का वर्णन करते हुए बताया गया है कि पहली सुख शय्या है- अपने लाभ में संतुष्ट रहना। दूसरे की तरफ ताकना नहीं। ऐसी सोच नहीं हो कि उसने ज्यादा धन कमा लिया, मैं भी कमाऊँ। चाहे किसी ने

कुछ भी कमा लिया हो उससे क्या लेना-देना। हमें यह सोचना चाहिए कि मैं क्या कर रहा हूँ और मुझे करना क्या है। अपनी सोच दुनिया की सोच नहीं है। दुनिया क्या कर रही है, उससे हमको कुछ लेना-देना नहीं है। सुखी होने की बस एक ही शर्त है कि मैं क्या कर रहा हूँ। ये मत सोचना कि 25 रंगी में किस-किस ने नाम लिखाये, मुझे उसकी लिस्ट दिखाइए। हमको यह सोचना चाहिए मुझे किसमें नाम लिखाना है। मुझे 25 में नाम लिखाना या 24 में नाम लिखाना है या सबसे हटकर 30 सामायिक करना है। 25 रंगी में 25 सामायिक करनी जरूरी है। आप उससे ज्यादा करना चाहो तो कोई मना नहीं है। किसी की इच्छा है तो 30 भी कर सकता है। किसी की इच्छा बड़ी है तो वह 40 सामायिक भी कर सकता है।

आचार्य पूज्य श्री श्रीलाल जी म.सा. के समय में एक व्यक्ति ने 151 सामायिक एक साथ की। मन सुदृढ़, संकल्पित हो तो कुछ भी असंभव नहीं है। सब कार्य संभव है, बस मन बनाने की आवश्यकता है। ध्यान रहे- ''मन के हारे हार है और मन के जीते जीत।'' यदि हम मन से पहले ही हार जाएंगे तो कोई भी कार्य संभव नहीं है। इसलिए सबसे पहले मन को दृढ़ बनाना होगा।

मन कमजोर तब हो जाता है, जब सुविधाओं को खोजने लगते हैं, चाहने लगते हैं। आज हम जितनी सुविधाओं में जी रहे हैं उससे कम सुविधाओं में भी लोग मस्ती में जी रहे हैं। जिसमें मस्ती आ जाती है, जिसे हर हालत में प्रसन्न रहना आ जाता है, उसके लिए तो जीवन बड़ा आनंददायी हो जाता है। जीने के लिए चाहे दूसरे कितने भी साधन एकत्रित कर लो, किंतु प्रसन्नता नहीं हो, तो सब बेकार है। किसी के पास सुविधा कम हो पर वह प्रसन्नता से जी रहा है तो उसको जीने का आनंद आएगा। मेरे खयाल से दिन भर में शायद आधा किलो से ज्यादा खाना नहीं खाते होंगे। जो हम खा रहे हैं रोटी, चावल वह आधा किलो से ज्यादा नहीं होगा।

दूसरी तरफ यदि हजार किलो भोजन भी मिल जाये, पर हम खा न सकें तो वह हजार किलो भोजन भी किस काम का! यदि हम हाथों से संपत्ति बटोरने लगें तो कितनी संपत्ति हाथ में आएगी? मुट्ठी या अंजलि भर लो तो कितनी संपत्ति हाथ में आएगी?

नदी का पानी बह रहा है और एक आदमी उसके किनारे खड़ा सोच रहा है कि मुझे बहुत प्यास लगी है तो दूसरे आदमी ने कहा कि भला आदमी,

नदी तेरे सामने है, पानी पी ले। वह कहता है कि इस नदी का पाट बहुत चौड़ा है, मेरे मुँह में आएगा नहीं, तो दूसरे आदमी ने कहा- यदि ऐसा सोचोगे तो सोचते ही रह जाओगे। पानी कभी तुम्हारे मुँह में नहीं आएगा। तू इंतजार करते-करते मर जाएगा तो भी नदी अपना पाट छोटा नहीं करेगी। तू चुल्लू से पानी पी ले तो तेरी प्यास बुझ जाएगी और मौत से बच जाएगा।

स्पष्ट है कि पूरी नदी की जरूरत नहीं है। नदी के पानी से प्यास बुझानी है, जो बुझाई जा सकती है।

एक बगीचे में आम के वृक्ष लगे हुए हैं। किसी को पेट भरने के लिए दो या तीन आम चाहिए। अत: मन में ऐसी धारणा नहीं होनी चाहिए कि सारे आम मुझे मिल जायें। नहीं मिले तो टेंशन। टेंशन पालने की जरूरत कहाँ है, किंतु आदमी टेंशन पालता है। वह मन में द्वंद्व पैदा करता रहता है कि मुझे सब कुछ मिल जाये। ऐसी सोच नहीं बनानी चाहिए। अपने हाल में मस्त रहना सीखें। अपने हाल में मस्त रहकर जीने वाले बहुत कम मिलेंगे। समझने वाले बहुत हैं किंतु समझकर उस पर प्रवृत्ति करने वाले बहुत कम मिलेंगे। हमको कर्म करने के लिए कोई रुकावट नहीं है। पुरुषार्थ करने के लिए कोई रुकावट नहीं है। सुविधाओं से जीने के लिए कोई दिक्कत नहीं है। शांत चित्त से जो मिल गया, वह बहुत है।

सहज मिला वह दूध बराबर, मांग लिया वह पानी।
खींच लिया वह खून बराबर, कहती गोरखवाणी।।

अर्थात् जो सहज में मिल जाए उसमें ही आनंद मान लो।

जैसे धन्ना अणगार की प्रतिज्ञा थी कि कभी गोचरी मिल जाये तो अच्छा और नहीं मिले तो भी मस्ती। भगवान ऋषभदेव की बात मुझे याद आ गई। वे रोज भिक्षा के लिए जाते थे। एक दिन भिक्षा नहीं मिली, दो दिन भिक्षा नहीं मिली। एक-एक दिन करके उनको एक वर्ष तक भिक्षा नहीं मिली। इस प्रकार उनकी तपस्या एक साल की हो जाती है।

आप विचार करें कि ऐसे-ऐसे मुनिराज हुए जो पानी और आहार एक साथ लाते थे। जितना आ गया उसी में संतोष कर लेते थे। लाने में भी मर्यादा होती थी। जो मिल गया सो मिल गया। मिल गया तो भला, नहीं मिला तो भला। नहीं मिला तो तपस्या कर लेते। यह था उनकी साधना का आनंद। जो मिला,

जितना प्राप्त हुआ, उसी में मगन। उनके जीवन में कोई आकांक्षा नहीं। कोई अपेक्षा नहीं कि मुझे यह चाहिए, ऐसा आहार-पानी चाहिए। यह सुखी रहने का सूत्र है। कम मिला कम खाया तो कोई तकलीफ नहीं, किंतु ज्यादा खाना या संग्रह करना दुःख को निमंत्रण देना है।

एक व्यक्ति जरूरत से ज्यादा खाता है। पेट में जगह नहीं है, पर रसना के वश हो वह चूर्ण, चटनी, हाजमोला आदि खाता रहता है। ऐसा खाया हुआ भोजन उसके लिए लाभकारी होगा या हानिकारक, यह हम समझ सकते हैं।

यदि कोई गाड़ी 15 टन भार वहन करने में समर्थ हो, किंतु उसमें रोज-रोज 20-25 टन माल भरा जाए तो वह थोड़े दिन तक चलेगी। वह गाड़ी अधिक दिन तक चलने वाली नहीं है। इसी प्रकार अपने शरीर को जरूरत से ज्यादा आहार देंगे तो शरीर की गाड़ी भी लंबे समय तक चल नहीं पाएगी। भगवान ने ऊनोदरी तप बताया है। उसके मर्म को समझने का प्रयास करें। उसका तात्पर्य है हम अपने जीवन को संयमित बनाएं। ऐसा होने पर हर हालत में प्रसन्न रह सकते हैं, हर अवस्था में खुश रह सकते हैं। यह हमारा समाधान है। यही हमारी समाधि का राजमार्ग है।

समाधान और समाधि की बात हमने सुनी। इससे स्पष्ट होता है कि सुखी जीवन का राज है मन को समाहित करना। मन को समाहित करने का मतलब है कि जो प्राप्त है उसी में आनंद मनाना। आज लाभ हुआ तो भला और लाभ नहीं हुआ तो भला। दिक्कत की बात नहीं है। कठिनाई की बात नहीं है। इस प्रकार की जिंदगी जीवन को समाधि देने वाली बनेगी। समाधान देने वाली बनेगी।

हम मदनरेखा के विषय में कई दिनों से सुन रहे हैं। वह मुनि से अपने पुत्र के विषय में जानना चाहती है। मुनि ने कहा कि तुम अपने पुत्र के विषय में जानना चाहती हो, किंतु पहले उसके पूर्व जीवन को जान लो तो यह ज्ञात हो जाएगा कि अनजाने ही कैसे-कैसे सम्बन्ध जुड़ जाते हैं। जिसका कोई नहीं होता है, वह सबका हो जाता है और जो सबका है, वह अकेला पड़ जाता है। ये सारे खेल कर्मयोग से बन जाते हैं। ऐसा कहते हुए मुनिराज ने कहा कि तुम अपने लघु पुत्र के पूर्व जन्म की बात सुनो।

मुनि ने बताया कि इस जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती

विजय में श्री मणितोरण नामक पुर में मितयश चक्रवर्ती था। उसकी महारानी पुष्पवती की कुक्षि से पुष्पशिख और रत्नशिख दो पुत्रों का जन्म हुआ। दोनों राजकुमार विनीत व दयालु थे। धर्मानुष्ठान में रत रहते थे। दोनों का परस्पर प्रेम जन-जन को प्रभावित करता था। मानो दो शरीर में एक आत्मा रही हो, ऐसा उनका एकात्म भाव था। एक समय ऐसा आया कि चक्रवर्ती सम्राट ने दोनों राजकुमारों को राज्य संभलाया व स्वयं जैनेश्वरी भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली। दोनों भाइयों ने 84 लाख पूर्व वर्षों तक राज्य का कुशलता से संचालन किया।

एक बार की बात है कि उनको निमित्त मिला। दोनों का चित्त संसार के भोगों से विरक्त हो गया। दोनों ने चारण मुनि के पास चारित्र स्वीकार किया। 16 (सोलह) लाख पूर्व वर्षों तक संयम साधना से आत्मा को भावित कर समाधि भाव से मृत्यु का वरण किया। अच्युतकल्प में सामानिक देव रूप में उत्पन्न हुए। 22 सागरोपम तक देवों के दिव्य काय भोगों को भोगकर धातकी खंड के भरत क्षेत्र में हरिषेण वासुदेव की सम्राज्ञी समुद्रदत्त के पुत्र रूप में जन्म लिया। वहाँ वे सागरदेव व सागरदत्त नाम से विख्यात हुए। वहाँ भी दोनों भाइयों ने केवली दृढ़सुव्रत से दीक्षा धारण की। दीक्षा स्वीकार करने के तीसरे ही दिन विद्युत प्रपात से मृत्यु को प्राप्त हुए। शुद्ध आराधना के बल से दोनों महाशुक्र विमान में महर्द्धिक देव रूप में उत्पन्न हुए। 17 सागरोपम तक वे उस दिव्य भाव में रहे।

एक बार वे अरिहंत भगवान नेमीनाथ भगवान के समीप आए। देशना सुन, दर्शन-वंदन कर पूछा, भगवन्! हम दोनों इस देव भव से च्यव कर कहाँ जन्म लेंगे? कहाँ उत्पन्न होंगे?

भगवान ने कहा, तुम दोनों में से एक मिथिला नगरी के राजा जयसेन के पुत्र रूप में जन्म लेगा और दूसरा सुदर्शनपुर के युवराज युगबाहु का पुत्र होगा।

यह बात कौन सुना रहा है?

यह बात अरिष्टनेमि भगवान ने सुनाई और उन्होंने सुनी। यह बात मुनि के मुख से मदनरेखा सुन रही है। मुनि के कहे अनुसार एक भाई जयसेन राजा के यहाँ मिथिला नगरी में जन्म लेता है। उसका नाम पद्मरथ रखा जाता है। यथासमय जयसेन राजा संयम धारण करते हैं। दूसरा देव जो तुम्हारी गोद से जन्मा, जिसको तुमने पेड़ की शाखा पर लटकाया था, झूले में बाँध के पेड़ की

टहनी पर लटकाया था, उसे पद्मरथ राजा ले गया। हुआ यह कि उसी समय अश्व से अपहृत हुआ पद्मरथ राजा वहाँ आया। उसने रुदन की आवाज सुनी। उसने सोचा कि इस जंगल में मनुष्य के रुदन की आवाज! उसने अपनी नजर इधर-उधर दौड़ाई। चारों तरफ कान लगाया। उन्होंने एक पेड़ पर कपड़े से लटके झूले को देखा। उसको देखकर वे आगे बढ़े, तो पेड़ पर लटके झूले में रही हुई संतान को देखा। उसे देखते ही उसके भीतर प्रेम, वात्सल्य और प्यार उमड़ पड़ा। उसने संतान को सीने से लगा लिया।

यह बात गुप्त रखी गई और राजा ने उस बच्चे को अपनी महारानी को सौंप दिया कि तुम संतान के लिए बड़ी चिंता कर रही थी। इसका भव्य रूप से लालन-पालन करो। इस तरह तुम्हारा पुत्र पहुँच गया मिथिला नगरी के राजा पद्मरथ के वहाँ। उसका वहाँ पर लालन-पालन हो रहा है।

आगे की कहानी क्या सामने आती है वह समय के साथ सुनेंगे, किंतु जो पुण्यवान होता है उसको कोई-न-कोई सहयोग मिल जाता है, सहारा मिल जाता है। ज्यादा चिंता नहीं पालनी चाहिए। आचार्य पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि ''पूत सपूतं किं धनसंचय पूत कपूतं किं धनसंचय'' अर्थात् पूत सपूत हो तो क्यों धन संचय और पूत कपूत हो तो क्यों धन संचय। यदि आपने धन संचय किया है और आपका पुत्र कपूत है तो वह धन का सही उपयोग नहीं करेगा। उसके लिए धन संचय करने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हारी संतान, तुम्हारा बेटा कपूत है तो वह कपूताई करेगा। वह धन को उड़ा देगा। और बेटा सपूत होगा तो उसको तुम्हारे धन की आवश्यकता नहीं है। वह अपने आप धन का संचय कर लेगा। वह पुण्यवान होगा, उसकी भुजा में बल होगा तो वह अपने आप धन, संपत्ति कमा लेगा। आप सोच रहे हो कि मेरी संतान का क्या होगा इसलिए उसकी खातिर धन संचय कर लूं। यह सब चिंता व्यर्थ है। यह चिंता किसी काम की नहीं है कि मेरे धन संचय से वह सुखी हो जाएगा। आप इस भ्रम में मत रहना। यदि पुण्यवानी उसकी होगी तो वह सुखी हो जाएगा नहीं तो आप कितने भी साधन जुटा लें उसको सुखी नहीं बना पाएंगे। अत: हाय-हाय क्यों करना? हाय-हाय छोड़ें और शांति-समाधि में जीएं। शांति और समाधि से जीएंगे तो धन्य हो जाएंगे। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

8

सर्वांगीण विकास का पथ

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख संपत्ति नो हेतु, ललना...

विकास दो तरह का होता है; पहला, भौतिक विकास और दूसरा, आध्यात्मिक विकास। हमारी आत्मा ने विकास किया है। हमारा भ्रमण एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय तक होता रहा है। कितने पुण्य का संचय हुआ होगा, तब हमें पाँच इंद्रियाँ प्राप्त हुईं। एक समय ऐसा भी था जब हम निगोद में, एक ही शरीर में हमारी आत्मा अनंतानंत जीवों के साथ थी। जन्म एक साथ हुआ, जीवन एक साथ रहा और मरण भी एक साथ हुआ। वह शरीर बहुत छोटा था। उस छोटे-से आवास में अनंतानंत जीव एक साथ रहे। आज मनुष्य के रूप में पचेंद्रिय जीवन प्राप्त हो गया। यह भी एक विकास है, किंतु यह विकास भौतिक है। यह आध्यात्मिक विकास नहीं है। ऐसा विकास अनेक बार हुआ पर सार्थक नहीं हो पाया।

हजारों की संपत्ति वाला लखपति बन जाता है, लाखों की संपत्ति वाला करोड़पति बन जाता है और करोड़ों की संपत्ति वाला अरबपति बन जाता है। कभी राजा बन गया और कभी चक्रवर्ती भी बन गया। भौतिकता की दृष्टि से उसने बहुत विकास कर लिया, किंतु आध्यात्मिक विकास नहीं हुआ। जो विकास हुआ वह भौतिक हुआ। उस विकास से भी गर्ज सरी (काम नहीं निकलना) नहीं। सर्वांगीण आध्यात्मिक विकास के लिए अथवा यूं कह दूं कि सार्थक विकास के लिए चार बातों की आवश्यकता होती है। वे चार बातें हैं- मनुष्य भव, श्रुत-श्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ।

मनुष्य जीवन पहली आवश्यकता है। मनुष्य जन्म की प्राप्ति होना पहली आवश्यकता है, किंतु मनुष्य जन्म प्राप्त हो जाने पर यदि आगे के सूत्र नहीं मिले, आगे के अवयव नहीं मिले, आगे की अवस्थाएँ प्राप्त नहीं हो पाईं तो

सर्वांगीण विकास नहीं हो पाएगा। दूसरा है, श्रुत का श्रवण अर्थात् तीर्थंकर देवों की वाणी सुनने का अवसर मिलना। मौका मिलना। तीसरा है, उस पर श्रद्धा। हमारे रोम-रोम में वह वाणी ऐसी रम जाए कि उसका और मेरा भेद अलग नहीं हो। उसके बाद उस वाणी के अनुसार पुरुषार्थ करना। इस तरह जब चार अवस्थाएँ बनती हैं, तब हम सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर हो पाते हैं। तो सर्वांगीण विकास कर पाते हैं।

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की स्तुति करते हुए यह कहा जाना कि श्री सुपार्श्वनाथ भगवान को वंदन क्यों करें, प्रश्न ही हुआ। उसके उत्तर में सुख और संपत्ति को हेतु बताया गया। संपत्ति के छह प्रकार मैंने कल या परसों बताए। सम, दम, तितिक्षा, उपरति, समाधान और श्रद्धा। इनमें से समाधान तक की व्याख्या कर चुका हूँ। छठा भेद है श्रद्धा। मन की ऊहापोह शांत होना। श्रद्धा बहुत महत्त्वपूर्ण है। कोई-कोई इसका तात्पर्य विश्वास होना बताते हैं, पर इन दोनों में अंतर है। घर के नौकर पर भी विश्वास किया जाता है और घर के सदस्यों पर भी विश्वास किया जाता है, किंतु वह श्रद्धा नहीं हो सकती। श्रद्धा का सामान्य अर्थ यह होगा कि श्रद्धेय की बात को निःशंक हो स्वीकार करना अर्थात् सत्य को उसी रूप में देखना। दूसरे शब्दों में श्रद्धा का अर्थ होगा- श्रद्धेय में एकमेक हो जाना। तद्रूप बन जाना। इसे ऐसे समझ सकते हैं- जैसे लोहे के गोले को आग में डाल दिया जाए तो कुछ देर बाद वह अयस्क गोले के रूप में नहीं दिखता। वह आग का गोला हो जाता है। उसके अणु-अणु में आग प्रविष्ट हो जाती है। उसमें रम जाती है। दूर से देखने वाला यह नहीं कह सकेगा कि वह लोहे का गोला है। उसको लगेगा कि आग का ही गोला है। बस श्रद्धा का यही तात्पर्य है कि वह आपके रूह-रूह में रम जाए।

तमेव सच्चं निसंकं जं जिणेहिं पवेइयं...

वही सत्य है, निःशंक है। कोई शंका नहीं है। कोई डाउट नहीं है। भगवद्वाणी पर कोई संशय नहीं है। 'जं जिणेहिं पवेइयं' अर्थात् वही सच है, निःशंक है। जिनेश्वर देवों ने जो कह दिया और जो कहा है, वह वैसा ही है। एक पूर्णविराम या एक मात्रा पर भी संशय नहीं है। जो कह दिया वही सत्य है क्योंकि सर्वज्ञ के ज्ञान में वैसा ही है जैसा वे कहते हैं पर छद्मस्थ के ज्ञान में एकांत वैसी स्थिति नहीं होती है। क्योंकि उनका ज्ञान आवरण युक्त है। केवलियों का ज्ञान

निरावरण है। एक बल्ब पर आवरण पड़ा हुआ हो तब उसका प्रकाश उतना नहीं फैलेगा, जितना आवरण के बिना बल्ब से प्रकाश फैलेगा। आवरण पड़े हुए बल्ब से आवरण हटा दिया जाए तो उसका प्रकाश भी फैल जायेगा। वैसे ही छद्मस्थों के ज्ञान और सर्वज्ञ के ज्ञान में फर्क होता है। इसलिए तीर्थंकर जिनेश्वर देवों ने जो कह दिया, वह अमिट है। वह अपरिवर्तनीय है। उसमें किसी बदलाव की आवश्यकता नहीं है। ऐसी अटूट श्रद्धा रूह-रूह में रम जाए तो हमारे जीवन के किसी भी अंश से उससे विपरीत ध्वनि प्रकट नहीं हो सकती।

श्रद्धा के लिए एक बात महत्त्वपूर्ण है कि जो श्रद्धेय होता है उसी के प्रति श्रद्धा होती है। मैंने अभी कहा कि नौकर के प्रति भी विश्वास करते हैं और घर के सदस्यों के प्रति भी विश्वास करते हैं, किंतु वे श्रद्धेय नहीं होते। श्रद्धेय का अर्थ है जिसके ऊपर श्रद्धा हो। दिखने में शरीर भिन्न-भिन्न दिख रहा है, किंतु आत्मा एकरूप हो गई, हृदय एकरूप हो गया। जिनसे हृदय तृप्त हो गया, जिनसे हृदय की एकात्मकता बन गई, वे हमारे श्रद्धेय हैं। श्रद्धेय का एक-एक वचन श्रद्धनीय होता है। श्रद्धा करने योग्य होता है, क्योंकि वे वचन ही उनके नहीं रहे। मेरे द्वारा स्वीकार कर लेने से वे वचन मेरे हो गए। मेरा रूह-रूह उनमें रम गया। उनका जो वचन है वही मेरा वचन है। उनका जो इंगित है वही मेरी प्रवृत्ति है। उनका जो इशारा है वही मेरा जीवन है। उससे भिन्न मेरा कोई अस्तित्व नहीं है।

भगवान महावीर के पास इंद्रभूति गौतम पहुँचे। इंद्रभूति ने जिस समय कदम बढ़ाया था वह क्षण भिन्न था। उस समय उनके विचार भिन्न थे किंतु भगवान के पास पहुँचे तो उनका हृदय विभोर हो गया। उनका हृदय भगवान महावीर के प्रति अर्पित हो गया। जहाँ मन अर्पित हो जाता है, वहाँ समाधान हो जाता है। जहाँ दिल एक हो जाता है, वहाँ कोई प्रश्न खड़ा नहीं रहता। अपने आप समाधान हो जाता है। भगवान के तीन पद उनके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाले बन गए। वे प्रभु के चरणों में ऐसे रम गए कि जो भगवान का इशारा होता वही स्वीकार होता। कोई तर्क नहीं, कोई वितर्क नहीं। वही जीवन, वही चर्या। इंद्रभूति गौतम भगवान के प्रथम सुशिष्य बने। प्रथम गणधर बने।

उपासकदशा सूत्र के अनुसार आनंद श्रावक ने गौतम स्वामी को अपने अवधिज्ञान का विषय बताया। गौतम स्वामी, आनंद से कहते हैं कि श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है, किंतु तुम जितना बढ़-चढ़कर बता रहे हो, उतना नहीं

हो सकता। तुमको इसका प्रायश्चित्त लेना चाहिए। उसकी तुम्हें आलोचना करनी चाहिए।

आप देखें आनंद को, वे गौतम स्वामी से कहते हैं कि आलोचना सत्य की होती है या असत्य की?

गौतम स्वामी ने कहा कि आलोचना असत्य की होती है।

आनंद श्रावक ने कहा, भंते तो फिर आलोचना आप ही करना।

इस कथन से गौतम स्वामी शंकित हो गए। वे भगवान के पास पहुँचे और निवेदन किया, तो भगवान ने कहा कि आनंद श्रावक सही कह रहा है, तुम्हें आनंद श्रावक से क्षमायाचना करनी चाहिए। भगवान का निर्देश होते ही गौतम, आनंद श्रावक के पास जाकर उनसे क्षमायाचना करते हैं।

कितना सरल, कितना सहज जीवन है गणधर गौतम का। एक बार भी विचार नहीं किया कि मैं भगवान महावीर का प्रथय शिष्य हूँ। मैं यदि क्षमायाचना करने जाऊंगा तो अच्छा नहीं लगेगा। लोग क्या सोचेंगे कि भगवान महावीर के प्रथम गणधर हैं, किंतु जहाँ सहजता और सरलता होती है, आराध्य के प्रति एकात्म भाव की अवस्था होती है, श्रद्धेय के प्रति श्रद्धा होती है, वहाँ कोई किंतु-परंतु नहीं होता। गौतम स्वामी उसी समय आनंद के पास गए और कहा कि आनंद तुम्हारा कथन सत्य है। मैं तुमसे क्षमायाचना करता हूँ।

बात बहुत छोटी नजर आती है, किंतु मन मुड़ना आसान नहीं होता। हमारा मन बहुत बार अपने बड़प्पन में अटक जाता है। जहाँ बड़प्पन का अनुभव करते हैं वहाँ श्रद्धेय के साथ तालमेल नहीं जुड़ पाता। तालमेल तब जुड़ता है, जब उसमें लघुता बनी रहती है। उससे विपरीत जैसे ही गुरुता का भाव आता है, बात जुदा हो जाती है। मेरा बड़प्पन बना रहना चाहिए, गुरुता है। जहाँ गुरुता है वहाँ नम जाना कठिन है। ऐसी स्थिति में कैसे होगी श्रद्धा? मतलब अभी तुम्हारा अस्तित्व मौजूद है। जैसे लौहपिंड को अग्नि में डालने पर उसके प्रत्येक अणु में अग्नि प्रविष्ट हो गई, वैसे ही तुम्हारे भीतर श्रद्धा व्याप्त हो जानी चाहिए थी, जो नहीं हो पाई। अभी किंतु-परंतु बाकी है। किंतु-परंतु होने का अर्थ है कि अभी मन समाहित नहीं है। बिना मन समाहित हुए श्रद्धा कहाँ से व्यक्त हो पाएगी?

हम यह मानकर चलते हैं कि हम श्रद्धाशील हैं पर मानना ही पर्याप्त नहीं है। वैसा अनुभव भी होना चाहिए। यह देखने की जरूरत है कि श्रद्धा हमारे

रूह-रूह में रमी या नहीं रमी।

श्री भगवती सूत्र में बताया गया है कि श्रद्धा कण-कण में रम जाए यानी हड्डी और हड्डी के बीच में रही हुई मज्जा तक श्रद्धा चली जानी चाहिए। अर्थात् हर जगह श्रद्धा का भाव रमा होना चाहिए। कुछ भी उससे रिक्त नहीं रहे। वहाँ से श्रद्धा के विपरीत कोई भी ध्वनि नहीं उठनी चाहिए। यह कठिन अवश्य लगता है किंतु सत्य है। जब हमारे भीतर सत्य होगा, लघुता होगी और श्रद्धा रोम-रोम में रम जाएगी तो हमारा व्यवहार तद्रूप हो जाएगा। उस बदलाव के लिए हमें कुछ करना नहीं पड़ेगा, अपने आप ही बदलाव आ जाएगा।

कन्या की शादी होती है तो वह ससुराल जाती है। ससुराल जाने के बाद उसका व्यवहार, उसका बरताव वह नहीं रहता जो पीहर में था। उसका व्यवहार बदल जाता है। उसकी चाल-ढाल बदल जाती है। उसकी चाल-ढाल कैसे बदल जाती है? वातावरण की वजह से बदल जाती है। वह सोचती है कि अब मैं पीहर में नहीं हूँ। पिता के घर में नहीं हूँ। अब मैं ससुराल आ गई हूँ। मैं अब पुत्री नहीं, वधू के रूप में हूँ। कुल की वधू बन गई हूँ। अब इस कुल के अनुसार मुझे ढलना है। उसकी इस सोच से उसके व्यवहार में रूपांतरण आ जाता है। इसी प्रकार श्रद्धा पैदा होने पर अपने मन में रूपांतरण हो जाता है।

गौतम स्वामी के मन में श्रद्धा प्रकट होते ही तर्क नहीं रहा। गौतम स्वामी, भगवान महावीर के पास आए तो थे शास्त्रार्थ करने के लिए, किंतु उनके पास पहुँचते ही उनका दिल श्रद्धान्वित हो गया। दिमाग से शास्त्रार्थ की बात टल गई। दिमाग की बत्ती चालू होती है तर्क से। बुद्धि तर्क करती है, किंतु हृदय तर्क नहीं करता। गौतम स्वामी के हृदय ने भगवान महावीर को स्वीकार कर लिया। अब कुछ भी तर्क की बात नहीं रह गई। दिल ने दिमाग को समझा दिया। अब दिल में भगवान महावीर विराज गए। जब स्वयं भगवान महावीर का आसन दिल में लग गया तो उनसे तर्क-वितर्क कैसा?

रामायण के प्रसंग से एक ऐसी चर्चा सुनते हैं कि राम जब अयोध्या लौटे, तब एक फंक्शन रखा गया। कुछ औपचारिकता की गई। वनवास के समय में हुए युद्ध में जिन योद्धाओं और राजाओं ने सहयोग किया था, उन सबका सम्मान किया गया। उनको कुछ-न-कुछ भेंट दी गई। कार्यक्रम समाप्ति की ओर जा रहा था तभी सीता ने राम से कहा कि आप क्या कर रहे हो, आप हनुमान को

भूल गए। आपने सबको कुछ-न-कुछ भेंट दी, पर हनुमान को कुछ भी नहीं दिया।

राम कहते हैं कि मेरे पास कुछ बचा नहीं जो मैं हनुमान को दे सकूँ।

राम क्या कहते हैं?

राम कहते हैं कि मेरे पास कुछ बचा नहीं, जो मैं हनुमान को दे सकूँ। सीता को यह अच्छा नहीं लगा। सीता ने अपना नवलहार गले से उतारकर हनुमान के गले में डाल दिया। चर्चा यह बताती है कि हनुमान वहाँ से उठकर एक कोने में गए। वहाँ एक पत्थर लिया और नवलहार के एक-एक रत्न को तोड़कर और सूर्य की तरफ देखते हुए उसको फेंकने लगे। एक, दो, तीन, चार रत्न तोड़ते गए और फेंकते गए।

लोगों ने कहा कि इसको मतिभ्रम हो गया। इसको औकात से ज्यादा मिल गया। इसको सीता माता का नवलहार क्या मिल गया, इसकी बुद्धि चकरा गई है। इसे होश ही नहीं है। किसी ने उसे झकझोरते हुए कहा कि क्या कर रहे हो तो हनुमान बोले कि मैं देख रहा हूँ कि इसमें राम हैं या नहीं हैं। यदि इसमें राम नहीं हैं तो यह मेरे काम का नहीं।

उस आदमी ने हनुमान से कहा कि क्या तुम्हारे दिल में राम हैं?

हनुमान ने अपना दिल चीर कर दिखा दिया कि उनके दिल में राम हैं।

बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। राम कहते हैं कि मेरे पास हनुमान को देने के लिए कुछ नहीं बचा। यह बहुत बड़ी बात है। राम कहते हैं कि जब मैं स्वयं उसका हो गया, हनुमान ने मुझे अपने दिल में बिठा लिया, अब वो मेरे से अलग नहीं है तो मैं उसे क्या दूं, मैं ही उसका हो गया। इससे क्या फलित होता है?

जो राम को अपने में रमा नहीं पाए, जो अलग रह गए वे भेंट मिलने से खुश हैं, पर हनुमान को कुछ भेंट नहीं मिलने पर भी सब कुछ मिल गया। उनका मन शांत था। राम द्वारा कुछ भी न दिए जाने पर भी वे अशांत नहीं थे।

अब बारी हमारी है। हम किसी के हुए या नहीं? सोच-समझकर बताना। सोच-समझकर बोलना अन्यथा बहुत बड़ा खतरा है। यहाँ स्वयं को पिघलाना पड़ेगा। जैसे मोमबत्ती पिघलती है वैसे ही अपने अहंकार को पिघलाना पड़ेगा। थोड़ा भी अहंकार रहने पर श्रद्धा औपचारिक हो सकती है। यथार्थ में श्रद्धा का जो रूप ढलना चाहिए, बनना चाहिए वह बनना कठिन है। उसके लिए

कुछ भी बचाने की आवश्यकता नहीं है। यदि कुछ भी बचा कर रख लिया तो वह बचा ही रह जाएगा।

दुर्योधन महाभारत में मारा गया। मारा गया या नहीं?

(श्रोतागण– मारा गया)

किसके द्वारा मारा गया?

भीम के द्वारा मारा गया।

क्यों मारा गया?

भीम ने एक प्रतिज्ञा की थी।

कब की थी?

जब दुर्योधन, द्रौपदी को नीचा दिखाने के लिए कहता है कि आओ मेरे उरु पर बैठो। बहुत कड़वी बात थी। किसी भी पतिव्रता को ऐसा शब्द सुनाना मरण तुल्य बात थी। उस समय भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इसकी उरु को विदीर्ण नहीं कर दूं तो मेरा जीना बेकार है। दुर्योधन को युद्ध के समय कौरवों की हार होती नजर आई तो वह धर्मराज के पास पहुँचता है और निवेदन करता है कि भाईसाहब, कौरवों की विजय कैसे हो सकती है, कैसे विजयी हो सकते हैं कौरव?

धर्मराज ने कहा, यह तो सामान्य बात है। तुम्हारी माता की आँखों में वह तेज है, वह ओज है कि तुम यदि उनके सामने निर्वस्त्र होकर निकल जाओ तो तुम्हारा शरीर वज्रमय हो जायेगा। यदि तुम ऐसा करते हो तो शस्त्र तुम्हारे तन पर असर करने वाले नहीं होंगे।

लेकिन वैसा हो नहीं पाया। श्री कृष्ण के सुझाव के अनुसार दुर्योधन अपने पर्सनल अंगों पर केले के पत्ते लपेटकर गया। परिणामस्वरूप वह अंग कच्चा रह गया। भीम के प्रहार से वही अंग विदीर्ण हो पाया।

समझ आई बात?

(श्रोतागण– आ रही है भगवन्)

क्या समझ में आ रही है? हम केवल कलेवर को पकड़ रहे हैं। कलेवर का निर्वस्त्र होना और ढके होने में क्या फर्क होता है बताओ? वस्त्ररहित होने और वस्त्रसहित होने में क्या फर्क है? हमारा शरीर वस्त्रों से छुप जाता है। शरीर की बात अलग है, किंतु हमारे मन में यदि श्रद्धा की भावना होती है तो परमात्मा

के साथ या परमात्मा के चरणों में वह मन वस्त्ररहित हो जाता है। उसमें कोई लाग-लपेट, दिखावा नहीं रह जाता। कोई छिपाव नहीं रह पाता। एकदम क्लीन, साफ किंतु वैसा हो नहीं पाता। वो क्यों नहीं होता? क्योंकि जब हम जन्म लेते हैं, तब भी हमारे शरीर पर एक झिल्ली होती है। वैसे ही हम अपने आपको ढके हुए रखना चाहते हैं। शरीर को ढकने की बात अलग है, पर मन को ढकना उससे भिन्न है। शरीर को ढकें तो ढकें, मन को भी ढकना शुरू कर दिया, जो उचित नहीं। जितना मन को ढका जाएगा, उतना ही उसमें पाप और अपराध बढ़ता जाएगा। यदि मन खुला होता, उस पर कोई आवरण नहीं होता तो शायद मन इतना पाप नहीं कर पाता। मन से कोई अपराध नहीं होता।

ध्यान रहे, मन पर पर्दा पड़ते ही प्रसन्नचंद्र राजर्षि को सातवीं नरक में जाने जैसी नौबत आ गई थी। हमें भी पता नहीं होता कि हमारे मन पर कितने पर्दे पड़े हुए हैं। कितने आवरण उस पर पड़े हुए हैं। दुर्योधन के शरीर का जो भाग ढका रह गया, वही उसकी मृत्यु का कारण बना। अत: परमात्मा के सामने अपने मन को आवरण मुक्त बना दो।

एक सर्वे में एक बात बताई गई है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि ''लगभग व्यक्ति अपने विचारों को 15 प्रतिशत कैच कर पाते हैं और 85 प्रतिशत कैच नहीं कर पाते। 85 प्रतिशत समझ नहीं पाते।'' अब सोचें, जो अपने विचारों को भी पूरा नहीं समझ पाते, वे दुनिया की पंचायती करने के लिए आगे आ जाते हैं। वे दुनिया को निर्णय देने के लिए आगे आ जाते हैं। वे दुनिया की पंचायती करें, उससे पहले अपने आप को समझें कि मैं कौन हूँ, मेरा रूप कैसा है, मेरे विचार कैसे चलते हैं, मेरी विचारणा क्या हो रही है, किंतु उस पर उनका ध्यान नहीं जाता है। व्यक्ति के 15 प्रतिशत विचार मुश्किल से उसके हाथ में आते हैं। 15 प्रतिशत में भी क्रियान्वयन कितने का हो पाता है, यह समीक्षणीय है।

यह बताओ कि यहाँ बैठने वालों में से कभी किसी में साधु बनने की भावना जगी या नहीं? थोड़ी भी जगी क्या, एक बार भी जगी क्या? हाथ खड़ा करो, मालूम तो पड़े कि किसकी भावना जगी और किसकी नहीं जगी।

(दबी जुबान से कुछ लोगों ने कहा कि भावना तो बनती है)

दबी जुबान से कुछ-कुछ आवाज आ रही है कि भावना तो बनती है।

भावना तो बनती है, इसका मतलब क्या हुआ? मतलब हुआ कि 15 प्रतिशत भी हम क्रियान्वयन नहीं कर पाते। उसमें भी सफलता हासिल नहीं कर पाते। उसमें भी कई विचार निरर्थक हो जाते हैं। सोचते हैं कि ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा, पर हवा का एक झोंका वैचारिक महल ढहा देता है। मन कहता है कि रहने दे भाई, ऐसा करके क्या करना है।

मिनख जमारो भाया ऐड़ो मती खोवजे, सुकृत कर ले जमारा में
केशर ढुल रही गारा में
भैंस पद्मणी ने गहणो (गहना) रे पेरायो, वा कांई जाणे नवसेर हारां ने,
पेर कोनी जाणे वा तो सांभ कोनी जाणे, दौड़ गई बारां चौबारां में
केशर ढुल रही गारा में...

किसी भैंस को आभूषण पहनाया गया, अमूल्य आभूषणों से उसे सजाया गया। उस भैंस को जैसे ही छोड़ा गया वह बाहर चौबाड़ा में भाग गई। किधर गई? कहीं भी चली गई। बाड़े में गई या तालाब में चली गई। उस भैंस को आभूषणों से कोई मतलब नहीं है। वह नहीं जानती कि ये कितने अमूल्य आभूषण हैं। उसको आभूषणों की चिंता नहीं है।

आपको अपनी रक्षा के लिए चिंता है या आभूषणों की चिंता है?

मेरे खयाल से आपको आभूषणों की चिंता ज्यादा सताती है। कोई मेरा आभूषण छीन न ले। कोई मेरा आभूषण झपट नहीं ले। आभूषण पहनते हो तो डर भी लगा रहता है। ज्यादातर तो अलमारी में छिपाकर ही रखते हो। मन में सोचते रहते हो कि किसी ने छीन लिया, झपट लिया तो मेरा आभूषण मेरे हाथ में नहीं रहेगा। आपको आभूषण की चिंता ज्यादा सताती है। आज युग बदल गया है। लोग रकम साथ में लेकर कम चलते हैं। फिर भी कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ बन जाती हैं कि जो पैसे बैंक में जमा नहीं कराये जा सकते, वे हाथों-हाथ इधर से उधर करने पड़ते हैं। यदि आप दस करोड़ की राशि लेकर ट्रेन में यात्रा कर रहे हो तो आपके मन में कोई ऊहापोह तो नहीं होती? मन में कोई द्वंद्व तो नहीं चलता? मन में कुछ-न-कुछ ऊहापोह चलता रहता है। मन सतत भयभीत बना रहता है।

आपकी दस करोड़ की राशि एटीएम में पड़ी है। एटीएम का कार्ड आपके पॉकेट में पड़ा है और आप ट्रेन से यात्रा कर रहे हो तो आपका मन फ्री

रहेगा या किसी ऊहापोह में उलझा रहेगा? इन दोनों अवस्थाओं में क्या फर्क है? पहली अवस्था मन को भीत बनाए रखेगी, जबकि दूसरी अवस्था से मन में कोई विशेष अंतर नहीं आएगा। पहली अवस्था में वह धन आपका मालिक है। आप उसके रक्षक हैं। आप उसके बॉडीगार्ड हैं। आपको अपने उस मालिक की चिंता है। कोई आपको राशि जमा कराने के लिए दे, आप उसे लेकर ट्रेन में जा रहे हो तो जिसने आपको राशि दी वह आपकी चिंता नहीं करेगा। वह अपनी राशि की चिंता करेगा। किसी ने आपको दस किलो सोना या बीस किलो सोना दे दिया। आप लेकर जा रहे हो तो उस व्यक्ति को आपकी चिंता नहीं रहेगी। उसे सोने की चिंता रहेगी। उसको आपकी चिंता रहेगी भी तो इसलिए रहेगी कि कोई आपसे सोना लूट न ले। कोई छीन न ले। उसे सोने की बहुत चिंता हो रही है। वस्तुतः ऐसी चिंता धर्म की होनी चाहिए, श्रद्धा की होनी चाहिए कि मेरी श्रद्धा कहीं खो न जाए, उसे कोई लूट न ले।

यदि एक बार हमने श्रद्धा से सम्बन्ध स्थापित कर लिया तो श्रद्धा कहती है कि मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी। मैं तुमसे दूर होने वाली नहीं हूँ। दुनिया के किसी भी कोने में यदि तुम चले जाओ, आज नहीं तो कल, कल नहीं परसों, कभी भी ढूँढती हुई मैं वापस मोक्ष मार्ग पर ले आऊँगी। जितनी ताकत श्रद्धा में है उतनी ताकत और किसी में नहीं है। उतनी ताकत न आपके परिवार में है और न आपके धन में है। आपका परिवार या धन वापस खींचकर आपको नहीं ला सकते और न ही लाएंगे। अगर वे आपको वापस लाएंगे भी तो वे आपको कुतिया बनाएंगे या सर्प भी बना सकते हैं। आप सर्प बनकर उसके इर्द-गिर्द घूमते रहोगे, भटकते रहोगे। श्रद्धा आपका मार्ग सुगम बना देती है। अन्य किसी में वह ताकत नहीं है।

यह ताकत किसमें हैं?

यह ताकत केवल श्रद्धा में हैं। यदि श्रद्धा से एक बार आपने सम्बन्ध स्थापित कर लिया, उससे नाता जोड़ लिया तो वह नाता छूट नहीं सकता। यदि बीच में हम किसी दूसरी बातों में उलझ जायें और श्रद्धा को छोड़ भी दें, फिर भी श्रद्धा बनी रहेगी। वैसे ही बनी रहेगी जैसे मदनरेखा पतिव्रता ही रही। वह मणिरथ के शिकंजे में नहीं फँसी। वैसे ही चाहे हम कहीं भी चले जायें, श्रद्धा हमें वापस स्वीकार करेगी। साधु जीवन दिलाएगी तो श्रद्धा। साधु बनाने वाली भी यह श्रद्धा

है। यदि हमारे भीतर श्रद्धा नहीं होगी तो हमारा साधु जीवन अभवी की तरह मिथ्यात्व में बना रहेगा। यदि मान-सम्मान पाने के लिए हम साधु भी बन गए तो भी हकीकत में साधुता हमारे भीतर घटित नहीं हो पाएगी। श्रद्धा ही ऐसा तत्व है जो हमारे भीतर साधु जीवन को रमा देगा। कण-कण में साधु जीवन को रमा देगा। एकमात्र श्रद्धा ही सिद्धि तक ले जाएगी।

बंधुओ! सुपार्श्वनाथ भगवान को वंदन करना मतलब अपने जीवन को सिद्धि के द्वार तक पहुँचाना है। सुपार्श्वनाथ भगवान की वंदना करो, क्योंकि वह सुख और संपत्ति का हेतु है। भगवान की वंदना करते हुए हम ऐसा सोचते होंगे कि निहाल हो जायें। सोचते होंगे कि भगवान की वंदना करेंगे तो भगवान हमारे ऊपर कृपा बरसा देंगे। मेरा सारा अलीता-पलीता दूर हो जाएगा। सोचते होंगे कि घर की सारी बातें सही हो जायें। सोचते होंगे कि कोर्ट में चल रहे केस का नतीजा मेरे पक्ष में आ जाये। सही हो जाये। लॉकडाउन के कारण फँसा हुआ मेरा पैसा मिल जाये। या फिर कहोगे भगवन्! आप छोटी-सी मांगलिक सुना दो। मांगलिक से क्या हो जाएगा? मांगलिक से रुका हुआ पैसा आ जाएगा क्या? आपके पास, खूब धन-संपत्ति हो जाएगी क्या?

किसी ने क्या कभी ऐसा कहा कि आप मुझे मांगलिक सुना दो तो मैं साधु बन जाऊँ? किसी ने ऐसा कहा क्या?

आपके फँसे हुए पैसे निकल जाएंगे पर आप फँसावट से नहीं निकल पाएंगे। कई लोग कहते हैं कि भगवन् आपकी कृपा हो जाए तो फँसा हुआ पैसा मिल जाएगा। आप स्वयं कीचड़ में फँसे हुए हैं, उससे निकलने की कोई चिंता नहीं है। चिंता पैसों की है।

बंधुओ! हम क्या याचना करते हैं? हम क्या कामना करते हैं? क्या हमने प्रभु से ऐसी पुकार की, जैसी पुकार मैं करवा रहा हूँ। पुकार करें प्रभु से-

हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊँ अणगार।

मन से बोल रहे हो ना? सोच-समझकर बोलना। यदि खड़ा कर दिया तो खड़े हो जाएंगे या सोचना पड़ेगा? शायद उस समय सोच में पड़ जाएं।

(प्रदीप जी बोथरा- आज तो नहीं पर जीवन रहा तो आपके चरणों में एक दिन जरूर आऊँगा)

प्रदीप जी, कल का भरोसा कौन करता है?

(प्रदीप जी बोथरा फिर कहते हैं- भगवन्! अभी तो मेरे बेटे और बेटी की दीक्षा हुई है, पर एक दिन मैं आपके चरणों में जरूर आऊँगा। ये मेरी प्रतिज्ञा है भगवन्)

कल का भरोसा कौन करता है? आपको फिक्र किस बात की है?

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरी करेगा कब।।

नगाड़े पर चोट हुई तो धर्मराज ने कहा कि नगाड़े पर कौन चोट कर रहा है? देखा तो नगाड़े पर गरीब महिला चोट कर रही थी। उस समय धर्मराज किसी आवश्यक कार्य में लगे हुए थे तो उन्होंने कहा कि बहन मैं आज जरूरी कार्य में लगा हुआ हूँ, कल तुम्हारी सुनवाई की जाएगी। फिर नगाड़ा धमाधम-धमाधम बजने लगा तो धर्मराज ने कहा कि कौन नगाड़े पर चोटें कर रहा है, कौन आवाज कर रहा है तो ज्ञात हुआ कि भीम नगाड़े पर चोटें कर रहा है। भीम को बुलाया गया और पूछा कि नगाड़े पर क्यों चोट कर रहे हो? भीम ने कहा कि आज मुझे जीवन में इतनी खुशी है जितनी खुशी पहले कभी नहीं मिली। आज मुझे अपार खुशी है कि मेरे भाई ने काल पर विजय प्राप्त कर ली।

(प्रदीप जी बोथरा फिर कहते हैं- भगवन्! मेरे बेटे-बेटी ने काल पर विजय प्राप्त कर ली। वे नहीं करते तो मैं जरूर कर लेता)

प्रदीप जी, बेटे-बेटी ने तो विजय हासिल कर ली, पर आपने क्या किया?

खैर, भीम ने कहा कि आज मुझे अपार खुशी है कि मेरे भाई ने काल पर विजय प्राप्त कर ली। धर्मराज ने महिला से कहा कि तुम्हारी सुनवाई कल की जाएगी। अर्थात् यह फाइनल हो गया कि धर्मराज कल तक तो जीएंगे ही, इसलिए कल पर बात टाल रहे हैं। धर्मराज, भीम का आशय समझ गए और तत्काल उस महिला की सुनवाई की।

जब मेरा सरदारशहर में चातुर्मास हो रहा था, उस समय दीक्षा के लिए 37 लोगों ने नाम लिखवाए। 37 लोगों में से दीक्षा एकाध ने ली होगी, बाकी चले गये। बाकी 36 कहाँ चले गये? उनका नाम पन्ने पर लिखा हुआ है। वह पन्ना साधुओं के पास अभी भी पड़ा है। साधु उस पन्ने को ढो रहे हैं। कागज में लिखने से क्या हो जायेगा।

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

लिखा हुआ पड़ा रहेगा। उससे क्या हमारी साख रह जाएगी? हम जबान को तो बदल देते हैं, लिखी हुई बात को भी बदलने की कोशिश कर लेते हैं।

हम नमिराज ऋषि का चारित्र सुन रहे हैं। उनका चारित्र भी बड़ा महत्त्व का है। उनको एक लगन लग गई। एक श्रद्धा जगी तो साधु बन गए। न केवल साधु बने, बल्कि अपने आपको सिद्ध बना लिया।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

मुनि ने मदनरेखा से कहा कि पद्मरथ के वहाँ पर तुम्हारी संतान पहुँच गई। उसका वहाँ लालन-पालन हो रहा है। पुत्रोत्सव मनाया जा रहा है। बहुत आडंबर के साथ मनाया जा रहा है। राजा का दिल बाग-बाग हो रहा है। महारानी प्रफुल्लित हो रही है संतान प्राप्त करके। उसके रोम-रोम प्रफुल्लित हो रहे हैं। अब तक उनकी कोई संतान थी नहीं और यह संतान मिल गई। जैसा कि पहले बताया गया पुत्रोत्सव मनाने में राजा ने दिल के दरवाजे खोल दिये। दिल के दरवाजे खुले तो भंडार के दरवाजे खुल गये। राजा ने उद्घोषणा करवाई कि दस दिनों तक कोई भी अपने घर पर खाना नहीं खाएगा। सबको यहीं खाना है। दस दिनों के लिए कोई भी अधिकारी किसी भी दुकान पर, किसी के घर पर वसूली के लिए नहीं पहुँचेगा। दस दिन के लिए किसी से कोई कर नहीं लिया जाएगा। कोई टैक्स वसूल नहीं किया जाएगा। सभी कर्जदारों के सारे कर्जे आज माफ कर दिये जाएं।

ऐसा तो आज सरकार भी नहीं कर रही है। खैर, उसकी अपनी अलग बात होगी। सरकार यदि कर्ज माफ करती है तो उसके लिए वोट की बात होती है, चुनाव की बात होती है। उसके पीछे कुछ रहस्य होगा, किंतु सम्राट के कथन में कोई रहस्य नहीं था। उसकी दिली भावना है कि राजकुमार की प्राप्ति से जब सब तरफ खुशी का माहौल है, तब ऐसी खुशी के माहौल में कर्जदार बेचारे क्यों दुःखी रहें। राजा ने सोचा कि उनका भी दिल खुश हो जाना चाहिए। राजा ने आदेश दिया कि सबका कर्ज माफ कर दिया जाये। सबका कर्ज माफ हो जाना चाहिए। भरपूर दान देने से, किसी की कर वसूली नहीं करने से राजकुमार के प्रति सबके दिल से दुआ निकल रही थी। सब कह रहे थे, धन्य हो राजकुमार, जिसने

जन्म लिया तो हमारा सारा कर्ज माफ हो गया। हमारा दारिद्रय धुल गया। हमने जीवन में जो नहीं सोचा वह आज प्राप्त कर लिया। सौ दवा और एक दुआ। जो काम दवाओं से नहीं हो पाता, वह एक दुआ से संपन्न हो जाता है।

दस दिनों तक राजकुमार का जन्मोत्सव मनाया गया। 11वें दिन भोजन-पानी की व्यवस्था की गई। 12वें दिन नक्षत्र पूजा का कार्य किया गया। उसके बाद उसके नामकरण का प्रसंग आया तो राजा ने कहा कि जैसे गाड़ी में धुरी (नमि) महत्त्वपूर्ण होती है, वैसे ही हमारे प्रेम की धुरी को, हमारे राज्य धुरी को धारण करने वाला होने से इसका नाम नमि रखा जाये। राजकुमार का नाम नमि रखा गया। वही नमि तुम्हारा पुत्र है। यह बात मुनिराज, मदनरेखा को सुना रहे हैं। यह सारा वृत्तांत सुनकर मदनरेखा को बड़ी खुशी हुई। मणिप्रभ विद्याधर भी बहुत खुश हो गया। उसने सोचा कि इस बहन ने कहाँ से कहाँ तक कितनी कठिनाइयाँ सहन की हैं। उसने क्या-क्या कठिनाई झेली, फिर भी दृढ़ रही। देव रूप में उपस्थित युगबाहु ने कहा कि देवी, मुझ पर तुम्हारा बहुत बड़ा उपकार है। तुम्हारे उपकारों के कारण ही आज मैं देव बना हूँ इसलिए बोलो मैं तुम्हारा क्या कल्याण करूँ? तुम्हारा क्या इष्ट है? तुम्हारा जो भी इष्ट है, मैं उसको संपादित करना चाहता हूँ।

मदनरेखा ने कहा कि मेरा एक इष्ट है- मोक्ष की चाह, शाश्वत सुख की चाह।

मदनरेखा ने कहा कि मुझे मोक्ष की चाह है, शाश्वत सुख की चाह है। और कोई चाह नहीं है जिंदगी में। देव ने कहा कि भद्रे मोक्ष की चाह, सुख की चाह फलीभूत करना मेरे वश की बात नहीं है। मैं तुम्हारे लिए और कुछ कर सकता हूँ। तुम्हारे मन की अन्य कोई चाह पूरा कर सकता हूँ पर मोक्ष में पहुँचाना मेरे वश की बात नहीं है। मैं स्वयं वहाँ तक नहीं जा सकता तो दूसरों की चाह को कैसे पूरा कर सकता हूँ। मेरे भीतर चाहे कितनी भी दैविक शक्ति हो, किंतु मोक्ष जाने की शक्ति मेरे पास नहीं है। उसने कहा कि वह कृपा मुझे प्राप्त नहीं है।

मोक्ष किसी की कृपा पर अवलंबित नहीं है। वह तो अपने पुरुषार्थ से संपादित हो सकता है। उसके लिए पुरुषार्थ करना जरूरी होगा। देव ने कहा कि यदि तुम्हारी कुछ और चाह हो तो उसे मैं पूर्ण करने का प्रयत्न कर सकता हूँ। मदनरेखा ने कहा कि यदि मोक्ष की चाह पूरी नहीं हो सकती है तो मेरी एक चाह

है कि मेरी आँखें मेरे पुत्र का दर्शन करें। मेरे पुत्र को देख लें। पुत्र को देखने के लिए मेरी आँखें लालायित हैं।

देव ने मदनरेखा से कहा कि बैठो देव विमान में, मैं तुम्हें तुम्हारे पुत्र का दर्शन करा देता हूँ। मदनरेखा ने मणिप्रभ की तरफ देखा और कहा कि बोलो भाई अब तुम्हारी क्या आज्ञा है। मणिप्रभ ने कहा कि मैं आपको अपने घर ले जाना चाहता था। मैंने आपको बहन बनाया तो मेरा फर्ज बनता है कि बहन को घर ले जाऊँ, किंतु तुम पुत्र दर्शन करना चाहती हो तो उसमें मैं विघ्न पैदा नहीं करना चाहता।

मदनरेखा देव अनुग्रह से मिथिला आई। उसे ज्ञात हुआ कि महासती दृढ़व्रता यहाँ विराजित हैं। ऐसा जानकर उसने कहा कि पुत्र के दर्शन बाद में कर लूँगी, पहले महासती के दर्शन होने चाहिए।

पहले किसके दर्शन होने चाहिए?

गौर करें कि कितने समय के बाद पुत्र को देखने का अवसर मिला था। उसको देखने की बात सामने आ रही है। मन में कितनी अभिलाषा, कितनी आकांक्षा होगी कि पुत्र को देख लूं किंतु साध्वी जी के विराजने की जानकारी मिली तो उसके मन में यह विचार आया कि पहले उनका दर्शन करना चाहिए।

आपके मन में क्या विचार बनेंगे? जल्दी कांई है संत कठ भाग रिया है। गुरुदेव का चौमासा यहीं है। कभी भी गुरुदेव के दर्शन करने आ जाएंगे। पहले हमारा काम होना चाहिए। बावजी के दर्शन बाद में कर लेंगे।

यह हमारी विचारणा हो सकती है, किंतु जिसके जीवन में श्रद्धा रम जाती है उसके लिए सबसे पहले धर्म है। संसार के सारे कार्य उसके बाद हैं। धर्म-कार्य से बढ़कर कोई कार्य नहीं है। इसलिए सबसे पहले धर्म कार्य का संपादन होगा। उसके बाद दूसरे सारे कार्य।

मदनरेखा, साध्वी जी के पास पहुँची। उनको वंदन-नमस्कार किया। साध्वी जी ने उसको उपदेश दिया। उपदेश का ऐसा चमत्कार हुआ कि मदनरेखा ने तत्काल विचार कर लिया कि मैं साध्वी दीक्षा लेना चाहती हूँ। उसने कहा कि अब मेरा विचार दीक्षा लेने का है। मणिप्रभ ने कहा कि तुम तो पुत्र का दर्शन करना चाहती थी, पहले तुम्हारी वह अभिलाषा पूरी हो जाये। मदनरेखा ने कहा कि अब मुझे पुत्र दर्शन की चाह नहीं रही।

आत्मा जाग गई म्हारी रे चेतना जाग गई म्हारी...

मणिप्रभ ने मदनरेखा से कहा कि तुम्हें क्या हो गया, तो वह कहती है कि अब मुझे पुत्र दर्शन नहीं आत्मदर्शन करना है। अब मेरी आत्मा जाग चुकी है। पुत्र का दर्शन मोह बढ़ाने वाला हो सकता है। मैं उस मोह में फँसना नहीं चाहती इसलिए आत्मकल्याण का जो अवसर मिल रहा है, उसे मैं खोना नहीं चाहती। अत: अब पुत्र दर्शन की अभिलाषा नहीं है। अब वह आकांक्षा नहीं है। उसने कहा कि साधु जीवन से बढ़कर पुत्र दर्शन नहीं है। अब मुझे मोक्ष का रास्ता मिल गया। महासती की कृपा हो गई। अब मुझे मोह बढ़ाने का काम नहीं करना। इसलिए अब मैं साध्वी जीवन स्वीकार करूँगी। उसने साध्वी जीवन स्वीकार किया।

यह भी देखने, सोचने और समझने की बात है कि उसकी तमन्ना थी पुत्र दर्शन की किंतु साधु जीवन के द्वार खुल गये। अब कौन किसका बेटा, कौन किसकी माँ, सब मोह छूट गया।

वह दीक्षित होती है। उसका नाम सुव्रत आर्या रखा जाता है। आज उसकी चर्चा चल रही है। आगे क्या प्रसंग बनता है, कैसे वह नमिराज के संग्राम भूमि में पहुँचती है, यह बात समय के साथ जानेंगे, किंतु इतनी बात अवश्य है कि हमारी श्रद्धा बलवती हो, भौतिक दृष्टि उसको आवृत करने वाली नहीं बने। हमारे लिए मुख्य धर्म होना चाहिए। हमारे रूह-रूह में श्रद्धा रमनी चाहिए।

वैसी श्रद्धा होगी तो उसका कहना ही क्या है। हम श्रद्धा के अधिकारी बनें और अपने आप में धन्य बनें। एक दिन उसी रास्ते पर हमें जाना होगा। श्रद्धा ने हमको स्वीकार कर लिया और हम एकमेक हो गये तो फिर तुम्हारे और मेरे में भेद नहीं रहेगा। हम भी ऐसी अवस्था प्राप्त करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर विराम देता हूँ।

22 सितंबर, 2021

9

नमन से मान का शमन

श्री सुपार्श्व जिन वंदीए, सुख संपत्ति नो हेतु, ललना...

एक वंदन, एक नमस्कार पूरे जीवन को रूपान्तरित करने वाला बन सकता है, बशर्ते वह शुद्ध हो, सम्यक् हो। ग्रंथों में बताया गया है ''एक्को वि नमोक्कारो'' अर्थात् भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक किसी भी तीर्थंकर को किया गया एक भी नमस्कार सारे पापों को नष्ट करने वाला बन जाता है। सिद्धि सोपान की ओर बढ़ाने वाला बन सकता है। बार-बार वंदना करना आवश्यक नहीं है। एक बार किया गया नमस्कार भी जीवन को रूपान्तरित कर सकता है।

दूध में शक्कर डालने पर थोड़ी देर में पूरे दूध में शक्कर घुल जाती है। शक्कर घुलने के बाद दूध की हर बूँद मीठी हो जाती है। वह पूरा दूध मिठास वाला बन जाता है। जैसे शक्कर डालने पर दूध की हर बूँद मधुर होती है, मीठी होती है, मिठास से परिपूर्ण होती है, वैसे ही वंदना से जीवन सुख से सराबोर हो जा जाता है। वह सुख, सुख नहीं जो थोड़ी देर के लिए हो या किन्हीं बाह्य पदार्थों पर आधारित हो। जो सुख किसी बाहरी पदार्थ के मिलने से हो, वह सच्चा सुख नहीं है। बाह्य पदार्थों पर आधारित सुख अपना नहीं है। बाह्य पदार्थों से मिलने वाला सुख सदा विद्यमान नहीं रहेगा। सुख आत्मा की अपनी निधि है। वह स्वयं से प्रकट होना चाहिए। जब तक मनुष्य जीवन है, तब तक मनुष्य संबंधी सुख-सुविधा मिल सकती है। जैसे ही यह शरीर छूटेगा वैसे ही सुख-सुविधाएँ भी यहीं छूट जाएंगी। मनुष्य मरकर अपने कर्मानुसार देव भी हो सकता है और नरक में भी जा सकता है।

अभी आप नरक का वर्णन सुन रहे थे कि किस प्रकार वहाँ पर प्रताड़ना होती है। वहाँ पर किस प्रकार पीड़ा भोगनी पड़ती है। यहाँ पर जितना रस ले

लेकर सुख भोगेंगे उतना ही वहाँ दु:ख भोगने पड़ेंगे। इसलिए बाह्य पदार्थों से या अन्य किन्हीं कारणों से जो भी सुख अनुभव करते हैं, वह सच्चा सुख नहीं है।

सुख-दु:ख आत्मा से मिली हुई अवस्थाएं हैं। जैसा सुख है, वैसा ही दु:ख है। द्रव्य सुख भी संवेदना है और दु:ख भी संवेदना है। पर जो सुख आत्मा से प्रकट होता है, वह बाह्य पदार्थों से नहीं हो सकता। सुख-संपत्ति की बात चल रही है। वह द्रव्य-भाव से दो प्रकार का है। धन, वैभव, सोना-चाँदी, रत्न, आभूषण आदि द्रव्य संपत्ति हैं। जमीन-जायदाद, पशुधन भी हमारी संपत्ति हैं, किंतु ये द्रव्य संपत्ति हैं। आध्यात्मिक संपत्ति छह प्रकार की है- सम, दम, तितिक्षा, उपरति, समाधान और श्रद्धा। इनके बारे में पिछले कई दिनों से मैं विचार व्यक्त करता आ रहा हूँ। यदि जीवन में यह संपत्ति आ जाती है, तो जीवन लवण समुद्र के समान नहीं रहेगा। क्षीर समुद्र के समान हो जाएगा।

क्या होता है लवण समुद्र और क्षीर समुद्र? क्या अंतर है इन दोनों में?

लवण समुद्र और क्षीर सागर में अंतर है। लवण समुद्र का पानी खारा होता है और क्षीर समुद्र का पानी क्षीर के समान मीठा होता है। लवण समुद्र में ज्वार-भाटा आता है। उसमें लहरें उठती हैं, जबकि क्षीर समुद्र शांत-प्रशांत रहता है। उसमें तरंगें नहीं उछलतीं। उसका पानी शांत बना रहता है।

जैसे लवण समुद्र में तरंगें उठती हैं, वैसे ही हमारे मन में तरंगें उठती रहती हैं, किंतु जब आत्मिक संपत्ति प्राप्त हो जाएगी, तो हमारा मन समाहित रहेगा, क्योंकि उसे श्रद्धा का संबल मिल गया होता है। अत: मन में तरंगें नहीं उठेंगी, इसे समझना कठिन है।

क्यों कठिन है?

क्योंकि हमारे मन में तरंगें उठती रहती हैं। थोड़ी देर के लिए शांत हो जाना भी बहुत कठिन है। यह निश्चित है कि तरंगें शाश्वत नहीं हैं। वे क्षणिक हैं, अल्पजीवी हैं। वे लंबे समय तक अवस्थित रहने वाली नहीं हैं। थोड़ी देर के लिए विचार करें कि मेरा मन तरंगों से अलग होता है तो उस समय क्या स्थिति रहती है?

यह उसे ज्ञात हो सकता है, जिसने कभी मन को केंद्रित किया हो, किसी भी पुद्गल पर या किसी भी पदार्थ पर अपनी दृष्टि को केंद्रित किया हो, एकाग्र किया हो। उस समय की शांत अवस्था मन को समाहित करने वाली होती है।

हमारे मन में तरंगें उठती रहती हैं क्योंकि हमें चाह है, हमें आकांक्षा है, इच्छाएँ हैं। हमारी इच्छा रहती है कि वह चीज मिले, वह चीज मिले। यह भी ले लूं, वह भी ले लूं। हमारा मन चीजों को प्राप्त करने के लिए तरंगित होता रहता है। कोई नई वस्तु आकर्षित करती है तो उसमें तरंगें उठने लगती हैं। इनसे हटकर जब मन समाहित हो जाता है तब उसमें निरपेक्ष भाव बनते हैं कि मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे कोई अपेक्षा नहीं है। किन्हीं बाह्य पदार्थों की चाह नहीं है। वस्तु कितनी भी सुंदर क्यों न हो, मुझे उसकी चाह नहीं है।

जो वस्तुओं की मर्यादा कर लेता है, संख्या निश्चित कर लेता है, उस मर्यादा के बाद, उस निश्चित संख्या के बाद चाहे कितनी भी वस्तुएँ मिलें, वह लेना नहीं चाहेगा। उदाहरण के तौर पर जिसने प्रतिज्ञा कर ली कि मुझे दो जोड़ी से ज्यादा वस्त्र नहीं रखना, वह किसी के द्वारा कितने भी सुंदर वस्त्र दिए जाने पर स्वीकार नहीं करेगा। साड़ी हो या सूट कोई भी वस्त्र स्वीकार नहीं करेगा। तीसरा जोड़ा वस्त्र कितना भी सुंदर उसके सामने आए तो वह कहेगा कि मेरा कोटा पूरा हो गया।

ऐसा बोलना या नहीं बोलना?

ऐसा बोलना। कभी मन में ऐसा विचार न आए कि यदि दो जोड़ी वस्त्र की मर्यादा नहीं होती तो मैं इसको ले लेता। एक बार विचार आ सकता है, लेकिन दूसरी बार विचार नहीं आएगा।

देख पराई चुपड़ी मत ललचाए जीव।

दूसरे की थाली में अच्छी रोटी देखकर अपने मन को ललचाना बेकार है। किसी चीज को देखकर मन में आसक्ति हो गई, लालच पैदा हो गया और उसे प्राप्त करने के लिए इच्छा प्रकट हो गई तो वह इच्छा दुःख पैदा करेगी। इसलिए दूसरों पर दृष्टि मत डालो कि दूसरा क्या कर रहा है। दूसरों को देखने की कोशिश मत करो कि वह गलत कर रहा है या अच्छा कर रहा है। वह कैसे जी रहा है। उसकी श्रेणी में मत जाओ। यह मत देखो कि वह फव्वारे से स्नान कर रहा है, वह मस्ती कर रहा है। देखना यह कि उसका परिणाम क्या आएगा। जो करेगा गटका वह खाएगा झटका, अर्थात् उसको एक दिन झटका जरूर लगेगा। आज वह गटका कर रहा है तो कल उसके लिए झटका तैयार है।

डॉक्टर नॉथनसन के सामने एक केस आया अबॉर्शन का। डॉक्टर को

लगा कि गर्भवती के जीवन को खतरा है या संतान के जीवन को खतरा है। कह दिया जाता है कि खतरा है, किंतु खतरा नहीं होता तो भी डॉक्टर अबॉर्शन कर देते हैं। उस डॉक्टर ने भी अच्छी राशि लेकर अबॉर्शन किया। उस अबॉर्शन की सीडी बनी। ऐसा बताया गया है कि अबॉर्शन के बाद वह कुर्सी पर बैठा और सीडी चालू की। सीडी देखते-देखते उसके मन में ऐसी घृणा हुई कि वह तुरंत हॉस्पिटल छोड़कर चला गया। उसने सोचा कि ऐसा काम जिंदगी में फिर कभी नहीं करना।

कभी-कभी सम्यक् दृष्टि वाले भी लोभ, लालच में ऐसा कार्य कर लेते हैं। उस डॉक्टर के मन में घृणा हुई और वह अपने हॉस्पिटल को छोड़कर चला गया कि मुझे अब ऐसा काम नहीं करना।

उसने किसको देखा?

उसने उस सीडी को देखा जो अबॉर्शन के समय बनायी गई थी। हमारे सामने अपने जीवनचर्या की पूरी रिकॉर्डिंग है। एक वीडियो कैसेट बन गया। अब आप विचार करेंगे कि मुझे क्या दिखाया जा रहा है, मैं क्या देख रहा हूँ।

ध्यान रहे, कुदरत के घर देर है, अंधेर नहीं। हम भले ही भूल जाएँ पर कुदरत भूल नहीं पाती। हमारे कार्मण शरीर रूपी कम्प्यूटर में सारी बातें, सारी घटनाएँ, सारे विचार फीड हैं।

नमिराज ऋषि को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। वे अपने पिछले जन्मों को, उन जन्मों की घटनाओं को बहुत आसानी से देख रहे हैं। वे देख रहे हैं कि मैं क्या था, क्या-क्या स्थिति बनी।

यदि हम चाहें कि हमारा जीवन दुःखमय न हो तो उसका सुंदर उपाय है तीर्थंकर भगवंतों के चरणों में नम जाना। उनके चरण अमृत तुल्य हैं। स्तुति में कहा गया है-

''शांत सुधारस जलनिधि।''

सुधारस कहते हैं अमृत को। हमारा मन अमृत के समान बनेगा। अमृत के लिए कहा जाता है कि वह मरे हुए को जिंदा कर देता है। जो मरे हुए को जिंदा कर दे, उसको कहते हैं अमृत। इसका दूसरा अर्थ भी घटित होता है कि जो कभी मरे ही नहीं उसको कहते हैं अमृत। हालांकि अमर भी मरता है। अमर देवताओं को कहते हैं। अमर भी एक समय के बाद अपना स्थान छोड़ता है। आत्मा कभी

नहीं मरी, न ही मरेगी। वह सदैव है, शाश्वत है। आत्मा भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगी। मरता शरीर है। शांति, समाधि रूपी सुधारस हमारी आत्मा को अमरता का, शाश्वतता का बोध कराने वाला होगा। अभी हम केवल सुनी हुई बातों के आधार पर, पढ़ी हुई बातों के आधार पर मानते हैं कि आत्मा मरने वाली नहीं है। आत्मा शाश्वत है।

किसी ने इमली खाई या नहीं?

(कुछ लोग कहते हैं- खाई है बावजी)

मेरे खयाल से शायद सब लोगों ने इमली खाई होगी। उसका स्वाद कैसा है, उसका स्वाद खट्टा है या नहीं? आपको ध्यान में है उसका स्वाद खट्टा है। आपने आम खाया, उसका स्वाद कैसा है, मिश्री खाई, उसका स्वाद कैसा है? आप सबको मालूम है कि मिश्री का स्वाद मीठा है, किंतु जिसने नहीं खाई उसको क्या मालूम! मिश्री हमने कभी खाई नहीं और कोई हमारे सामने मिश्री का वर्णन करे तो उससे हमें क्या अनुभव होगा? जिसने नहीं खाई उसे क्या मालूम कि उसका स्वाद कैसा है?

एक राजा शिकार को निकला था। शिकार करते-करते वह बहुत आगे निकल गया। राजा शिकार करने के लिए जिस पशु के पीछे भाग रहा था, वह पशु किधर निकल गया राजा को मालूम ही नहीं पड़ा। पशु का कोई निश्चित रास्ता नहीं होता। वह किधर से किधर चला जाए कुछ पता नहीं। राजा रास्ता भटक गया। वह सोचने लगा कि अब मैं नगर में कैसे जाऊँगा! राजा विचार में पड़ गया कि अब क्या करूँ। उसे प्यास और भूख लगी। पहले भूख-प्यास पर ध्यान नहीं था। जब तक आदमी अपने लक्ष्य पर टिका रहता है, तब तक उसको भूख नहीं सताती। जैसे ही ध्यान डायवर्ट होता है, अलग होता है तो लगता है कि अब भूख लग गई।

आप बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हों, तो भूख नहीं लगती। चाहे दुकान का कार्य हो या ऑफिस का या कोई अन्य कार्य। जब तक आप कार्य में लगे हुए हैं, तब तक भूख नहीं लगेगी। तब तक प्यास नहीं लगेगी। आपको मालूम ही नहीं पड़ेगा कि भूख या प्यास लगी है। आप दुकान में हैं और आपका ध्यान ग्राहकों को संतुष्ट करने पर है, पैसे कमाने पर है तो भूख-प्यास नहीं लगेगी। जैसे ही ग्राहक चले जाएंगे ध्यान भूख-प्यास की तरफ चला जाएगा।

ऐसा क्यों हुआ?

इतनी देर तक उस ओर ध्यान नहीं था। जैसे ही ध्यान उधर गया तो मालूम पड़ा कि प्यास लग गई। भूख लग गई। वैसे ही सम्राट जब तक शिकार के पीछे भाग रहा था, तब तक उसको भूख-प्यास महसूस नहीं हुई, किंतु जैसे ही उससे ध्यान हटा तो उसको लगा कि मैं प्यासा हूँ, भूखा हूँ।

राजा ने इधर-उधर देखा, परंतु दूर-दूर तक कोई तालाब या झरना नजर नहीं आया। दूर एक झोपड़ी नजर आई। राजा ने सोचा कि वहाँ पर झोपड़ी है, इसका मतलब है कि वहाँ कोई-न-कोई रहने वाला है। कोई रहने वाला नहीं होता तो झोपड़ी क्यों होती। राजा झोपड़ी की तरफ बढ़ा। झोपड़ी के पास पहुँचा तो उसने देखा कि दो-तीन लोग हैं। राजा को देखने वाले समझ गए कि यह आदमी बहुत प्यासा है। उन्होंने राजा के हाथ-पैर धुलाए। उसको छाया में बिठाकर विश्राम करने दिया और शीतल जल, ठंडा पानी पिलाया। पानी पीने से राजा को तृप्ति हुई। उसके मन में थोड़ी संतुष्टि हुई। साथ ही उसने कहा कि मुझे बहुत भूख लगी है। उनके घर में मोटी-मोटी रोटियाँ थीं। किसानों के घर में मोटी-मोटी रोटियाँ बनाई जाती हैं। गाँव में जाडी रोटी होती है और शहर में पतली होती है। पतली रोटी खाओगे तो पेट में मालूम नहीं होगा कि क्या खाया! खाया या नहीं खाया! राजा ने इससे पहले कभी उतनी जाडी रोटी नहीं खाई थी। राजा को भूख लगी थी। राजा के हाथ में रोटी थी और ऊपर से नमक और हरी मिर्ची रख दी गई थी। राजा से कहा गया कि रोटी का टुकड़ा लेकर नमक ऊपर से मुँह में डाल लो। राजा को ऐसे खाने का पहले कभी अभ्यास नहीं था। उनके कहे अनुसार उसने प्रयोग किया। उन लोगों ने पूछ लिया कि कैसी लगी रोटी तो राजा ने कहा कि बहुत अच्छी।

उसको रोटी कैसी लगी? भूख मीठी या लापसी?

लापसी क्या मीठी होती है। मीठी तो भूख है। भूख होने पर सूखी रोटी भी अच्छी लगती है, नहीं तो माथा ठनकता है कि ये नहीं भाता, वह नहीं भाता। भूख है तो सूखी रोटी भी खा ली जाएगी नहीं तो बादाम का हलवा भी अच्छा नहीं लगेगा।

राजा सोना चाहता था पर वहाँ पर कोई पलंग नहीं था, गद्दे नहीं थे, जिस पर राजा आराम से नींद ले सके। झोपड़ी में कहाँ पलंग और गद्दे? वहाँ पर

एक फटी हुई राली बिछा दी गई। राजा थका हुआ था। अत: सोते ही राजा को खर्राटेदार नींद आ गई। कुछ घंटों बाद वह उठा तो कहा कि मैं अमुक जगह जाना चाहता हूँ, यदि तुम जानते हो तो मुझे वहाँ जाने का रास्ता बता दो। उन लोगों ने कहा कि बता देंगे।

उन लोगों ने थोड़ी दूर साथ चलकर रास्ता बता दिया। थोड़ी दूर बाद एक गडार (गाड़ी) आ गई। उन्होंने कहा, ये गडार सीधा जाएगा और आप अब चले जाना। राजा ने उन लोगों का शुक्रिया अदा किया और कहा कि यदि तुम कभी शहर आओ तो मेरे यहाँ जरूर आना। झोपड़ी वालों ने कहा कि हमें कहाँ पता कि शहर में आपका घर कहाँ है, कौन-सा आपका घर है। राजा ने कहा कि आप शहर में आओ तो किसी से पूछ लेना कि राजा का घर किधर है। कोई भी आपको मेरा घर बता देगा।

कुछ दिन निकले होंगे कि वह किसान शहर गया। काम पूरा होने के बाद उसको याद आया कि राजा ने कहा था कि कभी शहर आओ तो मेरे घर आना। राजा ने मुझे मिलने के लिए कहा था। अभी मैं इधर आया हूँ तो राजा से मिल लूं। गाँव वालों में मिलने का भाव ज्यादा ही होता है। वह भी राजा से मिलने गया। उस आदमी को मालूम नहीं था कि राजा का घर कहाँ है। उसने किसी से पूछा तो उस आदमी ने बताया कि यहाँ से आगे जाने पर एक धोला-सा (सफेद) घर आएगा, वही राजा का घर है। वह किसान उधर बढ़ा। जैसे ही सफेद बड़ा घर दिखा, उसके कदम तेज हो गए। वह उस घर के अंदर जाने लगा तो चौकीदार ने उसको रोका। चौकीदार के रोकने पर उसने कहा कि मुझे राजा ने कहा था कि शहर आओ तो मेरे घर आना। अणी वास्ता मलवा आयो हूँ। तब चौकीदार ने कहा कि तुम बिना परमिशन अंदर नहीं जा सकते हो। यह आवाज राजा को सुनाई पड़ गई तो राजा स्वयं नीचे आया और उस किसान को गले लगा लिया। उसको अपने सीने से लगाकर हाथ पकड़कर अंदर ले गया। पहरेदार देखते ही रह गए कि यह कौन आदमी है जिसको राजा सीने से लगा रहे हैं। इतना सम्मान दे रहे हैं। वे सोचने लगे कि हम उसको समझ ही नहीं पाए, पर राजा इसको इतना महत्त्व दे रहे हैं।

हीरे री कीमत भाई कुंजड़ो तो जाणे कांई...

हीरे की कीमत कुंजड़ा नहीं जानता। यदि साग-सब्जी बेचने वाले से

हीरा दिखाकर उसकी कीमत पूछी जाये तो उसको क्या पता कि इसकी कीमत क्या है। उसने तो सिर्फ साग-सब्जी ही बेची है। उसको हीरे की कीमत से क्या लेना-देना। वैसे ही चौकीदार बेचारा क्या जान पाएगा, उसने तो चौकीदारी की है। उसको आदमी की पहचान नहीं थी। राजा को भी शायद आदमी की पहचान नहीं होती, किंतु वह उसका उपकारी था। उसके साथ प्रसंग जुड़ा था। उसको वे कैसे भुला सकते थे। यह उत्तम पुरुषों की रीत है। उत्तम पुरुष उपकारी के उपकार को कभी नहीं भूलते। मध्यम पुरुष भुला देते हैं और कहते हैं कि तू कुण है। जानते हुए भी भुलाने की कोशिश करता है। मुलाकात हुई है फिर भी कहता है कि मैं आपको जानता नहीं हूँ।

राजा उत्तम पुरुष था। उसने उपकारी के प्रति उपकार्य भाव रखा। वह व्यक्ति चाहे ग्वाला था, चाहे किसान था या ग्रामीण था, उस आदमी का राजा ने बहुत मान-सम्मान किया।

ऐसा करने से राजा का क्या चला गया बताओ?

राजा का कुछ नहीं गया।

राजा का मान बढ़ा या घटा?

यह बात आपके समझ में कम आएगी। उसका मान बढ़ता है या घटता है? उपकारी के प्रति उपकार्य भाव से हमेशा मान बढ़ता है। कभी घटता नहीं है। राजा ने उसकी खूब खातिरदारी की। राजा को उस किसान ने लूखी रोटी खिलाई थी पर मन से खिलाई थी। एक भूखे प्राणी को खिलाने का परिणाम है कि उसकी खातिरदारी हो रही है। राजा ने उसकी मन से खातिरदारी की। भाव से खातिरदारी की। उससे कहा कि तुम यहीं रुको। राजा ने राजमहल में उसके रुकने की व्यवस्था की। साथ ही कहा, जितने दिन ठहरने की इच्छा हो, उतने दिन यहाँ ठहरो।

किसान को रोज नई-नई चीजें खाने को मिल रही हैं। कभी पराठा, कभी पतली रोटी, कभी कुछ। नित नई-नई मिठाइयाँ खा रहा है। उसके लिए यह अजूबा हो गया। वह मन में विचार कर रहा है कि ये सब चीजें तो मैंने अपने घर कभी देखी तक नहीं। वह चार-पाँच दिन तक राजमहल में रुका। उसके बाद उसका मन उचट गया। उसको घर की याद आने लगी और वह घर चला गया।

घर गया तो उसने घरवालों से कहा कि राजा के घर गया था। वह घर

इतना ऊँचा था जितना मैंने कभी नहीं देखा। घरवालों ने पूछा कि क्या बबूल जितना ऊँचा? उसने कहा कि उससे भी ऊँचा। घरवालों ने कहा कि नारियल के पेड़ जितना ऊँचा, तो उसने कहा, उससे भी ऊँचा। फिर घरवालों ने कहा कि खजूर के पेड़ जितना ऊँचा? उसने कहा कि उससे भी ऊँचा। घरवालों ने तंग आकर कहा कि क्यों गप्पे मार रहे हो।

मुंबई की ऊँची-ऊँची बिल्डिंगें जिसने कभी न देखी हो उसे कैसे समझ पड़े कि उतनी ऊँची भी इमारतें होती हैं। ऐसा ही किसान के घरवालों के लिए राजा के महल की बात थी। अंततोगत्वा उसके परिवारवालों ने कहा कि फालतू की बातें करता है। घरवाले कहने लगे कि इसे मतिभ्रम हो गया है। शायद इसका माथा खराब हो गया है। उसने कहा कि वहाँ पर मेरा बहुत सम्मान किया गया। उसने बताया कि मैंने वहाँ पर ऐसी-ऐसी मिठाइयाँ खाईं तो घरवालों ने पूछा ऐसी कैसी तो उसने कहा कि बहुत मीठी। परिवार वालों ने कहा कि यह तो फोकट की बात कर रहा है। लेकिन वह सही बातें कर रहा था। उसकी बात सही थी किंतु जब किसी ने रसगुल्ला खाया ही नहीं तो वह उसका स्वाद क्या जाने! जिसने कभी वैसी मिठाइयाँ खाई नहीं उसको क्या पता है कि वह जो कह रहा है सही कह रहा है। उन्हें नहीं पता कि रसगुल्ला मीठा होता है। घरवाले उससे कह रहे हैं कि बोर जैसा मीठा था क्या, तो उसने कहा कि उससे बहुत ज्यादा मीठा था। परिवारवालों ने कहा कि जैसे आम का फल मीठा होता है वैसे था क्या रसगुल्ले का स्वाद, तो उसने कहा कि नहीं, उससे भी बढ़कर मीठा होता है रसगुल्ला। वे जंगल में रहते थे तो वहाँ के फलों के अनुसार ही उसकी मिठास बता रहे थे। उससे ज्यादा मिठास का उन्हें कभी अनुभव ही नहीं हुआ था।

कहते-कहते घरवालों ने कहा कि गुड़ के समान मीठा होता है क्या? तो उसने कहा कि नहीं रे नहीं गुड़ से भी मीठा होता है रसगुल्ला। घरवाले कहते हैं कि उससे मीठा कुछ होता ही नहीं है। उस पर कोई विश्वास नहीं कर रहा है। कोई विश्वास कर भी नहीं कर पाएगा।

वैसी ही बात मैंने बोली कि तरंगरहित मन सुखी होता है। वहाँ शांति होती है। जब तक हमारे भीतर वह स्थिति घटित नहीं होगी, तब तक इन बातों को समझना हमारे लिए थोड़ा कठिन है। उसके लिए हमारे पास उदाहरण नहीं है। इससे स्पष्ट है कि जब तक हमें आत्मसुख का अनुभव नहीं होता, तब तक बाह्य

सुख को ही महत्त्व देते रहते हैं। हम आत्मसुख की दिशा में प्रयत्नशील बनें। वह प्रयास होगा सुपार्श्वनाथ भगवान को, तीर्थंकर भगवान को वंदन करने से।

मैंने एक बार पहले भी बात कही थी कि एक अंधे व्यक्ति को सुगंध आई तो उसने अपने पोते से पूछा कि बेटा आज घर में क्या बन रहा है, किस चीज की सुगंध आ रही है तो बेटे ने कहा कि दादाजी, आज खीर बनाई जा रही है। उस व्यक्ति ने कहा कि बेटा खीर कैसी होती है तो पोते ने कहा कि एकदम धोली, सफेद होती है। अंधे व्यक्ति ने कहा कि धोला कैसा होता है तो उस पोते ने उस आदमी के हाथ में एक बगुला दे दिया कि धोला ऐसा होता है। उस अंधे व्यक्ति ने उस पर हाथ लगाकर अनुमान लगाया कि खीर भी ऐसी ही होगी तो उसने कहा कि ऐसी खीर मुझे नहीं खानी है। ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी खीर मेरे गले में फँस जाएगी। ऐसी खीर मैं नहीं खाऊँगा। चूंकि वह जन्मजात अंधा था, इसलिए उसको पता नहीं था कि धोला कैसा होता है।

अब कुछ नमिराज के चारित्र की चर्चा कर लेना उचित है।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

सुव्रत आर्या दृढ़व्रता साध्वी के पास दीक्षित हुई। वह मोह, ममत्व से निर्वेद को प्राप्त हो गई। उसने अपने शरीर से मोह, ममत्व को क्षीण करने का प्रयत्न किया। सुव्रत आर्या ने मोह, ममत्व को अपने दिल से निकाल दिया। इदं न मम। उसने अपने भीतर ये भाव भर लिये कि मैं किसी की नहीं हूँ और मेरा कोई नहीं है। उसके भीतर से पुत्र का दर्शन करने की आकांक्षा हट गई। उसे अब कोई पुत्र नजर नहीं आ रहा है। अब उसे केवल मोक्ष का रास्ता नजर आ रहा है। केवल मोक्ष का मार्ग दिख रहा है। मुक्ति का महल दिख रहा है। उसने उत्कृष्ट भाव से दीक्षा स्वीकार की। साधु जीवन स्वीकार किया। ज्ञान, ध्यान में अपने मन को लगाया। सुव्रत आर्या व्रतों की सम्यक् आराधना करने लगी।

आपको मालूम पड़ा होगा कि अफगानिस्तान में क्या हो रहा है। कुछ दिन पहले चर्चा चल रही थी कि तालिबानियों ने अफगानिस्तान को हड़प लिया। वहाँ पर कब्जा कर लिया। युद्ध की चर्चा चल रही थी। युद्ध की चर्चा सुव्रत आर्या के कानों में पड़ी। उस समय वह स्थानक में थी। उसका गाँव कौन-सा था? मिथिला नगरी। कल ही बताया और इतनी जल्दी भूल गए! उसने वहाँ रहते हुए युद्ध की बात सुनी। सुनकर उसने दृढ़व्रता आर्या से निवेदन किया कि ऐसी-ऐसी

स्थिति है और युद्ध होने वाला है। इस युद्ध से कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है, केवल खून-खराबा होगा, बाकी कुछ हासिल होने वाला नहीं है।

एक हाथी के पीछे कितने मनुष्यों की जान चली जाएगी। कितनी माताओं की गोद सूनी हो जाएगी। कितनी ही औरतों का सिंदूर मिट जाएगा। इस युद्ध से अनेक जीवों की घात होगी। निर्दोष जीवों की हत्या होगी। सुव्रत आर्या ने कहा कि आपकी अनुज्ञा हो तो मैं वहाँ जाना चाहती हूँ ताकि राजा को प्रतिबोध देकर युद्ध पर विराम लगवा दूं। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।

सामान्यतया युद्ध भूमि में मुनि/साध्वी का जाना उचित नहीं है। क्यों उचित नहीं है? बताओ। युद्ध भूमि से मुनि का कोई सम्बन्ध नहीं है, वहाँ उसका उपदेश सुनने वाला कौन है, पर सुव्रत आर्या ने ऐसा भी नहीं सोचा कि मेरा उपदेश कौन सुनेगा। वह आज्ञा प्राप्त करके युद्ध भूमि में जाने को उद्यत हुई।

मैं पंजाब में भारत और पाकिस्तान की सीमा बाघा बॉर्डर के पास विहार कर रहा था। कुछ लोगों ने प्लानिंग की और कहा कि बाघा बॉर्डर यहाँ से मात्र 14 किलोमीटर की दूरी पर है। मैंने कहा कि बाघा बॉर्डर से मुझे क्या लेना-देना है। उन लोगों ने कहा कि सेना के लोग व हम उपदेश सुनना चाहते हैं। मैंने कहा कि आज यहीं व्याख्यान दे रहा हूँ आपको सुनना हो तो सुन सकते हैं। मतलब कुछ भाइयों ने मिलकर विचार किया था कि बाघा बॉर्डर चलेंगे तो नाम हो जाएगा। मैंने कहा कि मुझे वहाँ जाना ही नहीं है। आपको व्याख्यान सुनना है तो व्याख्यान यहीं सुन सकते हो। मुझे वहाँ नहीं जाना है और मैं वहाँ नहीं गया।

कर्नाटक में मेरा विहार हो रहा था तो कुछ लोगों ने कहा कि बावजी! आप ऊटी कब आएंगे। मैंने कहा, वहाँ आने का मेरा मन नहीं है। मुझे वहाँ आकर क्या देखना है? वहाँ का मार्ग बहुत विकट है। वहाँ गोचरी-पानी भी बहुत कठिन है। बीच रास्ते में कई जगह मात्र एक-एक घर ही है। उस स्थिति में उन घरों से कितना भोजन-पानी ला सकते हैं? वहाँ का रास्ता बहुत दुर्गम है इसलिए मेरा ऊटी जाने का मन नहीं बना।

जहाँ युद्ध हो रहा हो, वहाँ सामान्यतया साधु को जाना नहीं चाहिए। किंतु उसको मालूम था कि दोनों भाइयों में युद्ध होने वाला है, जो कि अनजाने में हो रहा है। वे नहीं जानते कि वे दोनों भाई हैं। अतः सुव्रत आर्या गुरुवर्या से अनुज्ञा लेकर, उनको वंदना-नमस्कार करके वहाँ पहुँची। मैंने जो इतनी सारी

कथा सुनाई, वह सारी कथा सुव्रत आर्या नमिराज को सुना रही है।

कथा सुनते ही नमिराज को मालूम हो गया कि जैसे मैं मदनरेखा का पुत्र हूँ, वैसे ही चंद्रयश भी मदनरेखा का पुत्र है। उसने सोचा कि हम दोनों भाई हैं। हम दोनों के माता-पिता भी एक हैं। अब वह साध्वी को मातृत्व भाव से देख रहा है। वह कहता है कि साध्वी जी, माता जी आपने जो कहा है वह पूर्ण सत्य है, वह बात सही है। मेरे भीतर भी भाई के प्रति भावना जग रही है। यदि मेरा उसके साथ सम्बन्ध नहीं होता तो मेरे मन में भावना कैसे जगती! आपके कहने के बाद भ्रातृत्व के प्रेम की हिलोर मेरे हृदय में भी हो रही है। आपने जो कहा वह सही है कि चंद्रयश मेरा भाई है। आपके कहने के बाद पूरी तरह से, अच्छी तरह से मेरी समझ में आ गया। पहले आपने कहा तो मैंने सोचा कि आप शायद युद्ध रोकना चाहती हैं, किंतु अब मुझे पूरी तरह समझ में आ गया कि चंद्रयश मेरा भाई है। आपने पूर्ण सत्य कहा है और मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ, किंतु दुनिया को क्या मालूम! दुनिया क्या जानेगी! यह बात मैं जानूँ या तुम जानो।

वह कहता है कि यदि मैं झुक जाता हूँ, पीछे लौट जाता हूँ तो दुनिया बोलेगी कि हार गया। यह बात मैं सुन नहीं सकता। मान का भांगा, मान की अवस्था बड़ी संगीन होती है। मान को हटाना हर किसी के वश की बात नहीं है। और तो और साधु वर्ग के लिए भी मान को छोड़ पाना कठिन है। जिन्होंने कंचनकामिनी का त्याग किया, घर-परिवार का त्याग किया, उनके लिए भी मान छोड़ पाना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में सामान्यजन का कहना ही क्या? सम्राट नमि भी उसके अपवाद नहीं हैं। प्राय: इनसान चाहते हैं कि मेरा मान रहना चाहिए। मान को पोषण व्यक्ति को सुखद लगता है, जबकि मान, आत्मा को अवनत करता है। इसलिए सिद्ध परमात्मा को यदि एक बार भी सच्चे दिल से वंदना की गई तो वह मान को नमाने वाली होगी, मान का नाश करने वाली होगी। जीवन में सुख और शांति भरने वाली होगी। हृदय को सुधारस बनाने वाली होगी। उससे उसमें तरंगें नहीं उठेंगी। शांत सुधारस क्षीर समुद्र की भाँति अपने मन को बना सकते हैं, बशर्ते वंदना और नमस्कार सही तरीके से हो। हमारा मान गलकर नष्ट हो जाए तो नमस्कार सच्चा नमस्कार हो पाता है।

नमे ते गमे।

जो नमता है वह पाता है। गम का अर्थ होता है ज्ञान की प्राप्ति करना।

गणधर गौतम स्वामी जब नम गए तो ज्ञान से सराबोर हो गए। जब तक नहीं नमे, तब तक कहा कि देख लूँगा कि कैसा साधु है, कैसा ज्ञान है, किंतु जैसे ही नमे हो गया कल्याण। वैसे ही हम नम जाएंगे, नमने की क्रिया सच्ची हो जाएगी तो जीवन धन्य बन जाएगा। दोनों भाइयों में आगे किस प्रकार से क्या घटना घटती है, आगे क्या प्रसंग बनता है, कैसे दोनों भाइयों में मेल-मिलाप होता है, यह हम समय के साथ जानेंगे। फिलहाल इतना ही कहते हुए विराम।

23 सितम्बर, 2021

10

संवाद दो सखियों का

देखण दे रे सखी मने देखण दे, चंद्रप्रभ मुखचंद, सखी...

स्तुति करते हुए कविता बदली है, किंतु अंदर के भाव में कुछ विशेष बदलाव नहीं है। उसमें वही प्यास है। वही उत्कंठा है। वही जिज्ञासा है और वही ललक है। इस स्तुति में 'देखण दे रे सखी मने देखण दे' शब्द का बार-बार प्रयोग हुआ है। इसमें अज्ञान चेतना को संबोधित करते हुए ज्ञान चेतना कह रही है कि हे सखी! हे बहन! मुझे देखने दे।

क्या देखने दे?

चंद्रप्रभ मुख सखी मने देखण दे। चंद्रप्रभ भगवान के आभामंडल को देखने दे। मुझे देखने दे कि कैसा है उनका मुखमंडल। 'उपशम रस नो कंद सखी मने देखण दे।' बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। उपशम भाव, उपशम रस जब प्रकट हो जाता है तो वह जन-जन के लिए आकर्षक बन जाता है। उपशम रस का दूसरा नाम शांत रस भी है। वह जहाँ होता है वहाँ आकर्षण स्वत: होने लगता है। ऋषभदेव भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया कि-

यैः शांत-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं...

यह उसी बात का प्रतीक है कि जिसके चेहरे पर शांत सुधारस बनी रहती है, जिसके चेहरे पर शांत रस झलकता रहता है, उसका चेहरा आकर्षक होता है। कषायों से झुलसे हुए प्राणी के लिए चंद्रप्रभ मुखचन्द दर्शन बड़ा लाभकारी होता है।

ग्रीष्म ऋतु में धूप में चलते किसी व्यक्ति को, धूप और गरमी से परेशान किसी व्यक्ति को कोई वृक्ष दिख जाये तो उसका मन शांत हो जाता है कि मुझे पेड़ की छाया में थोड़ा विश्राम मिलेगा। उस वृक्ष की शीतल छाया थोड़ी

ले लूंगा। उसकी थोड़ी ठंडक ले लूंगा। ऐसा विचार ही उसे शांति देने वाला बनता है। उस समय वह वृक्ष उसको बड़ा सुंदर लगता है। बड़ा मनोरम लगता है। वह उस पेड़ की शीतल छाया लेने की तैयारी करता है। सोचता है कि पेड़ की छाया में थोड़ा आराम कर लूं। उसकी इच्छा विश्राम करने की है, किंतु उसके पास समय नहीं है। समय के अभाव में वह उसकी शीतल छाया नहीं ले पाता तो भी उसको वह पेड़ बड़ा सुंदर लगता है। बड़ा मनोरम लगता है।

उसको पेड़ मनोरम इसलिए लगता है, क्योंकि उसको शीतलता की चाह है। उसकी चाह है उसके नीचे कुछ समय के लिए आराम करने की। उसकी ठंडी हवा का आनंद लेने की। जैसे धूप में जा रहे प्राणी को छाया की आवश्यकता रहती है, वैसे ही संसार के कषायों में झुलसते हुए प्राणी को शीतलता की आवश्यकता रहती है। उसको शीतलता की जरूरत रहती है। ठंडक की आवश्यकता रहती है। उसकी कामना रहती है कि मुझे भी शीतलता मिले। मुझे भी ठंडक मिले। वह कषायों में जीता जरूर है, किंतु कषाय उसको शांति देने वाले नहीं हैं। उसकी आंतरिक इच्छा शांति प्राप्त करने की होती है, पर वह लाचार जीव कषायों में झुलसता जाता है। वह मन से क्रोध नहीं करना चाहता, किंतु उसका अपने आप पर नियंत्रण नहीं है। अपने आप पर कंट्रोल नहीं है इसलिए क्रोध आ जाता है। इसलिए आदमी क्रोध में बहक जाता है।

जैसे आदमी पानी में फिसलता है और गिर जाता है, वैसे ही क्रोध से फिसल जाता है। अपना नियंत्रण खो देता है। उस समय उसके मन में जो आता है वह बोल देता है। यह क्रोध का परिणाम है। यह क्रोध की परिभाषा है। क्रोध की भाषा शराबी की भाषा से कम नहीं होती। जैसे शराबी को भान नहीं होता कि मैं क्या बोल रहा हूँ, मेरे मुँह से क्या शब्द निकल रहे हैं, वैसे ही क्रोधी व्यक्ति को कोई भान नहीं होता। वह कुछ-का-कुछ बोल जाता है। बोलने के बाद जब गुस्सा ठंडा हो जाता है तब वह पश्चात्ताप करता है। बाद में वह सोचता है कि मैं ऐसे गलत शब्द क्यों बोल गया। किंतु नियंत्रण उसके हाथ में नहीं था, कंट्रोल उसके हाथ में नहीं था। उसकी गाड़ी का ब्रेक फेल हो चुका था, इसलिए अपनी गाड़ी को नियंत्रित नहीं कर सका। इसके दुष्परिणाम उसको भोगने पड़ रहे हैं। इससे विपरीत शांत सुधारस या शांत रस जहाँ बना रहता है, वहाँ प्रीतिकारक अवस्था बनती है। वह सबके प्रीति का भाजन बनता है।

एक छोटा बच्चा क्यों जन-जन के लिए आकर्षक बन जाता है? क्यों दूसरों का हृदय उसको गोद में उठाने को होता है? क्यों छोटे बच्चे के प्रति प्रीत जग जाती है? उसके प्रति क्यों सबका प्रेम जग जाता है? बच्चा किसका है इससे कोई मतलब नहीं है। बच्चे की किलकारी और उसके हाव-भाव लोगों को आकर्षित कर ही लेते हैं, क्योंकि उसके चेहरे पर छल-कपट, तनाव नहीं होता। वहाँ मात्र सरलता, सहजता होती है।

तीर्थंकर देव उपशम रस में निमग्न होते हैं, जिससे उनके चेहरे पर शांत रस झलकता रहता है। वही शांत रस जन-जन को आकर्षित करता है। उनके लिए कहा जाता है-

गत कलिमल दुखद्वंद्व, सखी मने देखण दे...

कलिमल-पाप वहाँ से हट गया, दुःख और द्वंद्व दूर हो गए। वहाँ पर किसी प्रकार का दुःख नहीं है, द्वंद्व नहीं है। दुःख, द्वंद्व तब होते हैं जब कुछ अपेक्षाएँ होती है और उनकी प्राप्ति नहीं होती है। दुःख, द्वंद्व तब होते हैं जब मनोकामनाएँ पूर्ण नहीं हो पाती हैं। जब अपेक्षाएँ पूरी नहीं हो पाती हैं तो मन में द्वंद्व पैदा होता है। मन में दुःख पैदा होता है।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन में एक रूपक आया है। उसमें बताया गया है कि एक महारानी एक सूअर के बच्चे पर मुग्ध हो गई। उस बच्चे को वह महल में मँगवा लेती है। वह उसका लालन-पालन करती है। बच्चा किसका है- सूअर का। इससे स्पष्ट है कि बच्चा किसी का हो, वह प्यारा लगता है। क्योंकि उसमें सरलता होती है। यदि हमारी कोई चाह ही न हो, कोई अभिलाषा ही न हो, कोई आकांक्षा ही न हो तो वहाँ द्वंद्व पैदा होगा ही क्यों? द्वंद्व पैदा होने का कारण हमारे भीतर की अभिलाषा है। जब एक-दूसरे की अभिलाषा आपस में टकराती है तो वह द्वंद्व पैदा करने वाली बन जाती है। द्वंद्व और तनाव का असर चेहरे पर आ जाता है। उस समय वह चेहरा आदमी को आकर्षित करने वाला नहीं बनता है। दूसरों को आकर्षित करने वाला नहीं बनता, अपितु लोग उससे भय खाने लगते हैं।

सुपार्श्वनाथ भगवान की स्तुति करते हुए वंदना करने की बात कही गई। वंदना हम भी करते हैं। संत मौजूद होते हैं तो भी करते हैं और संत मौजूद नहीं होते, तब भी करते हैं। बिना उनकी मौजूदगी में उनका नाम स्मरण करते हुए

उनको वंदन-नमस्कार किया जाता है। हर जगह हर समय साधु-साध्वी नहीं हुआ करते हैं। संभव नहीं है कि हर गाँव में, हर वक्त साधु-साध्वी मिल पायें। ऐसा होना असंभव है। जिस जगह साधु-साध्वी नहीं होते हैं, उस जगह भी हम सामायिक, वंदन, नमस्कार करते हैं। उस समय भी वंदना-नमस्कार करने का प्रसंग बनता है। साधु-साध्वी के सम्मुख भी वंदन-नमस्कार करते हैं और उनकी अनुपस्थिति में भी वंदन-नमस्कार होता है।

दोनों स्थितियों में थोड़ा फर्क होता है या नहीं होता है?

(सभा में उपस्थित लोगों की तरफ से आवाज आती है- होता है)

जो लोग दूर से दर्शन करने के लिए आते हैं वे दर्शन के लिए उत्कंठित होते हैं। उनकी उत्कंठा कुछ और ही होती है। वैसे ही जब सामने वंदनीय होता है तब वंदना के लिए उत्कंठा पैदा होती है। व्यक्ति के भीतर आह्लाद पैदा हो जाता है और प्रसन्नता व्यक्त होती है। वह अपने आपको धन्य-धन्य समझने लगता है। वही बात ज्ञान चेतना, कुमति से कह रही है, अज्ञान चेतना से कह रही है कि हे सखी! मुझे चंद्रप्रभ भगवान के दर्शन करने दे।

वर्षों बीत गए और एक व्यक्ति दर्शन नहीं कर पाया। चाहे उसकी शारीरिक लाचारी हो या आर्थिक लाचारी, किंतु वह दर्शन नहीं कर पाया। उसकी तमन्ना थी कि मुझे दर्शन हो, दर्शन हो और दर्शन हो...

एक दिन योग ऐसा बना कि जहाँ साधु-संत विराज रहे थे, वहाँ वह पहुँच गया। उस समय उसको दर्शनों की कितनी उमंग होगी, यह बात हम समझ सकते हैं।

आनंदघन जी अपनी अज्ञान चेतना को संबोधित करते हुए कह रहे हैं कि हे सखी! जब मैं सूक्ष्म निगोद में था, उस समय दर्शन कर नहीं पाया, क्योंकि सूक्ष्म निगोद में इतना आवरण होता है कि वहाँ पर यह भान नहीं होता कि भगवान क्या होते हैं और भक्त क्या होता है। इसका वहाँ पर कोई बोध नहीं होता। तब उसके भीतर यह तरंग भी पैदा नहीं हुई कि मैं भगवान के दर्शन करूँ। इसी प्रकार बादर निगोद में भी स्थिति रही। यद्यपि बादर निगोद में चेतना का थोड़ा विकास हुआ, किंतु वह विकास भी आत्मदर्शन और परमात्मदर्शन के लिए पर्याप्त नहीं था। प्रत्येक वनस्पति व पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय और वायुकाय जन्मों में भी कहीं से ऐसी भावना पैदा नहीं हुई कि परमात्मा के दर्शन

कर लूं। यदि एक बार पृथ्वीकाय में जीव चला जाए तो लंबे समय तक पृथ्वीकाय में ही रह जाता है।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन से हम जान सकते हैं कि उत्कृष्ट असंख्यात काल तक वह जीव पृथ्वीकाय में रह जाता है। इकाई-दहाई नहीं, हजारों, लाखों और करोड़ों वर्ष निकल जाते हैं। जहाँ गणनीय संख्या पूरी हो जाती है उसके आगे असंख्यात काल का माप आता है। उतना काल पृथ्वीकाय आदि में निकल जाता है। जिसमें कुछ भी अता-पता नहीं पड़ता कि ज्ञान चेतना, अज्ञान चेतना और आत्म दर्शन क्या है। हम उन दशाओं से गुजर के आये हैं। भविष्य में और भी गुजरना है क्या, यह हमको पता नहीं है।

मैंने एक प्रश्न के उत्तर में एक बार बताया था कि सूई के अग्र भाग पर जितना आए उतने बादर निगोद कण को उठाया जाए, उसमें असंख्यात शरीर होते हैं। जो कण सूई के भाग पर आया, वह कण कितना बड़ा होगा? दाँत के नीचे भी नहीं दबे, इतना-सा वह कण हो सकता है। वह कण एक राई से भी बहुत छोटा होता है। उस अंश में असंख्यात शरीर होते हैं। एक-एक शरीर में अनंतानंत जीव हैं।

आप विचार करो कि क्या स्थिति बनेगी?

एक उदाहरण से समझें- पूरे विश्व के नक्शे में ब्यावर जहाँ नजर आएगा वैसे ही पूरे धरातल के जीवों में उस जीव की स्थिति होगी। उस समय सबका जीवन-मरण एक साथ होता है, ऐसी-ऐसी दशा में हम रहकर आए। एक-दो भव नहीं, अनंतानंत काल तक वहाँ पर हमने समय बिताया है। जैसे पानी बहता है वैसे ही हमारी जिंदगी बहती चली गई। बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चतुरिन्द्रिय काल में भी हमने लट, कीड़ी, मक्खी, मच्छर, बिच्छू बनकर कितनों को डसा होगा। भगवान महावीर के विषय में बताया जाता है कि उनके शरीर पर कितने ही भँवरों ने घर बना लिए थे।

हम मनुष्य भी बन गए तो अनेक बार नरक में भी गए। वहाँ भी दर्शनों का मौका नहीं मिल पाया। पूर्व जन्म के आधार पर किसी पुण्यवान पशु के मन में विशुद्ध भाव बनते हैं अन्यथा तिर्यंच अवस्था में भी भाव नहीं बनते। हमने कई बार मनुष्य का जन्म भी पाया, किंतु आर्य क्षेत्र में जन्म नहीं लेकर अनार्य क्षेत्र में जन्म लिया। वहाँ पर भी दर्शन की भावना नहीं जगी, क्योंकि वहाँ अज्ञान चेतना

का साम्राज्य था।

इसलिए ध्यान दें कि वे सारी सुविधाएँ हमने इस जन्म में प्राप्त की हैं जो चंद्रप्रभ भगवान के मुखचंद के दर्शन हेतु जरूरी है। हमें मनुष्य जन्म प्राप्त हो गया। पाँचों इंद्रियाँ प्राप्त हुईं। उत्तम कुल प्राप्त हुआ। हमें ऐसा कुल प्राप्त हुआ जहाँ पर जैन धर्म मिला। आत्मा परमात्मा की चर्चा सुनने-समझने को मिल रही है। ये सारे संयोग साधारण संयोग नहीं हैं। ये साधारण जीवन नहीं है। जब महान् पुण्य का योग होता है तब ये सारी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। महान् पुण्य का योग नहीं होता तो ये सुविधाएँ प्राप्त नहीं होतीं।

हम उस सुविधा का उपयोग क्या कर रहे हैं? हमारे भीतर परमात्म दर्शन की तड़प पैदा हो रही है या नहीं? अनंतानंत काल तक हमने प्रभु के दर्शन नहीं किए। अब यह मनुष्य जीवन मिला है तो क्या इसे व्यर्थ में जाने दिया जाए! क्या इस जन्म को भी अपने हाथ से निकलने दिया जाए! यदि ऐसी स्थितियाँ रहीं तो हम इसका कितना सदुपयोग कर पाएंगे, यह हमारे पर निर्भर है। यह हमारे पर निर्भर है कि हम सुखी बनने के लिए कितने तत्पर हैं? यह सोचने का विषय जरूर है कि इतने वर्षों के बाद यह अवसर मिला है तो हमें क्या करना चाहिए।

कहते हैं कि अंगूर पकते हैं तो कौवे के गले में गाँठ पैदा हो जाती है इसलिए वह बेचारा अंगूर खा नहीं पाता। वैसे ही हमारे गले में भी गाँठ बनी हुई है क्या, जिससे हम भव्य लाभ से वंचित हो रहे हैं। भव्य लाभ नहीं ले पा रहे हैं।

उठो नर-नारियों जागो, जगाने संत आए हैं...

यह बात ध्यान रखना कि संत कुछ देंगे नहीं। वे केवल निमित्त हैं। वे निमित्त के रूप में आपके सहयोगी हो सकते हैं, बाकी चलना तो आपको पड़ेगा। आपके पैर में जब तकलीफ होती है तो डॉक्टर को बताने पर वह आपका उपचार कर सकता है, किंतु चलना तो आपको ही होगा। आँखों में मोतियाबिंद हो गया तो डॉक्टर ऑपरेशन कर देगा, किंतु आँख खोलकर देखने का काम आपको ही करना पड़ेगा। आप यदि कहो कि मैंने आँख खोली तो कोई बीमारी लग जाएगी, इसलिए आँख नहीं खोलता तो आपकी मरजी है कि खोलो या नहीं खोलो। डॉक्टर इलाज कर सकता है बाकी प्रयास तो आपको ही करने पड़ेंगे। संत मार्गदर्शन दे सकते हैं। सही-गलत की दिशा बता सकते हैं, किंतु निर्णय आपको करना पड़ेगा कि मुझे क्या करना है।

निर्णय करने के लिए यह शुभ अवसर मिला है। सोचना चाहिए कि अनंतानंत काल से हम संसार में पड़े हुए क्या कर रहे हैं। भगवान महावीर, ऋषभदेव आदि जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, वे कभी-न-कभी हमारे साथ रहे थे। हमने उनके साथ खेल खेला है। रंग रचाए हैं। हमने उनके साथ बहुत क्रीड़ा की है, किंतु आज हममें और उनमें बहुत दूरी हो गई। वे कहाँ गए और हम कहाँ रह गए!

साथ-साथ पढ़ने वाले दो विद्यार्थी थे। एक विद्यार्थी ने दसवीं पढ़कर स्कूल छोड़ दिया और दूसरा आगे पढ़ता है। वह ग्रेजुएशन करता है। बीए-एमए करता है। दसवीं तक पढ़ने वाला कहाँ होगा और ग्रेजुएशन करने वाला कहाँ होगा?

श्री राजप्रश्नीय सूत्र में लौह वणिक का उदाहरण आता है। कुछ व्यापारी सोचने लगे कि यहाँ पर अब व्यापार की गुंजाइश रही नहीं। यहाँ पर हमारा जीवनयापन भी सही ढंग से हो नहीं पा रहा है। बड़ी कठिनाई हो रही है। विदेश जाएंगे तो शायद वहाँ भाग्य जगेगा। वे लोग विदेश चले। चलते-चलते बीच में लोहे की खदान मिली। उन्होंने विचार किया कि यह लोहे की धातु है इसको उठा लेते हैं। जितना सामर्थ्य है उतना उठा लें, इससे हमें लाभ होगा। हम जहाँ जाएंगे वहाँ इसको बेच देंगे। उससे मिले पैसे से हमारा छोटा-मोटा कोई भी व्यापार चालू हो जाएगा। वे लोहा उठाकर चलने लगे तो आगे पीतल की खान मिली। उन लोगों ने सोचा कि दोनों का वजन समान ही होगा, पर लोहे से महँगा पीतल है, इसलिए पीतल ले लेते हैं। पाँच किलो लोहा और पाँच किलो पीतल दोनों वजन में बराबर ही हैं।

उन्होंने सोचा कि लोहे से महँगा पीतल होता है इसलिए पीतल ले लेते हैं। पीतल लेकर वे आगे बढ़े। आगे जा रहे थे तो बीच में ताँबे की खान आ गई। उन्होंने सोचा कि पीतल से महँगा ताँबा है अत: ताँबा ले लेते हैं। लौह वणिक ने कहा कि तुम लोग तो बदलते जा रहे हो। तुम भले ही बदल लो, लेकिन मैं नहीं बदलूँगा। मैं सिद्धांतवादी हूँ। मैंने लोहा ले लिया तो लोहा ही रखूँगा। दूसरे व्यापारियों ने समझाया, पर उसने कहा अब कोई और गुंजाइश नहीं है। वे लोग और आगे बढ़े तो सोने-चाँदी की खान आई। सोने-चाँदी की खान देखकर उन्होंने सोचा कि ये ताँबे से भी महँगी धातुएँ हैं, ताँबे को लेकर क्यों चलें। उन्होंने

सोना-चाँदी ले लिया और आगे बढ़ गए। आगे रत्नों की खान आने पर वे लोग सोना-चाँदी छोड़कर रत्न ले लेते हैं। रत्न की कीमत सोने से भी ज्यादा होती है और वजन भी कम होता है। उन्होंने रत्न उठाया, किंतु लोहा उठाने वाले ने कहा कि तुम लोग चाहे कुछ भी उठाओ मैं लोहे को नहीं छोड़ने वाला। मैं एकदम पक्का आदमी हूँ।

जिन्होंने रत्न उठाए थे वे लोग एक बड़े शहर में पहुँचे। उन्होंने कुछ रत्नों को बेचा और हाथों-हाथ हवेली खरीद ली। सारी सुख-सुविधा जुटा ली और हवेली में रहने लगे। लौह वणिक ने लोहा उठाया था। उसको उसने बेचा और झोपड़पट्टी में स्थान लिया। लौह वणिक ने एक ठेलागाड़ी खरीदी और उसमें साग-सब्जी, मूँगफली आदि रखकर बेचने लगा। संयोग से लौह वणिक एक दिन उस मोहल्ले में पहुँच गया, जहाँ उसके साथी रह रहे थे। लौह वणिक को साग-सब्जी बेचते हुए देख वे लोग नीचे आए और लौह वणिक से कहा कि भाई हमें पहचाना क्या? उसने कहा- अरे सेठजी! आपको कौन नहीं पहचानता। उन्होंने कहा कि हम वही हैं जो साथ मिलकर व्यापार के लिए निकले थे। लौह वणिक ने कहा कि आप! तो उन्होंने कहा कि हाँ, हम। हमने उस समय तुमको कहा था कि लोहे को छोड़ दो और रत्नों को ले लो, पर तुम माने नहीं। रत्न की कीमत लोहे से ज्यादा है इसलिए हम यहाँ पहुँच गए।

वैसे ही हमने बहुत जन्मों में कुछ नहीं पाया पर पुण्य संचय होते-होते इतना संचय हो गया कि आज हमें धर्म का द्वार मिल गया। अब इस महल में प्रवेश करना या नहीं, यह स्वयं पर निर्भर है। हम महल के द्वार पर खड़े हैं। हम सुख चाहें तो इस द्वार के भीतर प्रवेश करना पड़ेगा। बाहर से ही लौटकर चले जाएंगे तो हमारी मरजी। मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ है।

यह मनुष्य जीवन बहुत ही दुर्लभता से प्राप्त हुआ है। मैंने बताया ही है कि एकेंद्रिय, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेंद्रिय कहाँ-कहाँ हमारी आत्मा भटकी। कितने काल हमारी आत्मा भटकती रही, कितनी गतियों में भ्रमण करती रही। अब हमें मनुष्य जन्म मिला है। अब हमें निर्णय करने की आवश्यकता है। हमें निर्णय करना चाहिए कि क्या करना है। हमें निर्णय करना है कि कषायों में झुलसते रहना है या उपशम रस की प्राप्ति करना है।

यदि कषायों में झुलसते रहेंगे तो शांत रस, उपशम रस की प्राप्ति होना

दुर्लभ है। बहुत कठिन है। लोग कहते हैं कि अमृत भी मिल जाय, तो अमर हो जाएंगे। थोड़ी देर के लिए समझो। अमृत मिल भी गया, किंतु उसका पान करना नहीं आया, रख-रखाव करना नहीं आया तो अमृत किस काम का होगा!

गुरुदेव फरमाया करते थे कि दो दोस्त एक सिद्ध महात्मा के पास जा पहुँचे। सिद्ध महात्मा ने कहा कि मैं जान रहा हूँ कि तुम दुःख में हो। तुम्हारे दुःख को मैं जान रहा हूँ। मैं जान रहा हूँ कि तुम पीड़ित हो। तुम्हें आर्थिक तंगी है, तुम्हें सुख की आकांक्षा है। उन्होंने सिद्ध पुरुष के पैर पकड़ लिए। सिद्ध महात्मा ने उन दोनों से कहा कि मेरे पास कुंभ कलश है। एक तो बना बनाया है और दूसरा कुंभ कलश बनाने की विधि मेरे पास है। जो तुम कहो मैं दे दूं। उनमें से एक दोस्त दुर्योधन की तरह बड़ा उतावला था। उसने कहा कि मुझे कुंभ कलश दे दो। दूसरे ने कहा कि मुझे विधि दे दीजिए। दूसरे ने विधि ली और विधि को सीख गया। कुंभ कलश उसे कहा जाता है जिससे जो कुछ भी माँगे वो प्राप्त हो जाए।

जिसने कुंभ कलश लिया उसने अपने पारिवारिकजनों, इष्ट मित्रों व पड़ोसियों से कहा कि आज मेरे घर में खाना होगा। उन लोगों ने उससे पूछा कि तुम ऐसा क्या खिलाओगे जो हम तेरे घर आएं। उसने कहा कि तुम आओ तो सही। तुम जो कहोगे मैं वही खिलाऊँगा। सब आए तो उसने सब लोगों की पसंद के अनुसार अलग-अलग तरह की मिठाइयाँ, अलग-अलग तरह का खाना, वस्त्र मँगाए। सब लोगों ने खूब छककर खाना खाया। खाना खाने के बाद उसने लोगों से पूछा कि अब आपको और क्या चाहिए, तो लोगों ने कहा कि शराब हो जाए तो अच्छा। शराब की माँग करते ही उनको शराब मिल गई। लोग शराब पीने लगे। ज्यादा पीने के कारण सब लोगों को शराब चढ़ गई। उन व्यक्तियों को कुंभ कलश नजर आया तो उन्होंने विचार किया कि सब इसी की बदौलत है। इसी के कारण आज इतना मिला है। वे कुंभ कलश को सिर पर रखकर नाचने लगे। ज्यादा नशे में होने के कारण कब सिर से कुंभ कलश गिरा, मालूम नहीं पड़ा, किंतु गिरते ही उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। कुंभ कलश के टुकड़े होते ही सारी सुख-सुविधाएँ हवा हो गईं। अब वह रोने लगा। अब रोने से क्या होगा। अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

वैसे ही कुंभ कलश के समान हमें मनुष्य देह मिली है। सुंदर मन मिला है। इसका सही उपयोग कर लेंगे तो धन्य-धन्य हो जाएंगे, धन्य-धन्य बनेंगे।

दूसरे दोस्त ने कुंभ कलश बनाने की विधि जानी। विधि जानने से एक कुंभ कलश टूटा तो उसने दूसरा बना लिया। दूसरा टूटा तो तीसरा बना लिया। उससे चाहे कितने ही कुंभ कलश टूट जाएं क्या होगा? वह नया कुंभ कलश बना लेगा क्योंकि उसने कुंभ कलश बनाने की विधि सीखी थी। उसको कोई कठिनाई नहीं आएगी।

हमें क्या करना है? हमने बहुत सुन लिया। सुनना ही सब कुछ है या कुछ करना भी चाहिए? हम चौके पर बैठकर खाने को देखते रह जाने वाले हैं या भोजन करने वाले हैं?

एक व्यक्ति थाली के सामने बैठ जाता है। थाली में तरह-तरह की मिठाइयाँ पड़ी हैं। वह कहता है कि ये मिठाई अच्छी है। घेवर अच्छे हैं। रबड़ी के घेवर अच्छे हैं। वह देखता ही रहता है, किंतु मिठाई को खाता नहीं।

हम क्या कर रहे हैं? वैसा ही तो नहीं कर रहे हैं?

माइक पर अनाउंस हो रहा है कि रबड़ी के घेवर बहुत अच्छे हैं। स्वादिष्ट रबड़ी के घेवर हैं, अच्छे घेवर हैं, किंतु हम उसे खाएं नहीं तो क्या होगा? खाएंगे नहीं तो वे कितने ही अच्छे होंगे क्या स्वाद मिलने वाला है? थाली में पड़े घेवर हमारे किस काम के? वैसे ही हम केवल सुनते ही रहेंगे। सुनने के लिए कान मिले हैं, किंतु हम उसे कान के नीचे नहीं उतार रहे हैं। गले में कंठमाला हो गया। गले में रोग हो गया। कोई भी वस्तु नीचे नहीं उतरेगी तो कोरे के कोरे रह जाएंगे। हम कोरे न रह जाएं, इसलिए ऐसा बोध हो, जैसे नमिराज ऋषि को बोध हुआ। नमिराज को बहुत तड़पन हो रही थी। उनका शरीर तप रहा था। जब उनको बोध हुआ तो उन्होंने एक क्षण में विचार किया कि मुझे अब इस संसार में नहीं रुकना। यह शरीर व्याधि का घर है।

सरकार ने क्या लगाया?

लॉकडाउन। जब सरकार ने लॉकडाउन लगाया तो हम घर में रुक गए और जैसे ही लॉकडाउन खुला तो हमने वैक्सीन लगवा ली। अब कोरोना हमारा क्या करे। हम निर्भय हो गए।

वैक्सीन लगवा ली तो मौत नहीं आएगी क्या?

आएगी। अब भी आएगी।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

नमिराज ने सुव्रत आर्या से कहा कि चंद्रयश मेरा भाई है, यह बात मैं समझ गया। मैं पक्की धारणा कर चुका हूँ, किंतु दुनिया को कहाँ मालूम कि चंद्रयश मेरा भाई है। आज हम दोनों भाई एक-दूसरे के शत्रु बनकर खड़े हैं। दुनिया को मालूम है कि हम दोनों युद्ध करने के लिए उत्कंठित हैं। सुव्रत आर्या ने कहा कि देखो यदि तुम्हारा विचार युद्ध विराम का है तो मैं चंद्रयश से बात करूँ। तुम्हारा विचार हो तो मैं आगे बढ़ूँ। नमिराज ने कहा कि मैं युद्ध नहीं करना चाहता।

बहुत-से राष्ट्र, बहुत-से देश जल्दी युद्ध करना नहीं चाहते। युद्ध करने से कभी किसी का फायदा नहीं हुआ। त्रासदी जरूर भोगी, किंतु फायदा नहीं हुआ। अभी भी छिटपुट युद्ध हो रहे हैं। उनका परिणाम क्या होगा? उनका परिणाम होगा नाश। लाभ रूप में कोई परिणाम होने वाला नहीं है युद्ध से। भले ही बाजी जीती गई हो। जीती हुई बाजी भी हार के समान है। उस जीत का कोई फायदा नहीं है। उस युद्ध में कितना धन बहाया गया, कितने लोगों का खून बहाया गया। क्या आप उसकी कीमत पैसों में आँक सकते हो।

महाभारत के युद्ध में कौन जीता?

पांडव जीते थे, किंतु उन्हें कोई खुशी नहीं हुई। राज करें तो किस पर करें और इस राज से मिला क्या! जो हमारे थे वे भी मारे गए। सारे कौरव मारे गए। अब यदि राज्य मिल गया तो कैसी खुशी करें, किसकी खुशी मनाएं?

हकीकत में युद्ध या झगड़ा कोई समाधान नहीं है। अहंकार पोषण की बात जरूर होती है। मेरा हाथी और मेरा मान। उस मान के पीछे आदमी पागल हो जाता है। यह भी एक नशा है। अहंकार के कान नहीं होते। वह सुनने को तैयार नहीं होता। यह तो साध्वी थी जिसने पूरा ब्योरा नमिराज को दिया और नमिराज तैयार हो गये।

सुव्रत आर्या वहाँ से निकली और चंद्रयश के वहाँ पहुँची। वहाँ चौकीदार था। चौकीदार, चंद्रयश को बताता है कि एक साध्वी जी आई हुई हैं जो आपसे तत्काल मिलना चाहती हैं। चंद्रयश विचार करने लगा कि युद्ध के क्षेत्र में साध्वी जी का पधारना क्यों हुआ? चंद्रयश कैंप से बाहर आया। वह देखते ही पहचान गया कि यह साध्वी मेरी माँ है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। चंद्रयश सुव्रत आर्या से कहता है कि आपने दीक्षा क्यूँ स्वीकारी? सुव्रत आर्या ने

कहा कि इसकी बहुत लंबी कहानी है। यह सारी कहानी मैं आपको बाद में सुना दूंगी। सुव्रत आर्या ने कहा कि तुम यह युद्ध किससे कर रहे हो और क्यों? चंद्रयश कुछ कहे, उसके पहले ही उसने कहा कि तुम नहीं जानते कि युद्ध किससे कर रहे हो। मैं जानती हूँ कि वह कौन है। वह और कोई नहीं तुम्हारा ही सगा भ्राता है। उसने उसे घटना भी कह सुनाई। युद्ध के लिए आतुर चंद्रयश ने साश्चर्य कहा– क्या नमिराज मेरा भाई है? साध्वी ने कहा, हाँ वह तुम्हारा सगा भाई है। इतना सुनते ही वह अपने आपको रोक नहीं पाया। उसे अपार खुशी हुई कि बिछड़ा हुआ भाई मिल रहा है। वह उठा और चल पड़ा।

चंद्रयश वहाँ से निकला कि मुझे मेरे भाई से मिलना है। वह भागता हुआ जा रहा है नमिराज से मिलने के लिए। नमिराज ने उसे आते हुए देखा तो उठ खड़ा हुआ। अब क्या नमिराज चुपचाप बैठा रहेगा? नहीं, नमिराज बैठा नहीं रहा। जितनी प्यास उधर थी, उतनी ही प्यास इधर भी थी। जब चंद्रयश स्वयं चल कर आ रहा है तो नमिराज क्यों ठहरे। वह भी उठ खड़ा हुआ अपने स्थान से। वह भी दौड़ता हुआ चंद्रयश के सामने पहुँचा। रास्ते में दोनों का मिलाप हो गया।

मिथिलापति नमिराज जाकर चंद्रयश के चरणों में गिर जाता है। चंद्रयश उसे उठाकर अपने गले से लगाता है। दोनों एक दूसरे को छोड़ना नहीं चाहते। लोगों की आँखों में वह दृश्य कैद हो गया। लोग सोच रहे हैं कि यह क्या हुआ! ये दोनों तो युद्ध के नगाड़े बजा रहे थे और कहाँ आपस में गले मिल गए! यह क्या चमत्कार हुआ! यह दृश्य देखकर कइयों की आँखों से आँसू बहने लगे। देखने वाले राम–भरत मिलन जैसा दृश्य देखते ही रह गए। अंततोगत्वा चंद्रयश कहने लगा कि अब बस! मैं अब तुम्हें छोड़ने वाला नहीं। अब मेरे बंधन से तुम छूट नहीं सकते। अब तुमको मेरे साथ चलना होगा। चंद्रयश ने कहा कि पीछे मंत्री मौजूद हैं, वे काम संभाल लेंगे। अब तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा।

चंद्रयश के साथ नमिराज कहाँ आ गये? कौन–से राज्य में आ गए? आप भूल गए! आप जल्दी भूल जाते हैं।

चंद्रयश के साथ नमिराज सुदर्शन नगर में आ गए। वे पिछली बातें भूल गए। तुम भी सारी बात को भूल जाओ। मैं तो कहता हूँ भूलना अच्छा है। आप भूल जाओ। केवल एक अपनी आत्मा याद रह जाए। यदि अन्य सबकुछ भूल जाते हो तो सारी झंझट खत्म।

''एगोमे सासओ अप्पा''

सिर्फ आत्मा शाश्वत है। बाकी सब भुला देने योग्य है। दोनों सुदर्शन नगर में आ जाते हैं। दोनों भाइयों का अटूट प्रेम, अटल प्रेम दिखता है। दोनों की माँ एक ही है। दोनों के पिता एक ही थे। जैसे चंद्रयश की माँ मदनरेखा है, वैसे ही नमिराज की भी माँ वही है। चंद्रयश ने नमिराज से बहुत ही प्रेम भाव रखा।

संयोग ऐसा बना कि सुदर्शन नगर में किसी ज्ञानी महात्मा का आगमन हो गया। प्रवचन हुआ तो सब लोग गए। चंद्रयश राजा और नमिराज भी गए। वहाँ उपदेश सुनकर चंद्रयश का वैराग्य जग गया। वह वापस घर लौटकर आया तो नमिराज से कहा कि भाई नमिराज, आज से यह राज्य तुम ही संभालो। अब मैं साधु जीवन स्वीकार करना चाहता हूँ। नमिराज कहता है कि नहीं-नहीं भाई, अभी दीक्षा मत लो। इतनी जल्दी दीक्षा मत लो। अभी-अभी तो हमारा मिलना हुआ है।

उन दोनों भाइयों में आगे क्या चर्चा चली, यह अपन समय के साथ श्रवण करेंगे, किंतु इतना अवश्य है जब चंद्रयश भाई है तो वह उससे मिलने को लालायित हो गया। वैसे ही चंद्रप्रभ मुखचंद को देखने के लिए हमारी चेतना जागृत हो जाए, लालायित हो जाए।

देखण दे रे सखी, मने देखण दे...

अब बहुत हो गया, अब मुझे मत रोक, अब मेरे बीच में बाधाएँ मत पहुँचा। बस अब मुझे देखने दे। ऐसा दृश्य, ऐसी अद्भुत छटा मैं देखे बिना नहीं रह सकती इसलिए अब मुझे देखने दे, यह सन्मति की उत्कंठा है। यदि हमारे भीतर ऐसी ही उत्कंठा जगे तो कल्याण होने में ज्यादा देर नहीं लगेगी। वह रसायन हमारे भीतर भी आए। यदि वह आ गया तो हम भी धन्य बनेंगे।

आज इतना ही।

24 सितंबर, 2021

11

यथार्थ दृष्टि के सुपरिणाम

शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे...

इस कविता में अनेकांत दर्शन का बोध हो रहा है। परस्पर विपरीत गुणों का समावेश एक में स्वीकार करना अनेकांत दृष्टि है। करुणा, तीक्ष्णता और उदासीनता तीनों भिन्न हैं, किंतु वे भिन्न-भिन्न गुण भी एक व्यक्ति को आश्रय करके रह जाते हैं। भिन्न-भिन्न गुणों का समावेश किसी एक के भीतर कैसे हो सकता है, किसी को यह देखना-समझना है, जानना है तो वह शीतलनाथ भगवान की स्तुति से जान सकता है।

करुणा, कोमलता, उदासीनता और तीक्ष्णता। करुणा और कोमलता एक रूप है, करुणा का दूसरा अर्थ कोमलता है। कोमलता का ही नाम करुणा है। जिनमें कोमलता भी है और करुणा भी, पर साथ में तीक्ष्णता भी है और उदासीनता भी। तीनों गुण भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले हैं। भिन्न-भिन्न रूप वाले हैं, किंतु इन तीनों का समावेश शीतलनाथ भगवान के जीवन में रहा है। हर तीर्थंकर भगवान के जीवन में ये तीनों गुण आसानी से मिल सकते हैं। तीनों का कार्य अलग-अलग है, स्वभाव अलग-अलग है।

जैन सिद्धांत की यह मान्यता रही है कि सारे गुणों का कथन एक समय में नहीं किया जा सकता। वस्तुओं के संपूर्ण गुणों का कथन, सभी तथ्यों का कथन एक साथ नहीं हो सकता। एक समय में एक ही गुण का कथन किया जा सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरे का कथन नहीं किया जा सकता। इसका यह मतलब नहीं है कि उसमें दूसरे गुणों की मौजूदगी ही नहीं है। अन्य गुण भी उसमें मौजूद हैं, किंतु उस समय उनकी विवक्षा नहीं होने से वे गौण हैं। जिस समय उनकी विवक्षा होगी उस समय उनका कथन हो सकता है। इसको कहते हैं

सापेक्ष दृष्टि। इसे नयवाद भी कहा जा सकता है। नयवाद में भी जिस समय एक गुण का कथन किया जाता है, उस समय अन्य को गौण किया जाता है।

नय का अर्थ है विचार। विचार को नय कहा गया है। विचार भिन्न-भिन्न कोटि के, भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। सारे विचारों का समावेश एक में कर देना नयसापेक्ष है। एक समय में एक बात कहना और दूसरे समय में दूसरी बात कहना नयसापेक्ष है, किंतु जो बात कह रहे हैं वह सत्य है। जो बात कही जा रही है वह पूर्ण है। ऐसा नहीं है कि जो कहा जा रहा है वह अधूरा है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से अलग-अलग बात होती है। एक व्यक्ति कहता है कि मैं पिता हूँ। थोड़ी देर बाद एक वृद्ध पुरुष आया और वह कहता है कि यह मेरा बेटा है। यह कथन यदि एकांत रूप होगा तो द्वंद्व खड़ा हो जाएगा कि पहले वाले पुरुष ने कहा कि मैं पिता हूँ और यह वृद्ध कह रहा है कि ये मेरा पुत्र है।

वह पिता है या पुत्र है?

वह दोनों ही है। पिता तो है, किंतु पुत्र भी है। पुत्र है तो है, किंतु पिता भी है। पुत्र की अपेक्षा से पिता है और पिता की अपेक्षा से पुत्र है। जहाँ इस अपेक्षा का ज्ञान नहीं होगा, वहाँ द्वंद्व होगा। दादा-पोता में झगड़ा होगा। दादा कहे कि वह मेरा बेटा है और पोता कहे कि वे मेरे पिता हैं। दोनों में आपस में झगड़ा होगा कि वह मेरा बेटा है, वह मेरे पिता हैं। सत्यता दोनों में ही है। वह दोनों ही है। बेटा भी है और पिता भी है। जैसे पुत्र है वैसे ही पिता है। जहाँ एकांत बात को पकड़ लिया जाता है, वहाँ अज्ञान होता है। वहाँ व्यक्ति तीर्थंकर भगवान की वाणी के स्वाद से वंचित हो जाता है।

भगवान कहते हैं कि जीव नित्य भी है और अनित्य भी। प्रश्न हो सकता है कि नित्य है तो अनित्य कैसे और अनित्य है तो नित्य कैसे? जब हम अपेक्षा की दृष्टि से विचार करेंगे तो समन्वय हो जाएगा।

जीव द्रव्य की अपेक्षा नित्य है। पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। इस अपेक्षावाद से समस्याएँ समाहित हो जाती हैं। इसके विपरीत एकांतवाद से समस्याएँ ही समस्याएँ पैदा होती रहती हैं। शीतलनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया कि तीक्ष्णता, उदासीनता आपमें शोभित है। कहा गया कि जब आपकी करुणा को देखकर आपके स्वरूप का विचार करते हैं तो वह बड़ा शोभायमान लगता है, उसी प्रकार आपकी तीक्ष्णता भी देखते ही बनती है। वह

भी मन को लुभाने वाली है। जब आपकी उदासीनता को देखते हैं तो वो अंतर्मन को प्रभावित करती है। इसे थोड़ा स्पष्टता से समझें।

सर्व जंतु हितकरणी करुणा, कर्म विदारण तीक्षण रे।

आपकी करुणा कैसी है? सर्व जीवों के प्रति आपकी करुणा है। श्रीमद् प्रश्नव्याकरण सूत्र में एक बात बताई गई है कि तीर्थंकर देवों ने जगत् के सर्व जीवों की रक्षा रूप दया के लिए देशना दी। न कोई शत्रुता, न कोई दुश्मनी, न कोई अपना, न कोई पराया। सबके प्रति एकसमान भाव। उसी भाव से उपदेश दिया। यह उनकी करुणा का रूप है। श्रीमद् आचारांग सूत्र में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही गई है।

जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ...

अर्थात् जैसा उपदेश पुण्यवान व्यक्ति को दिया जाता है, वैसा ही उपदेश साधारण व्यक्ति को भी दिया जाता है। दोनों को एक ही उपदेश दिया जाएगा। ऐसा नहीं कि पुण्यवान को धन कमाने का जरिया बताया जाये कि ऐसा-ऐसा करो तो विशेष धनवान बन जाओगे और गरीब को कहा जाए कि चल यहाँ से। भगवान का उपदेश सबके लिए एक है। वह है- 'ममाइयं मई जहाय' अर्थात् मेरेपन की बुद्धि का त्याग करना।

भगवान के पास राजा व राजकुमार भी आए, सेनापति आए और हरिकेश जैसा चांडाल भी पहुँचा। अर्जुन माली जैसा हत्यारा भी पहुँचा, किंतु भगवान ने सबको एकसमान उपदेश दिया। कोई भेदभाव नहीं किया। वहाँ ऐसा भेदभाव नहीं था कि राजा है तो आगे पधारो और गरीब है तो पीछे जाकर बैठो। सबको समान दर्जा। सबको एकसमान उपदेश। वह उपदेश था कि 'जो राग-द्वेष जीतेगा वह कल्याण कर पाएगा। जो क्रोध, मान, माया, लोभ को जीतेगा, वह कल्याण कर पाएगा।' तीर्थंकर देवों का उपदेश कभी भी मोहवर्धक नहीं होता। मोह बढ़ाने वाला नहीं होता। उनका लक्ष्य मोह को मिटाने का होता है। मोह दुःखों का मूल हेतु है। उसके कारण जगत् के सारे प्राणी दुःखी हैं, इसलिए उसको मिटाने का ही उपदेश होता है।

भगवान कहते हैं कि जिसका मोह क्षय हो गया उसका दुःख नष्ट हो गया। जब तक व्यक्ति मोह के बीच रहेगा, तब तक उसका परिणाम चिंता के रूप में, दुःख के रूप में, पीड़ा के रूप में मिलता रहेगा। मोह बढ़ाने का मतलब है

जीवों को दुःख में धकेलना। संसार में जितने भी जीव हैं वे दुःखी हैं। वे दुःख बढ़ाने का, मोह बढ़ाने का उपदेश नहीं देते। वे संसार बढ़ाने का उपदेश नहीं देते। वे कहते हैं कि मोह तुम्हारा शत्रु है। वह अनंतानंत सुख को प्राप्त करने में रुकावट पैदा करता है। जब तक मोह नष्ट नहीं होगा, तब तक तुम अपने आत्मिक निधि को संपूर्ण तरह से प्राप्त नहीं कर सकते। हमारी आत्मा में अनंतानंत शक्तियाँ भरी हुई हैं। वे कम नहीं हैं, पर हमें उनकी पहचान नहीं है। तिजोरी में बहुत सारा माल भरा है, किंतु कभी खोलकर नहीं देखा कि तिजोरी में क्या है, इसलिए व्यक्ति इधर-उधर हाथ फैलाता रहता है। कटोरा लेकर इधर-से-उधर घूमता रहता है। यह दीनता उसके तेज को नष्ट करने वाली है। अतः दीन नहीं, अदीन बनें। अदीनता तेज को प्रखर करती है।

हम दीन क्यों बन गए? क्योंकि हमने बाह्य वैभव को महत्त्व दिया। ध्यान रहे, धन-वैभव के लिए भले ही आप दीन बन जाएं, पर धन-वैभव सदा आपके पास रहने वाला नहीं है।

फिर क्यों दीन बनें, किसलिए दीन बनें?

जैसा कि कहा गया है-

सव्वं से जाइयं होइ, नत्थि किंचि अजाइयं...

साधु को एक तिनका भी चाहिए अथवा वस्त्र, कागज, पेन या अन्य कुछ भी चाहिए तो उसको याचना करने पर ही प्राप्त होनी वाली है। साधु कोई भी चीज याचना करके लाता है। उसकी याचना दीन वृत्ति नहीं है। वह दीन बनकर याचना नहीं करता। वह याचना अवश्य करता है किंतु उसकी वृत्ति अदीन होती है। उसे अपनी मर्यादा के अंतर्गत प्राप्त होगी तो वह ग्रहण करेगा, अन्यथा नहीं। ऐसा नहीं है कि किसी घर में गया, वहाँ से पेन अथवा अन्य कोई भी चीज उठाकर चलता बने। साधुओं के निमित्त से पेन, कॉपी, डायरी या अन्य वस्तु कोई खरीदकर लाता है तो साधु वह नहीं लेता, क्योंकि साधुओं के निमित्त से खरीदकर लाया हुआ लेना वर्जित है। साधु उसको नहीं ले सकता। साधु मर्यादा छोड़कर याचना नहीं करता।

(सभा में एक श्रावक चादर हिलाने लगे)

श्रावक जी चादर मत हिलाओ। सामायिक में चादर नहीं हिलाना, हवा नहीं लेना। इससे वायुकाय की विराधना होती है। थोड़ा धैर्य रखो। आपने नरक में

बहुत भयंकर गरमी सही है। यह गरमी तो कुछ भी नहीं है। यहाँ जैसी गरमी हो रही है उससे अनंतानंत गुना गरमी नरक में भोगी है। आप लोगों को गरमी क्यों सताती है? क्योंकि ए.सी की ठंडक लेने लगे हो, जिससे सहने की शक्ति मंद हो गई, शक्ति क्षीण हो गई, इसलिए यह गरमी सताने लगी अन्यथा हमें तो नहीं सताती। यदि पंखा, ए.सी को यूज नहीं किया होता, जैसा मौसम है उसी के अनुसार जीए होते, मौसम में ढल गए होते तो कोई भी गरमी-सरदी परेशान करने वाली नहीं होती।

भगवान महावीर का सिद्धांत गजब का है। वे कहते हैं- भागो मत, सहो। यदि तुम्हें शीत लग रही है तो कपड़े उतार दो। आतापना लो, ठंड लगेगी तो कितनी लगेगी! जैसे ही कपड़े उतारे, ठंड गायब हो जायेगी। पता नहीं चलेगा कि कहाँ चली गई।

जेठ की गरमी में साधु रेतीले मार्ग पर चलता है। ऊपर से गरमी है और नीचे भी रेत तपती रहती है तो भी वह मस्त चाल से चलता है। जैसे ही उसके मन में यह भाव आ जायेगा कि रेत गर्म है, वैसे ही उसके मन में चंचलता आ जाएगी। उसको लगने लगेगा कि भूमि गर्म है, मेरे पैर को गरमी लग रही है। उसका मन डोलायमान हो जाएगा। उस समय वह आराम से नहीं चल पाएगा। इसीलिए ज्ञानी कहते हैं कि गरमी लगे तो कोई बात नहीं, किंतु दिमाग में गरमी मत आने दो। दिमाग में गरमी भर लोगे तो वह परेशान करेगी।

भगवान कहते हैं कि गरमी लग रही है तो वस्त्र हटाकर सूर्य के सामने खड़े हो जाओ। वह कितना तपाएगा! एक दिन ऐसा आएगा कि गरमी शरीर में रम जाएगी। उसके बाद नहीं सताएगी, क्योंकि शरीर ने इतना पॉवर इकट्ठा कर लिया, शरीर इतना पॉवरफुल हो गया कि अब वह गरमी सहन करने में समर्थ है। सरदी सहन करने में समर्थ है। शरीर की शक्तियों को चाहें तो बढ़ा सकते हैं, चाहें तो घटा सकते हैं। सुख की चाह में रहेंगे तो शरीर की शक्तियाँ क्षीण हो जाएंगी। मंद पड़ जाएंगी। फिर थोड़ी-सी भी गरमी नहीं सह पाएंगे। इसलिए अपने आपको सहनशील बनाने का लक्ष्य रखना चाहिए।

हम सामायिक में कहते हैं कि मैं छह काय जीवों में किसी जीव की विराधना नहीं करूंगा। मन से नहीं करूंगा और वचन से भी नहीं करूंगा। काया से भी नहीं करूंगा। कपड़ा हिलाने से वायु के जीवों का जीवन नष्ट होता है। मन

में ऐसा विचार आएगा कि हवा लेनी है तो हाथ कपड़े पर जाएगा। फिर कपड़ा हिलाएंगे तो उससे वायुकाय की उदीरणा होनी है। इसलिए सामायिक में ऐसी क्रिया नहीं होनी चाहिए। यदि समुदाय में गरमी लग रही है तो अलग बैठ सकते हो। जो क्रिया करें पूरी श्रद्धा से करें। उसमें किसी प्रकार के समझौते की बात नहीं होनी चाहिए। सामायिक भले एक ही हो, किंतु अच्छी होनी चाहिए। जरूरी नहीं कि दस सामायिक करें। एक ही सामायिक हो किंतु वह शुद्ध हो। क्वालिटी वाली हो। सामायिक में किसी जीव की विराधना न हो। कोई कितना भी बोल जाए, किंतु मन में किसी जीव को भी पीड़ा देने की भावना नहीं होनी चाहिए।

श्रावक का जीवन अनर्थ हिंसा को टालने वाला होता है। श्रावक व्यर्थ की हिंसा नहीं कर सकता। शरीर या परिवार के निर्वाह के लिए उसे जीवों की विराधना करनी पड़ती है। यह उसकी लाचारी है। वह मानता है कि आज मेरे में वह ताकत नहीं है, वह शक्ति नहीं है कि साधु बनकर छह काय के जीवों की रक्षा करूँ। साधु जीवन स्वीकार करने के लिए मेरे में सामर्थ्य नहीं है इसलिए मुझे कुछ आरंभ करना पड़ रहा है, पर जितना बचाव हो सकता है, उतना बचाव करूँ। इस प्रकार अनर्थ हिंसा से बचाव करने का लक्ष्य होना चाहिए। अनावश्यक रूप से एक बूँद भी पानी खर्च नहीं होना चाहिए।

अगरदान जी सेठिया के वंशज जेठमल जी सेठिया, घरवालों द्वारा कपड़ा धोने के बाद छोड़े गये साबुन के टुकड़े को लाकर वॉशवेसिन पर रख देते। उस टुकड़े को भी वे काम में लेते। साबुन का छोटा टुकड़ा भी व्यर्थ में क्यों जाए। यह कंजूसी नहीं है। यह सदुपयोग है। कोई सोचेगा कि कैसा कंजूस है जो साबुन का टुकड़ा भी लाकर रखता है। यह सोचने की बात है, सीखने की बात है कि किसी भी पदार्थ का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए।

भगवान महावीर ने साधु के लिए अजीवकाय संयम की बात बताई है। कागज या अन्य किसी भी पदार्थ का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। यदि चार लाइन से काम चल रहा है तो उससे अधिक कागज को व्यर्थ नहीं करना चाहिए। कई लोग चार लाइन जितने कागज की जरूरत के लिए पूरे पेज को लेते हैं। जो बाकी बचता है उसको फेंक देते हैं। चाहिए कितना कागज और लिया कितना कागज? दो लाइन की जरूरत है और पूरे कागज का प्रयोग कर रहे हैं।

इन कागजों का निर्माण कैसे होता है मालूम है आपको?

वृक्षों से कागजों का निर्माण होता है। कितने जीवों की घात होती है तब कागजों का निर्माण होता है। उक्त स्थिति में हम यदि कागज का दुरुपयोग करें तो स्पष्ट है कि हमने उन जीवों की पीड़ा को समझने का प्रयास नहीं किया, जिन जीवों की घात उनके निर्माण में होती है। हमें लगना चाहिए कि कागज बनने में कितने जीवों के प्राण गए। अत: हम कागजों का दुरुपयोग कैसे कर सकते हैं। कागज का एक टुकड़ा भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिए। जेठमल जी सेठिया साबुन के एक-एक टुकड़े को बचाते थे। मतलब यह है कि किसी भी चीज को बेकार नहीं जाने देना।

एक बहुत बड़ा सेठ था। उसके घर में कोई काम चल रहा था तो घी की एक बूँद नीचे गिर गई। पुराने जमाने में लोग चमड़े के जूते पहनते थे। सेठ जी के भी जूते चमड़े के थे तो सेठ जी ने घी की वह बूँद अपने जूतों पर लगा दी। सेठ जी के यहाँ काम करने वाले एक नौकर ने यह देखा तो उसको हँसी आई। वह सोचने लगा कि इतना बड़ा सेठ और कंजूस! एक बूँद गिरी और जूते पर लगा ली।

क्या होना चाहिए? आपके मन में क्या आएगा? बात एक बूँद घी की नहीं है। पूरी घिलोड़ी का घी खा ले तो मना नहीं है, पर एक बूँद भी व्यर्थ क्यों जाए।

मुझे याद आई राणावास की एक बात। वहाँ पर गुरुदेव का चातुर्मास हो रहा था तो मूलसिंह जी पुरोहित वहाँ चातुर्मास में कार्यकारी कर्मचारी थे। किसी भाई ने सेठ जी के सामने मूलसिंह की शिकायत की कि मूल जी दो-दो लीटर दूध पी लेता है। हमारे घर की बीनणी भी एक लीटर दूध पीए तो सास के आँखों में आ जाएगी। आपके घर में ऐसा नहीं होता है तो अच्छी बात है। यदि बीनणी को दूध पिलाए तो उसमें आधा पानी और आधा दूध और यदि अपने बेटे को दूध पिलाएगी तो एकदम ताजा दूध। कई घरों में ऐसा होता है। नहीं होने जैसी बात नहीं है। आपके घर में नहीं होता हो तो अच्छी बात है, किंतु हमने कई जगह ऐसा सुना है। फिर नौकर यदि दो लीटर दूध पी जाए तो कैसे सहन कर ले।

वहाँ कटारिया जी ने जवाब दिया कि भाई मूलसिंह खुद दो लीटर पीए तो कोई बात नहीं पर जिस दिन केतली में भरकर घर ले जाए, उस दिन बोलना। वह काम कर रहा है। जो काम करेगा वह तो खाएगा-पीएगा। वह काम यहीं कर रहा है तो यहीं पीएगा। पीने दो। काम कर रहा है तो उसकी पूर्ति होनी चाहिए।

जब सेठ जी ने ऐसा कहा तो मूलसिंह जी जितना काम पहले करता था

उससे भी बढ़कर काम करना शुरू कर दिया। उसने सोचा कि सेठ जी मेरे लिए ऐसा बोल रहे हैं तो सेठ जी के लिए मैं अपनी जान देने को तैयार हूँ। तैयार होगा या नहीं? मेरा कर्मचारी दो लीटर दूध पी रहा है तो कोई बात नहीं। वह काम भी तो कर रहा है। ऐसा यदि सेठ बोलता है तो उसके प्रति कर्मचारी के भाव कैसे प्रकट होंगे? दिन भर काम करने के बाद रात को एक बजे रेलवे स्टेशन जाना होता तो मूलसिंह जाता था। एक-एक बजे उठकर ठेला लेकर जाता था। उसका मन उत्साहित हो गया। चीज कोई महत्त्व नहीं रखती। दो लीटर दूध पी रहा है, ये तो देख रहे हैं, किंतु 100 लीटर दूध का काम कर रहा है, वह नहीं दिख रहा। वह दो लीटर दूध पी रहा है और चार जनों का काम अलग से कर रहा है। अकेले चार जनों का काम कर रहा है। यदि चार जने काम करते तो कितना दूध पीते!

कंपनी के सीईओ और एक वर्कर की पगार कितनी होती है? सीईओ की पगार लाख रुपये से भी ज्यादा होती है और एक वर्कर की पगार कुछ हजार रुपये से ज्यादा नहीं होती होगी। मेरे खयाल से कहीं-कहीं तो हजार लोगों का वेतन एक तरफ और एक सीईओ का वेतन एक तरफ। उस पर यदि वर्कर सोचे कि हम कितना काम कर रहे हैं तो भी हमें पगार कम दी जाती है और सीईओ को प्रचुर रुपये दिए जा रहे हैं तो यह सोचना गलत है। सीईओ हजारों वर्करों को चलाने वाला होता है। उसका दिमाग हजारों को चलाने के लिए प्रचुर रुपये ले रहा है। वह भले कुछ नहीं कर रहा होगा, किंतु उसका दिमाग काम कर रहा है। सोचो कि वह भी आदमी है और आदमी वे भी हैं। वह प्रचुर रुपये में काम कर रहा है और अन्य आदमी हजारों में काम कर रहे हैं।

यदि सीईओ को हटा दें तो काम चलेगा क्या?

काम नहीं चलेगा, गाड़ी नहीं चलेगी। गाड़ी वाली बात हमने बहुत बार सुनी। एक गाड़ी रास्ते में खराब हो जाती है। सेठ जी उतर गए। ड्राइवर ने गाड़ी सही करने के लिए मेहनत की, किंतु गाड़ी ठीक हुई नहीं। एक मैकेनिक को बुलाया गया। उसे पाँच सौ रुपये में तय किया गया। मैकेनिक आकर एक हथौड़ी मारता है और गाड़ी स्टार्ट हो जाती है। सेठ जी ने कहा- भाई पाँच सौ ज्यादा है। तुमने क्या किया, तूने एक हथौड़ी ही तो मारी। एक हथौड़ी के पाँच सौ कैसे हो गए? मैकेनिक कहता है कि मैंने एक हथौड़ी मारी, आप उसको देख रहे हो। मैंने चलाने का पैसा नहीं लिया। मैंने पैसा लिया हथौड़ी कहाँ चलाने का। हथौड़ी तो

कोई भी चला सकता है। उसको कहाँ पर चलाना यह बात महत्त्व रखती है। यदि आपको मालूम ही नहीं कि हथौड़ी कहाँ पर मारनी है तो आप भले कितनी ही हथौड़ियाँ मार लो, उसे ठीक नहीं कर पाओगे। जिस चीज पर हथौड़ी मारी जा रही है वह टूट जाएगी पर ठीक नहीं होगी। हमें विचार करना चाहिए कि हम क्या कर रहे हैं।

वर्तमान युग में हमारी संवेदना शिथिल हो गई। प्राणियों के प्रति करुणा शिथिल हो गई। श्रावक में करुणा होनी चाहिए पर वह करुणा आज दृष्टिगोचर कम होती है। करुणा होती तो जब चाहे तब मोबाइल नहीं चलाते। अत्यंत आवश्यक होता तो ही मोबाइल का उपयोग करते। लेकिन जब मन होता है तभी मोबाइल चला लेते हैं। मोबाइल को एक बार क्लिक करने से असंख्य जीवों की घात होती है। मोबाइल जीव हिंसा का कारण बनता है। यह घात हमारे दिमाग में नहीं आ रही है। यही कारण है कि बिना जरूरत मोबाइल चलाए जा रहे हैं।

आनंद श्रावक के पास 40 हजार गोधन था। 40 हजार पशुओं को कितना पानी पिलाना पड़ता था। आनंद श्रावक उनको धोवन पानी पिलाते थे या कच्चा?

(सभा की तरफ से आवाज आती है- वह पानी छानकर पिलाते थे भगवन्)

मैंने पूछा धोवन पानी का, छानकर पिलाने का नहीं।

अनन्य मुनि जी जब गृहस्थ जीवन में थे और मेरा चतुर्मास चेन्नई हो रहा था उस समय उन्होंने हर जगह धोवन पानी की व्यवस्था करवाई। इतने सारे बरतन माँजे जाते थे कि आराम से धोवन पानी बन जाता था। भोजनशाला में कितने बरतन निकलते हैं। उन बरतनों से निकलने वाला पानी कितना होगा? उस पानी को अवेरें तो धोवन पानी कम नहीं पड़ सकता। पहले लोग राख को एक छननी में डालते और ऊपर से पानी डालकर मान लेते कि हो गया धोवन। ये सही नहीं है। ऐसा पानी धोवन नहीं होता। उसका उपयोग उपवास, एकासन आदि तपस्या वाले नहीं कर सकते।

जो जीवे वि न याणति, अजीवे वि न याणति।
जीवाऽजीवे अयाणंतो, कह सो नाहिइ संजमं?।।

जो जीव को नहीं जानता, अजीव को नहीं जानता, जिसे सचित्त और

अचित्त की जानकारी नहीं है, वह व्रतों की आराधना कैसे करेगा? वह जीवों की विराधना को क्या जानेगा? इसलिए जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि सचित्त और अचित्त क्या है। एकासना, बेला, तेला जो भी तपस्या करनी है, ठीक है, किंतु ये नॉलेज होना चाहिए कि क्या करना और क्या नहीं करना। कभी ट्रेन आदि में यात्रा करते समय अन्य उपाय न होने से कोई चूर्ण, पाउडर डालकर पानी अचित्त करना, पीना अलग बात है, किंतु एकासना, उपवास में ऐसा काम नहीं होना चाहिए। वैसा किसी ने लिया हो तो दोष लगेगा। तपस्या में वह धोवन पानी काम आता है, जो सहज बना होता है अथवा गर्म पानी हो तो वह उपयोग में आता है। राख या अन्य चूर्ण आदि घोला हुआ पानी एकासना में, उपवास में काम नहीं लिया जा सकता। मुझे पता नहीं कि यहाँ कैसा धोवन उपयोग में लिया जाता है, कैसे धोवन बनाते हैं, किंतु हम किसी को पिलाते हैं तो उसे बोलें जरूर। यहाँ कई बार संचालन करते हुए बोलते हैं कि एकासन वालों के लिए भोजन की व्यवस्था भोजनशाला में है, किंतु वह भोजन सचित्त है या अचित्त जो हमने परोसा? भोजन बनाने वालों को सचित्त और अचित्त मालूम नहीं होने से कई बार पोहा या दाल में ऊपर से धनिया पत्ती डाल देते हैं।

ऊपर से धनिया पत्ती किसलिए डालते हैं?

उसकी खुशबू आएगी तो पोहे अच्छे लगेंगे। दाल अच्छी लगेगी, किंतु अच्छा लगाना एकासन करने वालों के लिए विघ्न पैदा करने वाला हो जाता है, क्योंकि वह धनिया पत्ती अचित्त होना कठिन है। इसी तरह जो धोवन पानी नहीं है, उसे भी आपने धोवन पानी कह कर पीने के लिए दे दिया तो हो सकता है कि पीने वाला आप पर विश्वास कर ले, किंतु यह विश्वास तोड़ने वाली बात हो गई। ऐसा करने वाले उसके व्रत में दोष लगाने वाले बन गए। श्रावक सचित्त-अचित्त के बारे में नहीं जानेगा तो वह व्रत-नियम की आराधना कैसे कर पाएगा? अतः उसे सचित्त-अचित्त का ज्ञान होना चाहिए। व्रत-नियम चाहे कम करो, किंतु जितना भी हो शुद्ध होना चाहिए। उसमें दोष नहीं लगना चाहिए।

बात चल रही थी तीर्थंकर भगवान के करुणा की। यथा स्तुति में कहा गया है-

सर्व जंतु हितकरणी करुणा, कर्म विदारण तीक्ष्ण रे...

करुणा क्या है?

सारे जीवों के प्रति मन में प्रीति का भाव रहना चाहिए। चाहे एकेंद्रिय हो या बेइंद्रिय या फिर वायुकाय, सभी जीवों के प्रति मन में करुणा होनी चाहिए। यदि उन जीवों का जीवन खतरे में हो तो उनको देखकर मन में दया भाव होना चाहिए। उनकी सुरक्षा के लिए हमेशा तत्पर रहना चाहिए, किंतु हम स्वयं जीवों को तड़पा-तड़पाकर मारने के लिए तैयार हैं। अनावश्यक रूप से मारने के लिए तैयार हैं। व्यर्थ में हिंसा करने को तैयार हैं। कई बार देखा गया है कि टी.वी, ए.सी व्यर्थ में चलते रहते हैं। उनसे व्यर्थ में जीवों की विराधना होती है।

इससे हमारे श्रावक जीवन की आराधना कितनी पक्की होगी?

नहीं हो पाएगी। वैसे सामान्य रूप से कहा जाता है कि एक बार श्रावक आराधना कर ले तो छठे आरे में जन्म नहीं लेगा, नरक में नहीं जाएगा। भयंकर वेदना होने वाले स्थानों में जाने से रुक जाएगा। किंतु हम बहुत वीर हैं। बहुत समर्थ हैं। भोग लेंगे पीड़ा। इतनी पीड़ा भोगी है तो थोड़ी और भोग लेंगे। बहुत सारी वेदना भोग रहे हैं, थोड़ी और भोग लेंगे तो क्या हो जाएगा। अभी तो सुख से जी लें। आगे जो होगा देखा जाएगा। अभी आप थोड़े से सुख के लिए जितने जीवों की घात करेंगे वे जीव ही भविष्य में दु:ख के निमित्त बन सकते हैं। यह तब मालूम पड़ेगा, जब वे दु:ख रिटर्न करने वाले बनेंगे। लोग कहते हैं कि मेरे जीवन में इतने कष्ट क्यों आते हैं। अब तुम्हारा रोना यह है कि मेरे जीवन में इतने कष्ट क्यों आते हैं, पर जब तुमने जीवों को कष्ट दिया तो नहीं सोचा! फव्वारे के नीचे स्नान करते समय जीवों पर दया आई?

क्या बिना फव्वारे के स्नान नहीं हो सकता? हो सकता है।

पानी ठंडा लग रहा है तो मशीन से गर्म कर रहे हैं। मुझे तो पानी ऐसा चाहिए, वैसा चाहिए। ठंडा चाहिए। ये सारी स्थितियाँ कहाँ ले जाने वाली बनेंगी? ध्यान रहे, ये सारी अवस्थाएँ दु:ख देने वाली होंगी। जितने घटके करोगे, उतने झटके खाने को भी तैयार रहना। अत: जो करना हो सोच-समझकर करो।

जरा कर्म देखकर करिए, इन कर्मों की बहुत बुरी मार है...

कर्मों को देखकर करो। कर्म करने से पहले विचार करो कि इसका परिणाम क्या होगा। परिणाम का विचार भी बाद में। उससे पहले यह विचार करो कि ये जीव हिंसा का काम मेरे लिए अनिवार्य है या मुझे इस काम की जरूरत नहीं है? इससे बचा जा सकता है या मुझे करना ही पड़ेगा? मेरे लिए लाजिमी है,

करना जरूरी है तो मन में होना चाहिए कि क्या करूँ, मुझे करना पड़ रहा है। यदि जीवों की विराधना करनी जरूरी नहीं है तो उनसे बचाव करना चाहिए। उसको टालना चाहिए। जब बचाव की दृष्टि बनेगी तो हम उन जीवों के हितकारी बनेंगे। आप थोड़ा-सा विचार करना कि कितना पानी व्यर्थ जाता है, कितनी बिजली व्यर्थ जाती है। जिस कमरे में कोई नहीं बैठा रहता, वहाँ भी टी.वी, पंखा, ए.सी चालू है। लोग अन्यत्र बैठे हैं और कमरे में पंखा चल रहा है। क्यों न चले। बाबूजी ने बहुत कमाया। बाबूजी के पास बहुत है, क्या करेंगे। पर जब बिल आता है तो लगता है कि इतना बिल कैसे आ गया?

पहले टी.वी, ए.सी, पंखा ऑन करके रखा। कोई टी.वी नहीं देख रहा है फिर भी उसे चालू रखा, कोई हवा नहीं ले रहा है फिर भी पंखा, ए.सी चालू रखा और अब बोल रहे हो कि इतना बिल कैसे आ गया? सोचते हो कि कहीं मीटर में कोई गड़बड़ी तो नहीं है।

इसी तरह जब तक काम था तब तक डॉक्टर साहब, डॉक्टर साहब करते थे। डॉक्टर ने भी अच्छे मन से दवाई दी और जब डॉक्टर साहब बिल देते हैं तो कहते हैं कि इतना बिल कैसे बना? अब जमाना बदल गया। अब डॉक्टर भी सावधान हैं। वे पहले पैसे लेते हैं, बाद में दवाई देते हैं। वे जानते हैं कि लोग बाद में लटपट किये बगैर नहीं रहेंगे। डॉक्टर से कहेंगे कि कुछ कम कर लो। साग-सब्जी वाला कहेगा 50 रुपए तो आप कहेंगे कि 50 रुपये नहीं 48 ले ले। उसको 48 रुपए देंगे और ऊपर से एक मिर्ची और उठाकर डाल लेंगे। जिसका आभूषण का काम है, उसने आपको आभूषण दिया तो क्या आप उसको भी बोलेंगे कि कान के लौंग ऊपर से दे दो। दूधवाले ने दूध दिया तो कहोगे थोड़ा और डालो। वह ऊपर से थोड़ा दूध डाल देता है। यदि दूधवाला लगभग 100 लीटर दूध लाता है और ऐसे ज्यादा डालता है तो 99 लीटर दूध ही बेच पाता है। थोड़ा और डालो, थोड़ा और डालो में उसका एक लीटर दूध चला जाता है। दूधवाला उस दूध को पूरा करने के लिए दो लीटर पानी मिलाए तो आप कहेंगे कि पानी मिला हुआ है। वह ज्यादा दे रहा था वह दिखाई नहीं दिया, पानी मिला हुआ दिख गया।

अन्य किसी को देखने के पहले यह देख लो, यह सोच लो कि हम क्या कर रहे हैं। सामने वाले के साथ हमारा बरताव कैसा है और सामने वाला

हमारे साथ बरताव करता है तो हम क्या चाहते हैं?

श्रावक का दिल कोमल होना चाहिए, करुणा वाला होना चाहिए। वह सोचे कि किसी को मेरे कारण बुरा न लगे। मेरे कारण से किसी को कोई कष्ट न पहुँचे। श्रावक के दिल में यह विचार होना चाहिए कि किसी को मेरे कारण से कोई तकलीफ न हो। क्योंकि अब वह सामान्य गृहस्थ नहीं है। वह तीर्थंकर भगवान का उपासक है, श्रावक है।

श्रावक कैसा होना चाहिए?

श्रावक ऐसा चाहिए, जो हो क्रियावान।
यतना और विवेक का, रखे प्रतिपल ध्यान।।

श्रावक ऐसा होना चाहिए जो यतना और विवेक रखे। इन दो बातों को जीवन में नहीं ला पाने वाला कैसा श्रावक! साधु के भीतर भी यतना और विवेक की प्रधानता होनी चाहिए। हर क्रिया में यतना और विवेक का बोध होना चाहिए। ये दोनों भीतर हैं तो सही तरह से धर्म की आराधना करने में सक्षम होंगे अन्यथा उसकी क्रिया कोरी रह जाएगी। नमिराज का वर्णन हम कर रहे हैं।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

चंद्रयश और नमिराज को मालूम हुआ कि हम भाई-भाई हैं तो दोनों इस प्रकार मिले जैसे राम-भरत का मिलाप हो। चंद्रयश, नमिराज को सुदर्शन नगर ले जाता है, अर्थात् अपने नगर ले जाता है। बड़े प्रेम से दोनों साथ-साथ रहते हैं। संयोग ऐसा बना कि कुछ दिनों में एक ज्ञानी मुनि का आगमन हुआ। चंद्रयश और नमिराज दोनों संस्कारी थे। मदनरेखा जैन धर्म की श्राविका थी, इसलिए उसके दोनों बच्चों में अच्छे संस्कार थे। जो नए भाजन में संस्कार लगते हैं, वे व्यर्थ नहीं जाते। माता के गर्भ से जो संस्कार मिलते हैं वे अक्षुण्ण रहते हैं। वर्तमान में माता अपनी संतान को कितना संस्कार देती है, यह बात अलग है। जीवन जी कर जो संस्कार दिए जाते हैं, वे अमर होते हैं। वे संस्कार उन संतानों पर गहरे अंकित रहते हैं। हर क्षेत्र में वे संस्कार उनके लिए लगाम रूप होते हैं।

बच्चों के जीवन को सँवारने के लिए माताओं को अपने आपको नियंत्रित करना होगा। माताएँ अपने आप को नियंत्रित नहीं कर पाएंगी तो अपने बच्चों का जीवन नहीं सँवार पाएंगी। बच्चों के उन्नत जीवन में माताओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

दोनों भाइयों में अच्छे संस्कार थे। दोनों ने जैसे ही मुनि के आगमन के बारे में सुना, वैसे ही मुनि के चरणों में पहुँचे। मुनि ने उनको जिनवाणी का उपदेश दिया। उसको सुनकर चंद्रयश की आत्मा जागृत हो गई। उसने निर्णय किया कि अब संसार के अलीते-पलीते में मुझे नहीं रहना। ये तो सुव्रत आर्या थी जिसने हमें अज्ञान से बचा लिया, नहीं तो अज्ञान अवस्था में हम भाई-भाई लड़ पड़ते तो क्या होता। अब दुनिया मुझे रास नहीं आ रही है। उसने कहा, भगवान! मैं साधु जीवन स्वीकार करना चाहता हूँ, अणगार धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ। मुनि ने कहा कि जैसा सुख हो वैसा करो, किंतु शुभ कार्य में विघ्न पैदा मत करो। दोनों भाई घर आए। चंद्रयश ने नमिराज से कहा कि मुझे तो दीक्षा लेनी है। मुझे साधु जीवन स्वीकार करना है। नमिराज ने कहा कि भाई यह कैसी बात कर रहे हैं आप। वर्षों बाद हम मिले हैं और आज आप यह बात कर रहे हैं! मुझे ऐसे छोड़कर चले जाने की बात कर रहे हैं! भैया आप ऐसी बात मत करें। हम कितने वर्षों बाद मिले हैं। मुझे पहली बार भाई का प्रेम मिल रहा है। जिंदगी में पहली बार भाई का प्रेम मिल रहा है। अब तक तो मैं अकेला था। अब मैं आपको इतनी जल्दी कैसे अनुमति दे सकता हूँ। चंद्रयश ने कहा, भाई सोचो, जीवन का कोई भरोसा नहीं है। अभी हम दोनों ने युद्ध किया होता तो मेरा या तेरा अस्तित्व क्या होता? कौन मरता, कौन जीता? क्या होता? जैसे उस समय हमें पता नहीं था वैसे ही आज हमें पता नहीं है कि हम इस जीवन के लिए कितने सारे जीवों की घात कर रहे हैं, उनका हमारे साथ कुछ-न-कुछ सम्बन्ध रहा ही है। कभी माता तो कभी पिता। कभी भाई तो कभी कोई अन्य रिश्तेदार रहा होगा। अपने जीवन के लिए हम उनकी घात करें यह कहाँ तक उचित है! साथ ही अपने जीवन का भी कोई भरोसा नहीं है।

आप बताओ कितने समय तक हम जिएंगे और मरेंगे? बताओ 5 वर्ष, 10 वर्ष, 100 वर्ष कितने वर्ष जिएंगे? क्या पिता लिखाकर आया कि इतने वर्ष जीऊंगा? क्या बेटा लिखाकर आया कि इतने वर्ष जीऊंगा?

कुछ पता नहीं कि कब तक जिएंगे, कब मर जाएंगे। ऐसा कोई है क्या जो पट्टा लिखाकर लाया हो कि मेरे पास पट्टा है। बीच में मौत आ गई तो बता दोगे कि मेरे पास पट्टा है, तू यहाँ से हट जा। कोई पट्टा लिखाकर नहीं लाता। कोई मौत को हटा नहीं पायेगा। जब तक जी लिया, तब तक जीवन है। जिस दिन हार

गए, जिस दिन मौत आ गई, उस दिन हाथ में कुछ भी नहीं रहेगा। आपके हाथ में कुछ नहीं रहेगा। इसलिए जब तक जीवन है, तब तक धर्म की आराधना कर लें।

चंद्रयश ने नमिराज को यह समझाया तो नमिराज को पता चल गया कि अब ये मानने वाले नहीं हैं। नमिराज ने समझ लिया कि अब इन तिलों में तेल नहीं है। अब मैं कुछ भी प्रयास करूँ कुछ नहीं होगा। चंद्रयश ने अपना सारा राज्य नमिराज को सौंपा। उसके बाद राज्याभिषेक के साथ-साथ दीक्षा महोत्सव भी मनाया गया। नमिराज बहुत साज-सज्जा के साथ चंद्रयश राजा को मुनि भगवंतों की सेवा में ले गये और कहा- भंते ये चंद्रयश राजा, जिनका नाम सुनना भी दुर्लभ है, आज दीक्षा के लिए तैयार हैं। हम इन्हें आपको शिष्य भिक्षा के रूप में प्रदान कर रहे हैं। आप यह भिक्षा स्वीकार कर, इनको दीक्षित एवं शिक्षित करें और इनके जीवन का उद्धार करें।

इस प्रकार से मुनि के चरणों में चंद्रयश को सौंपा जाता है। वे संयम जीवन की आराधना में तन्मय हो जाते हैं।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

बंधुओ! चंद्रयश राजा मुनि बन गए। पहले जमाना ऐसा था कि एकदम वैराग्य आता और साधु बन जाते थे। नमिराज को लग रहा था कि अब मैं अकेला रह गया। फिर अपने मन को इस तरह से समझाया कि कौन किसका होता है, एक दिन जाना सबको होता है। कोई मरकर जाता है तो कोई जिंदा चला जाता है। धन्य है मेरा भाई, जिसने मुनि जीवन स्वीकार कर लिया। हमारे लिए प्रेरणा का विषय बना।

आगे हम समय के साथ विचार करेंगे, किंतु इतना अवश्य है कि साधु जीवन स्वीकार करते हैं तो अच्छी बात है। इससे बढ़कर वर्तमान में आत्मसमाधि का अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है। यदि साधु जीवन का सामर्थ्य नहीं है तो कम-से-कम श्रावक जीवन की सम्यक् आराधना करते हुए लक्ष्य रखें कि साधु जीवन स्वीकार करूँ। संथारा स्वीकार करूँ। इस प्रकार से आगे बढ़ेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ। आज का इतना ही।

25 सितंबर, 2021

12

सपना तो सपना ही है

शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे...

मोक्ष को एकांत सुखकारी बताया गया है।

'एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं'

जो साधक अपना लक्ष्य लेकर आगे बढ़ता है वह अपने लक्ष्य की ओर गति करता हुआ एकांत सुख रूप मोक्ष को प्राप्त करता है। हम कहते जरूर हैं कि हमारा लक्ष्य मोक्ष है, किंतु मोक्ष रूपी लक्ष्य का निर्धारण करने के बाद यदि गति, प्रवृत्ति, प्रवाह उसके अनुरूप नहीं बने तो लक्ष्य कहीं रहेगा और हम कहीं और रह जाएंगे। लक्ष्य का मतलब है- जहाँ हमें पहुँचना है, उस स्थान का निर्धारण करना। जो हमें प्राप्त करना है उसका निश्चय करना। उस बिंदु का निर्धारण करना।

लक्ष्य निर्धारित करने के बाद प्रत्येक प्रवृत्ति उसी दिशा में होनी चाहिए, अर्थात् प्रत्येक कदम उसी दिशा की ओर अग्रसर होना चाहिए। यदि लक्ष्य के अनुरूप कदम बढ़ेंगे तो लक्ष्य को प्राप्त करेंगे। लक्ष्य के विपरीत दिशा में कदम बढ़ाएंगे तो लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाएगा। जो लक्ष्य बनाया उसके विपरीत हमारी गति हो गई तो उस लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकेंगे? फिर वह लक्ष्य कैसे मिल पाएगा? यदि लक्ष्य बनाया सिद्धि का, मुक्ति का, मोक्ष का तो उसे प्राप्त करने के लिए जो-जो आवश्यकताएँ हैं उनको ध्यान में लेना पड़ेगा।

मोक्ष प्राप्त करने के लिए पहली आवश्यकता है राग-द्वेष को समाप्त करना। राग-द्वेष लक्ष्य में बाधक बनेंगे। वे रास्ते में बाधाएँ खड़ी करेंगे। मन को एकाग्र नहीं होने देंगे। एक दिशा में गति करने में विघ्न पैदा करेंगे। इसलिए सबसे पहले राग-द्वेष को हटाने का लक्ष्य बनाना है।

प्रश्न होता है कि राग-द्वेष को कैसे हटाएं?

राग-द्वेष को हटाने का एक सूत्र है- 'कोई मेरा नहीं है और मैं किसी का नहीं हूँ।' जहाँ मेरेपन का भाव रहता है, वहाँ पर राग भी पैदा होता है और द्वेष भी। जहाँ जितना लगाव होता है, वहाँ उतना ही द्वेष का भाव बना रहता है। थोड़ी-सी उपेक्षा हुई नहीं कि भीतर द्वेष उत्पन्न हो जाता है। इसलिए एक सूत्र है कि 'मेरा कोई नहीं और मैं किसी का नहीं।' यहाँ पर आकर कभी-कभी हम धोखा खा जाते हैं। नकारात्मक विचारों में चलने वाले कुछ लोगों को इसकी बड़ी पीड़ा होती है कि मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूँ। एक व्यक्ति ज्ञान से बोल रहा है कि मेरा कोई नहीं है और दूसरा पीड़ा से बोल रहा है कि मेरा कोई नहीं है। दोनों के बोलने में, विचारों में बहुत बड़ा अंतर है।

एक दुःखी मन से बोल रहा है कि मेरा कोई नहीं है। मैं निराधार हो गया। मेरा कोई आधार नहीं है। यह दुःख की बात हो गई। ये नेगेटिव बात हो गई। ऐसा सोचने वाले के भीतर पीड़ा है क्योंकि उसकी दृष्टि वैसी बन गई। कोई कितना भी उसका ध्यान रखे पर उसका मन कभी भरेगा नहीं, क्योंकि उसका मन फूटा ठीकरा है। उसमें कभी अहसास ही नहीं होता कि मेरा कोई है। यह एक प्रकार का दृष्टि दोष है।

दूसरी सोच सकारात्मक है। निश्चय में वह जानता है कि मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूँ। वह जानता है कि जितना भी मेरेपन का भाव है, वह केवल व्यावहारिक धरातल पर है। व्यवहार में जीने का एक-दूसरे का सहकार है, किंतु अंततोगत्वा कोई किसी का नहीं है। यह सोच हमारी आध्यात्मिक साधना को विकसित करने वाली है। एक दोहे में कहा गया है-

अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुंब प्रतिपाल।
अंतर्गत न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल।।

एक और बात; ट्रस्टी, ट्रस्ट की सुरक्षा करता है, किंतु वह जानता है कि संपत्ति मेरी नहीं है। जो संपत्ति को अपना मान लेता है वह दुःखी होता है। जब उसको ट्रस्ट से हटाने का नंबर आता है तो उसे लगता है कि मेरा प्राण जा रहा है। सामान्यतः ट्रस्टी का रूप निष्काम भाव होना चाहिए कि ये प्रापर्टी है, यह धरोहर है, मुझे इसकी सुरक्षा करनी है। मैं इसका मालिक नहीं हूँ। इसी प्रकार मुझे जो शरीर मिला है, मैं उसकी सुरक्षा करूँगा। किसलिए उसकी सुरक्षा करूँगा?

इसलिए सुरक्षा करूँगा क्योंकि धर्म आराधना में यह शरीर सहायक है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 23वें अध्ययन में भगवान महावीर ने इस शरीर को नाव की उपमा दी है। नौका की उपमा दी है। जैसे नौका नदी या समुद्र को पार कराती है, वैसे ही संसार सागर को पार कराने में यह शरीर सहायक है। इसका उपयोग लेना है। इसलिए मुझे इसकी सुरक्षा करनी है, दृष्टि स्पष्ट होनी चाहिए। विजन एकदम स्पष्ट होना चाहिए कि इसको मुझे इसलिए सुरक्षित रखना है कि मुझे अपने कार्य को गति देना है। मुझे मंजिल प्राप्त करनी है। मंजिल को प्राप्त करने के लिए इसका उपयोग कर रहा हूँ। इसलिए इसका भरण-पोषण भी मुझे करना है। भरण-पोषण भी अपने उपयोग के लिए कर रहा हूँ। इससे अधिक मेरा कोई लक्ष्य नहीं है।

सम्यक् दृष्टि जीव कुटुम्ब का प्रतिपालक होता है। कुटुम्ब की सारणा, वारणा, धारणा करता है। घर में रहने वाले सभी लोगों का दायित्व लेकर चलता है। उनकी सुख-सुविधा के लिए प्रयत्नशील भी रहता है, फिर भी दिल से वह अपने आपको अलग रखता है कि मेरा कुछ नहीं है, मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूँ। वह केवल ट्रस्टी बनकर रहता है। वह जानता है कि इस प्रापर्टी की रक्षा करना मेरा दायित्व है। वह सुरक्षा तक ही जरूरी समझता है। वह उसमें लिप्त नहीं होता। वह भीतर से अलग रहता है कि मेरा कोई नहीं है। इदं न मम। जब मेरा कोई नहीं है तो कोई रहे या जाए कोई लेना-देना नहीं है।

एक सम्राट सिंहासन पर बैठा हुआ है। वहाँ राजकुमार भी बैठा हुआ है। राजकुमार भयंकर दर्द से पीड़ित है। दर्द से शरीर तड़प रहा है। राजकुमार की सुरक्षा के लिए महारानी बैठी है और राजा भी बैठा हुआ है। सिंहासन पर बैठे राजा को झपकी आ गई। थोड़ा समय बीता तो महारानी ने राजा को झकझोरा कि आप क्या कर रहे हो? आप नींद ले रहे हो। देखो अपने राजकुमार के श्वास की गति अब नहीं रही, नाड़ी भी नहीं चल रही है। सम्राट एकदम से हँसने लगा। महारानी विचार करने लगी कि क्या हो गया राजा को! डिप्रेशन में आ गए क्या! आघात लग गया! क्या हो गया! ये हँस क्यों रहे हैं! एकमात्र राजकुमार/पुत्र के चले जाने पर आदमी व्यथित होता है और ये हँस रहे हैं! महारानी ने पूछा कि आप क्या कर रहे हो? इस हँसी का कारण क्या है?

राजा ने कहा कि रोऊँ तो किसे रोऊँ! किसको रोऊँ! तुमने मुझे उठा

दिया। मैं स्वप्न देख रहा था कि मेरे एक नहीं, सात राजकुमार थे। सात बेटे थे। ऐसा नहीं कि कोई किसी से कम हो या ज्यादा। रूप लावण्य, वर्ण आदि में सब एक से बढ़कर एक थे। सारे आज्ञा आराधक। राजा कहता है कि जैसे ही तुमने मुझे नींद से उठाया वह स्वप्न भंग हो गया और सातों बेटे चले गए। मुझे हँसी इसलिए आ रही है कि रोऊँ तो रोऊँ किसे! सात को रोऊँ या एक को?

आप कह सकते हैं कि वे सातों राजकुमार तो सपने में थे। जिंदा राजकुमार तो एक ही था। यह कथन एक अपेक्षा से सही है, किंतु यथार्थ में यह भी तो एक सपना ही था! खुली आँख से दिखने वाला भी सपने से ज्यादा क्या है। यह खुली आँख का सपना था। कुछ सपने आँखें बंद करने पर आते हैं।

नृप, महारानी से कहता है प्रिय! जिसे मैं अपना राजकुमार कह रहा था, वह कुछ समय के लिए राजकुमार था, सदा के लिए नहीं। यह भूतकाल में राजकुमार नहीं था। इस जन्म के पहले या आने वाले जन्मों में वह राजकुमार बनेगा, ऐसा जरूरी नहीं है। हो सकता है कि पहले मेरा उसके साथ शत्रु, मित्र, पिता, पुत्र या अन्य कोई भी सम्बन्ध रहा हो। यह जरूरी नहीं कि वह राजकुमार ही रहा हो। नींद में देखा जाने वाला सपना थोड़े समय के लिए होता है और जागृत अवस्था में देखा जाने वाला सपना अधिक समय का। अधिक समय का सपना होने से हमने उससे अपना सम्बन्ध जोड़ लिया कि यह मेरा है, मेरा है।

थोड़ी देर के लिए विचार करो कि आप सपने में भारत के प्रधानमंत्री बन गए। आपको सपना आया और एकदम से नींद खुल गई। आप विचार करने लगे कि मैं भारत का प्रधानमंत्री बन गया, किंतु हकीकत में जान रहे हैं कि आप प्रधानमंत्री नहीं हैं तो उससे आपको दुःख होगा? नहीं होगा। जो आज प्रधानमंत्री की सीट पर है उसे किसी कारण से सीट छोड़नी पड़े तो उसे दुःख होगा या नहीं होगा? समझ लीजिए कि उसके विरोध में प्रस्ताव पास हो जाता है, वह बहुमत हासिल नहीं कर सके और उसको प्रधानमंत्री की सीट खाली करनी पड़े तो दुःख होगा या नहीं होगा?

उसको उस समय दुःख होगा क्योंकि उसको प्रधानमंत्री की सीट खाली करनी पड़ रही है। उसको दुःख होगा, पीड़ा होगी। वह अपनी कुर्सी को बचाने का प्रयत्न करेगा। वह प्रयत्न करेगा कि अपनी सीट बचा लूं। आपने सपने में सिंहासन देखा, आपने सपना देखा कि प्रधानमंत्री बन गए और नींद खुल गई तो

उसके बाद आप उसको बचाने का उपाय करोगे क्या?

नहीं करोगे। जागृत अवस्था में हमने जिससे सम्बन्ध जोड़ लिया उससे हटने के लिए दुःख हो रहा है। जैसे सोई अवस्था में सपना देखा, वैसे ही व्यावहारिक जीवन में सोच लो। जब तक जी रहे हैं, जी रहे हैं। जिस दिन आँखें बंद हो गईं, उस दिन कोई नहीं रहेगा। स्पष्ट है कि जो हकीकत में मेरा नहीं था वह मेरा ही कैसे रहेगा और जो मेरा है वह मेरे से हटेगा ही कैसे।

बहुत स्पष्ट बात है कि रिश्ते-नाते केवल थोड़े वर्षों के हैं। इनको हमने सघन बना लिया, इसलिए उनसे हटने से पीड़ा होती है। यदि मुक्ति पानी है तो रिलेशनशिप को हटाना ही होगा। छोड़ना ही होगा। इदं न मम। मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूँ। हो सकता है कि अभी आपको यह बात समझ में नहीं आ रही हो, क्योंकि यह स्वीकार नहीं है। इसको मन से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। कहेंगे कि म.सा. मेरा क्यों नहीं है? मेरा बेटा है, मेरा परिवार है, मेरी पत्नी है, मेरा पोता है, मेरी बहू है। इतने सारे मेरे हैं। ये सारे मेरे पर जान दे रहे हैं।

अनाथी मुनि से संपर्क कर लो। अनाथी मुनि कौन थे? उनके भी माता-पिता, भाई थे, पत्नी थी। सारे थे उनके पर जब उनकी आँखों में भयंकर वेदना, शरीर में भयंकर वेदना हुई, तब वे निराधार थे। एक से बढ़कर एक डॉक्टर आए, किंतु सभी इलाज करने में असमर्थ रहे। पानी की तरह पैसा बहाया गया, किंतु क्या पैसों से बीमारी दूर हो जाएगी? पैसों से बीमारी नहीं हटेगी। जिनके असातावेदनीय कर्म का उदय है उनको कष्ट भोगना पड़ेगा। सोना-चाँदी, धन-वैभव काम नहीं आएगा। आपके हाथ कितने भी लंबे हों, आपकी पहुँच कितनी भी ऊँची हो, किंतु मौत से बचने का आपके पास कोई उपाय नहीं है। न कल था और न आज है। न ही आगे होने वाला है। मौत से बचने के लिए किसी के पास कोई उपाय नहीं है। कोई ऐसा नहीं है जो मौत को हरा सके।

एक कलाकार ने अपनी ही 12 मूर्तियाँ बनाईं। सब एकसमान। किसी में कोई अंतर नहीं। देखने वाला अंतर नहीं कर सकेगा कि ये सही है या नकली है। जैसे मल्लि भगवती की मूर्तियाँ देखकर सभी राजा भ्रमित हो गये थे। एक जैसा रूप, लावण्य देखकर राजा भ्रमित हो गये थे। वैसे ही उसने 12 मूर्तियाँ बनाईं। एकदम एकसमान। यदि कोई अंतर करना चाहे तो बहुत मुश्किल हो जाए। वह भी उन मूर्तियों के साथ बैठ गया। जैसे मूर्तियाँ बैठी थीं, वह उसके

अनुसार बैठ गया। कहते हैं कि जब मौत आई तो चक्कर में पड़ गई कि इनमें असली कौन है और नकली कौन। मौत समझ नहीं पायी कि मैं पकड़ूँ तो किसको पकड़ूँ।

मौत ने कहा कि वाकई कलाकार है। इस कलाकार को पुरस्कार देना पड़ेगा। ऐसे को मारने के बजाय पुरस्कृत करना अच्छा रहेगा। जैसे ही पुरस्कार का नाम आया, सम्मान का नाम आया, सत्कार का नाम आया तो कलाकार में हरकत हो गई।

किसमें हरकत होने लगी?

उस कलाकार में हरकत होने लगी। हरकत चालू हो गई। वह थोड़ी देर तक शांति से बैठा रहा पर बाद में हरकत चालू हो गई। 12 मूर्तियों में हरकत नहीं हुई, किंतु एक में हरकत हुई। आदमी अपनी प्रशंसा के समय अपने बनाव को भूल जाता है। अपने मान-सम्मान में यदि आदमी जमीर को छोड़ देता है तो वहीं मात खा जाता है। ध्यान रखें कि दुनिया में कोई कितनी भी प्रशंसा करे, प्रशंसा से कुछ बढ़ने वाला नहीं है। किसी के प्रशंसा करने से वह प्रशंसनीय नहीं हो जाएगा। उसका जीवन प्रशंसा करने के काबिल है तो कोई प्रशंसा करे या नहीं करे, उसका कुछ घटेगा नहीं और प्रशंसा से कुछ बढ़ने वाला नहीं है। वह मूर्तिकार हरकत में आ गया। उसके हरकत में आते ही मौत ने उसको पकड़ लिया और कहा, बस यही तुम्हारा पुरस्कार है। मुँह से दो शब्द कहे वही तुम्हारा पुरस्कार है, वही सम्मान है। इसलिए मौत से कितना ही बचाव कर लो, बचाव होने वाला नहीं है। अमीर हो या गरीब, वह समान रूप से दोनों को ग्रहण करती है।

इसलिए हमने मोक्ष का लक्ष्य बनाया, हमारा लक्ष्य मोक्ष जाने का है तो फिर हमारा कार्य भी वैसा ही होना चाहिए। अर्जुन की दृष्टि एक थी या भिन्न थी? अर्जुन की दृष्टि एक थी। उसको कुछ भी नहीं दिख रहा था। उसको कोई नहीं दिख रहा था। एकमात्र उसे मयूर पंख की आँख दिखाई दे रही थी, जिसका उसे भेदन करना था। इसके अलावा कुछ नहीं नजर आ रहा था उसको। उसे दो ही चीज नजर आ रही थी। पहली तीर की नोक और दूसरी आँख। बाकी कुछ नहीं। सिद्धि के लिए भी ऐसी तन्मयता आवश्यक है। उसके बिना मुक्ति मिलने वाली नहीं है।

सिद्धि के लिए निशाना साधना होगा। कर्मों का विदारण करना होगा।

कर्मों को दूर हटाना होगा। उसके लिए अध्यवसायों में तीक्ष्णता लानी पड़ेगी। वह तीक्ष्णता आज लाए या कल, लानी पड़ेगी। उसके बिना कर्मों का विदारण होना संभव नहीं है। तीक्ष्णता के लिए पहला सूत्र हृदयंगम करना होगा कि मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूँ। यह हृदयंगम हो जाएगा तो एकाग्रता सधेगी। जब कोई अपना है ही नहीं तो किसी के रहने या नहीं रहने से क्या फर्क पड़ेगा। कोई मेरी चमड़ी खींचे तो खींचे, कोई सिर पर अंगारे रख दे, कानों में कीलें ठोंके तो ठोंके। क्योंकि शरीर मेरा नहीं है और मेरी चेतना कभी मरने वाली नहीं है। कभी जलने वाली नहीं है, खत्म होने वाली नहीं है। मेरी चेतना शाश्वत है। ये गहरे विचार जब आते हैं तब गति मोक्ष की तरफ आगे बढ़ती है। अत: उस दृष्टि को जगाओ कि 'मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूँ।' मुझे किसी के लिए अपने मन को विभक्त करने की जरूरत नहीं है।

कामदेव श्रावक के सामने एक देव भयंकर दैत्य का रूप बनाकर आया। उस दैत्य की लंबी जीभ लपलपा रही थी। हाथी के कान जैसे उसके कान लटक रहे थे। हाथी के नाक की तरह उसकी लंबी नाक लटक रही थी। वह पाँव से धरती को धम-धम धुजाता हुआ आया। वह कामदेव को निष्ठुर वाणी में कहता है कि तुम धर्म को छोड़ दो, नहीं तो मैं तुम्हें मार दूंगा। इसके बावजूद कामदेव का मन विचलित नहीं हुआ। उसने अपने मन को पौषध में लगाए रखा। उसके मन में कोई विचार नहीं आया कि यह मुझे मार देगा।

हमारे सामने ऐसी तो बात नहीं है! पौषध में बैठे हैं और घर से समाचार आ जाये कि घर में कोई बहुत ज्यादा सीरियस है, तो गौतम जी क्या करोगे?

(गौतम जी कहते हैं- मेरी भावना पौषध में लगी रहेगी भगवन्)

आपने जो बोला है उसका पालन करना है गौतम जी। एक दिन मैंने बताया था साहिबलाल जी मारू के विषय में। आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी के पिताश्री थे। उनकी पुत्री का वियोग हुआ तो घर वालों ने समाचार दिया कि ऐसा हो गया। किसी ने आकर कहा कि ऐसा हो गया, किंतु वे पौषध में बने रहे। उन्हें कोई हड़बड़ी नहीं हुई कि अब क्या होगा। होना क्या है। जो होना था वो तो हो गया। जाने वाला चला गया। यदि किसी को चक्कर आया और वो सीरियस है तो मेरे जाने से वह बच जाए, यह जरूरी नहीं है। उसका आयुष्य बल होगा तो मेरे नहीं जाने से भी बच जाएगा और आयुष्य बल नहीं होगा तो मेरे जाने से भी

कुछ नहीं होगा। वह जाने वाला है तो मेरे जाने से भी जाएगा। मैं घर पहुँचू उससे पहले भी जा सकता है, पर ऐसी दृढ़ता रह पाना बहुत कठिन है। हमारा चित्त बहुत जल्दी भंग हो जाता है।

मान लो कि आपके घर में कोई बीमार है और आप पौषध में बैठे हो तो आपका विचार क्या रहेगा? द्वंद्व क्या चलेगा, विकल्प क्या चलेगा? आपका विकल्प शायद यही चलेगा कि कैसे होगा, ठीक होगा या नहीं होगा। यदि कोई दूसरा भाई आ जाए, कोई परिवार का आ जाए तो मन में रहेगा कि मैं इससे पूछ लूं कि कैसा है। पर ऐसे भाव पौषध में नहीं होने चाहिए।

इदं न मम। मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूँ। इस ममत्व का छेदन करना पड़ेगा। छेदन होगा तो राग-द्वेष नहीं पनपेगा। राग-द्वेष को आगे बढ़ने का मौका नहीं मिलेगा। राग-द्वेष को जीतेंगे तो आगे के लिए रास्ता क्लियर हो जाएगा। एकदम साफ हो जाएगा। अन्यथा कहते जरूर हैं कि मेरा लक्ष्य मोक्ष का है, किंतु क्रिया वैसी है?

कैसे हो कल्याण करनी काली है, नहीं होगा भुगतान हुंडी जाली है।

बैंक में पर्याप्त पैसे नहीं हैं और आपने किसी को चेक काट दिया क्योंकि उसको पैसे देना जरूरी है। वह बहुत भय दिखा रहा है, इसलिए आपने चेक काटकर उसको दे दिया। वह चला गया। वह बैंक जाकर चेक को जमा कराता है तो बैंक वाले बोलते हैं कि इतनी राशि इस खाते में जमा नहीं है तो हम आपको पैसे कैसे दे सकते हैं। उस खाते में पैसा नहीं रहेगा तो बैंक वाले उसको पैसे देंगे या वापस लौटा देंगे। वापस लौटा दिया जाएगा।

एक सेठ ने किसी क्षत्रिय से पैसे लिए थे। वह क्षत्रिय उसके घर आकर खड़ा हो गया कि मुझे पैसे दो। उस समय सेठ तंगी में था तो उसको पैसा देना मुश्किल हो गया। अब सेठ को अपनी इज्जत रखनी थी, अन्यथा इज्जत के कांकरे हो जाते। अत: सेठ ने अहमदाबाद के एक जौहरी के नाम से हुंडी काटी और वह हुंडी उस क्षत्रिय को दे दी। हुंडी काटने के साथ उसके दो आँसू हुंडी पर गिर गए थे। क्षत्रिय उस हुंडी को लेकर अहमदाबाद पहुँचा। जाने से पहले उसने सेठ से कहा कि ध्यान रखना, पैसे नहीं मिले तो मैं तुम्हारा सब खेल बिगाड़ दूँगा। उसने अहमदाबाद पहुँचकर सेठ को हुंडी दी। सेठ ने हुंडी देखी तो अपने मुनीम से कहा कि इसका चुकारा कर दिया जाए। मुनीम ने खाता देखा तो उस नाम का

कोई खाता था ही नहीं। कोई लेन-देन नहीं था। ऐसी स्थिति में मुनीम कहता है कि भुगतान कैसे करें। सेठ ने कहा, मेरे नाम से भुगतान कर दो। मुनीम ने सेठ के नाम से भुगतान कर दिया। सेठ ने मुनीम से कहा कि मैंने दो महत्त्वपूर्ण मोती खरीदे हैं समझ लो। इस हुंडी पर गिरी हुई आँसू की दो बूँद यह बता रही है कि वह सेठ कितने कष्ट में है।

कुछ समय के बाद जिस सेठ ने हुंडी काटी थी वह रकम लेकर अहमदाबाद पहुँचा और अपनी रकम चुकाने के लिए आगे बढ़ा तो वह सेठ कहता है कि मेरे यहाँ पर आपके नाम से कोई खाता ही नहीं है। सेठ ने कहा मैंने हुंडी काटी थी। जौहरी कहता है कि आपने सही कहा किंतु मैंने हुंडी के बदले पैसे नहीं दिए। मैंने दो कीमती मोतियों के बदले पैसे दिए इसलिए मैं आपसे ये पैसे नहीं ले सकता। (इस प्रसंग में आगे बताया है कि दोनों सेठों के नाम से एक पोल खड़ी की गई) कहने का आशय है कि सेठ के आँसूओं की साख थी तो जौहरी ने हुंडी स्वीकार की। हम मौत के सामने कितने ही आँसू बहा दें, पर मौत नहीं टलने वाली। कोई सोचे कि मैं रो-रोकर मुक्ति प्राप्त कर लूँगा तो कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी।

कर्म विदारण के लिए अपनी मति, बुद्धि और चित्त को पैना करना पड़ेगा। उन्हें तीक्ष्ण करना पड़ेगा। पैनापन और तीक्ष्णता होगी एकाग्र होने पर। मन इधर-उधर भटकता रहेगा तो तीक्ष्णता नहीं आएगी और हम अपने लक्ष्य को वरने में समर्थ नहीं हो पाएंगे।

बंधुओ! हम क्रियाशील बनें। जो लक्ष्य निर्धारित किया है उसके लिए एक गति हो, एक ही प्रवृत्ति हो। अभी आपके सामने बात आई 25रंगी सामायिक की। अभी नाम आए हैं, थोड़े बाकी हैं, एक धक्का और लगेगा तो वो भी पूरे हो जाएंगे। एक धक्का और लगेगा तो संसार भी छोड़ देंगे। अभी संसार मत छोड़ो। अभी सामायिक के लिए नाम लिखाया है उसे कर लो।

निहाल जी अब खड़े हो रहे हैं। आपने पहले नाम नहीं लिखवाया क्या?

(निहाल जी कहते हैं- नहीं भगवन्! मैंने कहा कि जहाँ भी नाम कम पड़े, वहाँ पर मेरा नाम लिख लेना। नाम पूरे हो गए तो मेरा नहीं लिखा गया।)

(इसी बीच मयंक जी खड़े होते हैं)

मयंक जी ने भी नहीं लिखवाया नाम! अब क्या दीक्षा के लिए खड़े हो!

दूसरी बात आपने सुन ली, 10 तारीख को 'एवन 11' एकासन है। 11 से बढ़कर 1111 हो गए। यह टारगेट मैंने नहीं दिया। सभा वालों ने अपने आप लिया। बात बहुत अच्छी है, किंतु उस लक्ष्य के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। जैसे आपने पहले लक्ष्य बनाया पौषध का, वह लक्ष्य पूरा हुआ या नहीं? पूरा हुआ। घर बैठे हो गया? इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करना पड़ेगा। उसमें जी-जान लगानी पड़ेगी तब मोक्ष प्राप्त होगा अन्यथा कितने ही भवों में गोते खाए हैं, आगे भी खाते रहेंगे। मोक्ष का लक्ष्य है, किंतु गति-प्रवृत्ति उसके अनुसार नहीं बनेगी तो मोक्ष नहीं मिलेगा। इसलिए पहले मोह का छेदन करो कि मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूँ। यह गहरी भावना मन में जन्म ले।

गृहस्थ में रहते हुए व्यक्ति को कर्तव्य का पालन करना एक बात है, किंतु किसी के रहने से, नहीं रहने से दुःखी नहीं होना, उससे भिन्न बात है। परिवार को पालने में उसका यह भाव रहे कि यह मेरा दायित्व है, मुझे मेरा दायित्व पूरा करना है। दायित्व का निर्वाह करना है। इस प्रकार यदि विचार बनता है, भावना बनती है तो सचमुच में लक्ष्य के अनुरूप प्रवृत्ति वाले बन सकते हैं। लक्ष्य को नजदीक करने वाले माने जा सकते हैं। उस स्थिति में मानो मोक्ष सामने दिख रहा है।

लक्ष्य के अनुरूप अपना व्यवहार करने की तत्परता रखेंगे और उस प्रकार से तैयारी करेंगे तो लक्ष्य दूर नहीं रहेगा। फिर मंजिल सामने होगी। उस मंजिल को प्राप्त करने वाले बनेंगे।

अनंतानंत सिद्ध आत्माएँ आपको स्थान देने के लिए तैयार हैं। हालांकि जगह पूरी भरी हुई है। एक सूत रखने के लिए भी जगह नहीं है फिर भी आप जाएंगे तो आपको जगह मिल जाएगी क्योंकि आप प्रसन्न होकर जा रहे हैं। जो संग बनाकर मतलब आसक्ति रखकर जाना चाहे उनको प्रवेश नहीं मिलता। इसलिए सबसे पहले यह सूत्र अपनाएँ कि 'मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूँ।' इस पर विचार करेंगे, अपना लक्ष्य बनाएंगे तो अपने आपको निश्चित रूप से धन्य बना पाएंगे और मनुष्य जीवन को सार्थक बनाएंगे। अंत में इतना ही कहकर विराम देता हूँ। आज का इतना ही।

26 सितंबर, 2021

13

सहिष्णुता सुखदायक

शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे...
सर्व जंतु हितकरणी करुणा, कर्म विदारण तीक्षण रे।

कर्म का विदारण मतलब कर्मों को चूर-चूर करना। उनको हटा देना। उनको नष्ट करना। यानी उनकी निर्जरा हो जाना। निर्जरा के लिए भगवान ने 12 प्रकार बताए। अनशन, उनोदरी आदि 12 प्रकार के तप बताए गए हैं। वे निर्जरा के हेतु हैं। उनसे निर्जरा होती है। 'अनशन' को पहला तप बताया गया है, जिसमें असणं, पाणं, खाइमं और साइमं का त्याग किया जाता है।

साधुओं के लिए अन्य साज-सज्जा की कोई बात नहीं है। शोभा बढ़ाना भी साधुओं का लक्ष्य नहीं होता। असणं, पाणं, खाइमं, साइमं को त्याग रूपी अनशन तप बताया गया है। यह उनके आत्मा की साज-सज्जा है। श्रावकों के लिए पौषध की बात कही गई है। पौषध में शृंगार का त्याग होता है, आभूषण का त्याग होता है।

इसका मतलब क्या है?

इसका मतलब है कि हम बाहरी आकर्षणों से हटें। उनसे बचें। बाहरी दिखावे से बचें। यदि मैं स्नान नहीं करूँगा तो ठीक नहीं लगूँगा, बाल वगैरह नहीं सँवारूंगा तो ठीक नहीं लगूंगा, आभूषण होगा तो मैं ठीक लगूंगी, ये वृत्तियाँ बाहरी दिशा की ओर ले जाने वाली हैं। बाहर की शोभा उसके लिए महत्त्व रखती है, जो शरीर को महत्त्व देता है। इससे विपरीत जो आत्मा का पोषण करना चाहता है, वह बाहरी वातावरण से अपने आप को मोड़ता है। उससे दो लाभ एक साथ हो जाते हैं। पहला लाभ आत्मा का पुष्ट होना, दूसरा लाभ उन प्राणियों को जीवनदान, जिनका हनन प्रसाधन सामग्री के निर्माण में होता है। एक-एक

प्रसाधन सामग्री के तैयार होने में न जाने कितने जीवों की घात होती है। उन जीवों का बचाव होता है। आत्मा के पुष्ट होने से कर्म विदारण की प्रक्रिया तीव्र बन जाती है। कर्म निर्जरा का लक्ष्य सार्थक हो जाता है।

तीसरी बात है, उदासीनता। उदासीनता का तात्पर्य हानादान रहित परिणामी अवस्था प्राप्त होता। अर्थात् लाभ-हानि में एकसमान रहना। उसको कहते हैं उदासीनता यानी न हर्ष है, न गम है। मेरे को कोई पीड़ा दे रहा है तो मैं दु:खी नहीं हूँ। मैं स्पष्ट जान रहा हूँ कि किसी के कुछ करने से मेरा कुछ भी नहीं जा रहा है। कोई मेरी प्रशंसा कर रहा है तो उससे मैं पुलकित नहीं होता। दूसरे शब्दों में कहें तो समभाव रखना। समान दृष्टि होना। निंदा और प्रशंसा में भी कहीं-न-कहीं बाहरी दृष्टि कारगर होती है। बाहरी दृष्टि काम करने वाली होती है कि मेरी निंदा न हो जाए। मेरी निंदा क्यों हो रही है। अंतर्दृष्टि वाला सोचता है- मैं निंदा से क्यों दु:खी होऊँ। मैं सच्चा हूँ तो मुझे निंदा से चिंता नहीं होनी चाहिए। उससे दु:ख नहीं होना चाहिए। मैं गलत हूँ और कोई मेरी प्रशंसा भी करे तो उससे मुझे कोई लेना-देना नहीं होना चाहिए। अपनी दृष्टि बहुत स्पष्ट रहनी चाहिए कि कोई निंदा करे या प्रशंसा, उससे मेरा कुछ भी नहीं जा रहा है और न मेरे में कोई वृद्धि हो रही है। इन दोनों स्थितियों में समान भाव रहने को कहते हैं उदासीनता। कोई निंदा करे तो भी उदासीन हैं। प्रतिकार नहीं करे, कोई मेरी प्रशंसा करे तो भी उदासीन रहना, प्रफुल्लित नहीं होना।

सामान्यत: व्यक्ति अपनी निंदा नहीं सह पाता। उससे उसको दु:ख होता है। वह उससे प्रताड़ित होता है, क्योंकि उसमें निंदा को सहन करने की क्षमता नहीं है। परिणामस्वरूप वह मन में दु:खी होता है कि मेरी निंदा हो रही है। मेरी बेइज्जती हो रही है। उसके मन में ऐसी कल्पना होती है कि जब मैं बाजार में निकलूँगा तो लोग मुझे सिर ऊँचा नहीं करने देंगे। ऐसी कल्पना उसके मन में समा जाती है, किंतु जब व्यक्ति अपने आप में निखालिस है तो उसे कोई भय नहीं होगा।

सेठ सुदर्शन का वृत्तांत हमने बहुत बार सुना है। अभया महारानी कुटिलता से सेठ सुदर्शन को अपने महल में ले आती है। सेठ सुदर्शन पौषध में है। पूरा नगर महोत्सव मनाने के लिए नगर से बाहर गया हुआ है। अभया महारानी अपनी बीमारी का स्वांग रचकर अपने महल में रुकी हुई है। सेठ सुदर्शन

पौषध व्रत स्वीकार करके पौषधशाला में रह रहा है। उसने सम्राट से अनुमति ले ली थी कि आज पक्खी आदि पर्व है, मुझे पौषध करना है। जब वह राजमहल में लाया गया तब अभया महारानी अपना जाल बिछाने लगी। वह येन-केन-प्रकारेण उसको अपने वश में करना चाह रही थी। सेठ सुदर्शन विचार करता है कि यह मेरे पौषध व्रत में एक प्रकार का उपसर्ग है। मेरे जीवन में उपसर्ग का रूप है। मुझे इसमें विचलित नहीं होना है। उसने जवाब दिया कि माता तुम क्या बोल रही हो! राजरानी माता के समान होती है। उससे अभया का रूप उग्र हुआ और उसने कहा कि खबरदार! यदि तुमने ऐसा कहा तो... उसने कहा कि यदि तुमने मेरी बात को स्वीकार नहीं किया तो बेमौत मारा जाएगा। देख लेना, दुनिया में तुम्हारी बेइज्जती होगी।

सेठ सुदर्शन मौन धारण करके बैठ गया। वह अपने आप में लीन हो गया। महारानी ने राजा बनाने का लोभ भी दिया, पर सेठ मौन धारण किए रहा। रानी ने त्रिया चरित्र रचा। उसने अपने कपड़े फाड़े, शरीर पर नाखून के निशान किए और हल्ला मचाया। उसने कहा कि ये देखने में धर्मात्मा लग रहा है, ऊपर से धर्मात्मा का ढोंग कर रहा है किंतु ये मेरा शील हरण करने के लिए तत्पर हो रहा था।

अभया महारानी के ऐसा कहने के बावजूद सेठ सुदर्शन के चेहरे पर कोई बदलाव नहीं आया। उसे कोई भय नहीं। उसे ऐसा कोई विचार नहीं आया कि अब क्या होगा! धर्म की बदनामी हो जाएगी। वह जैसा पहले था वैसा ही अभी है। महारानी का हल्ला सुन आरक्षकों ने उसे शिकंजे में कस दिया।

सेठ सुदर्शन को राजा के सामने प्रस्तुत किया गया। सम्राट ने उससे कहा कि तुम्हारे पर जो आरोप लगाया जा रहा है उसके बदले में तुम क्या कहना चाहते हो? न्यायप्रणाली का कार्य है दोनों पक्षों की बातों को सुनना फिर निर्णय करना। रिजल्ट देना। राजा ने कहा कि तुम अपनी बात कहो। राजा के पूछने पर भी सुदर्शन कुछ नहीं बोला। वह मौन ही रहा।

सुदर्शन ने जवाब क्यों नहीं दिया? बताओं क्यों नहीं दिया?

आप नहीं बोलेंगे, मैं ही बोलता हूँ। सुनिए, श्रावक के पहले व्रत में अपराधी को दंडित करने का आगार है। वह अपने अपराधी को दंडित कर सकता है, किंतु पौषध में अपराधी को दंडित करने का विधान नहीं है। सुदर्शन

पौषध में था और किसी को शत्रु समझना, किसी के विपरीत बयान देना पौषध के अंतर्गत नहीं आता। दूसरा प्रश्न या जिज्ञासा यह भी हो सकती है कि पौषध पाल करके, बयान दे देता, किंतु वह जान रहा था कि मेरे बयान का परिणाम क्या होगा। वह जानता था कि मेरे बयान से अभया महारानी का जीवन संकट में होगा, उस पर संकट के बादल मंडराने लगेंगे। उसकी बदनामी होगी, इसलिए वह खामोश रहा।

यह कहानी बहुत बार आपने सुनी हुई है। सम्राट बार-बार पूछता है पर सेठ सुदर्शन कोई जवाब नहीं देता है तो नृप को एकतरफा निर्णय लेना पड़ता है। उस समय के रीति-रिवाज, कायदे-कानून के अनुसार सेठ सुदर्शन को सूली की सजा दी गयी। सूली की सजा का तात्पर्य है- एक लंबे खंभे पर लगी कील पर अपराधी के गुदा द्वार को टिकाकर छोड़ देना।

फाँसी की सजा गले पर फँदा कसकर दी जाती है। वर्तमान कानून के अनुसार जब तक प्राण न निकल जाए, तब तक फँदा कसकर रखना जरूरी है। फाँसी की सजा हो या सूली की, दोनों में मरण तय है, किंतु सूली की सजा बड़ी भयंकर है। फाँसी का फंदा गले में डाला जाता है तो उस पर अपराधी झूल जाता है और मर जाता है। उसमें उतनी वेदना नहीं होती, जितनी सूली पर। सूली पर गुदा भाग को टिकाने से कील शरीर में घुसती जाती है, जिससे शरीर की आँतें फट जाती हैं। उसमें भयंकर वेदना होती है, किंतु सुदर्शन सेठ को जब सूली की सजा सुनाई गई तो भी उसमें कोई बदलाव नहीं आया। सजा देने के लिए गधे पर बैठाकर ले जाया जा रहा था, तब भी उसके चेहरे पर चिंता की कोई रेखा नहीं थी, भय की रेखा नहीं थी। अपितु शांत-प्रशांत मुद्रा थी। बहुत कठिन बात है ऐसे समय में भी मन में किसी प्रकार का आक्रोश नहीं होना। सेठ की कोई गलती नहीं थी। उस पर गलत आरोप लग रहा है। चरित्र हनन का आरोप लग रहा है, किंतु उससे भी मन में शांति है। उसके मन में कोई अशांति नहीं। मन में कोई हलचल नहीं।

कैसे-कैसे हमारे श्रावक हो गए, साधु हो गए! जब उनका इतिहास पढ़ते हैं तो विचार होता है कि हम कहाँ खड़े हैं। उनकी जिंदगी हमें दर्पण दिखाती है कि देखो, तुम कहाँ खड़े हो। तुम भी साधु हो, श्रावक हो, तुम्हारा कर्तव्य क्या है? तुम्हारी क्या विचारधारा होनी चाहिए? तुम्हारा मनोबल कितना सुदृढ़ होना

चाहिए? धर्म के रंग में तुम्हारा जीवन कितना रंगा होना चाहिए? केवल ऊपरी क्रिया कर मन में संतोष नहीं करना कि मैंने सामायिक, पौषध, उपवास, बेला, तेला कर लिया। मैंने अमुक-अमुक तपस्या कर ली।

शास्त्रकार कहते हैं कि यदि समभाव विकसित नहीं हुआ, इंद्रिय निग्रह में तपस्या सहयोगी नहीं बनी तो तपस्या सार्थक नहीं होगी। चाहे सामायिक, उपवास, बेला, तेला कुछ भी हो, सभी धरे के धरे रह जाएंगे। जो परिणाम, जो लाभ आत्मा को मिलना चाहिए, वह नहीं मिलेगा। वह लाभ बिना अन्तर्मुखी बने संभव नहीं है। जब तक हमारी दृष्टि आत्मा पर केंद्रित नहीं होगी, तब तक सारी क्रियाएँ निष्फल होती चली जाएंगी। हो सकता है कि कुछ पुण्य का उपार्जन कर लें और आने वाले जन्मों में सुख-सुविधाएँ प्राप्त हो जाएं किंतु ध्यान रहे कि सुख-सुविधाएँ जीवन का लक्ष्य नहीं हैं। सुख-सुविधा का लक्ष्य वापस शरीर की ओर ले जाने वाला होगा। जन्म-मरण की ओर ले जाने वाला होगा। सुख-सुविधा इंद्रियों को चाहिए, मन को चाहिए, शरीर को चाहिए। इसलिए वह सोचता है कि मुझे पुण्य होगा तो आने वाले जन्मों में मुझे सारी सुख-सुविधाएँ, अनुकूलताएँ प्राप्त होंगी। सुख-सुविधा के सारे साधन उपलब्ध होंगे। कोई पीड़ा नहीं होगी। उस प्राप्त सुख-सुविधा से मैं अपना जीवन यापन करूँगा।

वह सुख-सुविधा कितने जन्मों तक चलेगी? एक, दो, तीन, चार कितने जन्मों तक चलेगी?

एक दिन यदि विपरीत हो गया तो पासा पलट जाएगा। सारा सुख, दुःख में परिवर्तित हो जाएगा। तब सिर्फ और सिर्फ रोना रह जाएगा कि हे भगवान! मेरे साथ क्या हो रहा है? हे भगवान! तूने सारे दुःख मुझ पर ही क्यों डाले?

ऐसा सोचने से पहले यह देखो कि मेरे से ज्यादा दुःखी जीवन लोग जी रहे हैं या नहीं! आज हम यहाँ बैठे हैं। हम कुछ-न-कुछ दुःख का वेदन कर रहे हैं, किंतु हमें देखना चाहिए कि मेरे से ज्यादा कष्ट में दूसरे लोग जी रहे हैं या नहीं? जब उनके कष्टों को देखते हैं तो लगता है कि उनसे हम बहुत अच्छे हैं, सेफ हैं। लाख गुना अच्छे हैं और जब अपने से ऊपर वालों को देखते हैं, सुख-सुविधा वालों को देखते हैं तो पीड़ा होती है कि ये लोग इतनी सुख-सुविधाओं में जी रहे हैं, तो मैं क्यों नहीं जी पा रहा हूँ? मैं इनके जैसी सुख-सुविधा कैसे

प्राप्त करूँ?

जब बैंक में पैसे जमा नहीं हैं तो कैसे मिलेंगे? कितनी बार ही चक्कर काट लो बैंक वाला कहेगा कि आपके खाते में पैसे जमा नहीं हैं तो मैं कहाँ से दे सकता हूँ। वैसे ही पुण्य की बैंक में अगर हमारा पुण्य नहीं है तो सुख-सुविधा कैसे प्राप्त होगी? अतः हमें सुख-सुविधा की दिशा में अपनी दृष्टि नहीं ले जानी चाहिए।

दुक्कराइं करेत्ता णं, दूसहाइं सहेत्तु य।

भगवान महावीर कहते हैं कि दुष्कर कार्य करो। कठिन कार्य करो। कठिनाइयों को सहन करो। कठिनाइयों से गुजरती हुई बहुत-सी आत्माएँ अपने सारे कर्मों का क्षय करके मोक्ष में चली जाती हैं। जिनके कर्म बाकी रहते हैं वे देवलोक में जाती हैं। वे देव बन जाती हैं। जो कर्मों का क्षय कर देता है, वह सिद्ध होता है, मुक्त होता है। जो देव भव में जाता है, वह पुनः मनुष्य भव प्राप्त करता है। मनुष्य जीवन में वापस प्रयत्न रहता है कि वह साधु जीवन स्वीकार करे। वह साधु जीवन स्वीकार करता है। दुष्कर तप आदि का सेवन करता है। हमने अंतगड सूत्र के माध्यम से सुना कि काली आदि रानियों ने तप किया। अपने शरीर को सुखा डाला। धन्ना अणगार ने तप किया। उनका शरीर जर्जर हो गया, किंतु मनोबल जर्जरित नहीं हुआ। उनका आत्मबल तेजस्वी बना, तीक्ष्ण बन गया और वह तीक्ष्णता कर्म विदारण के लिए उनकी सहयोगी बन गई। तप का उद्देश्य केवल शरीर को तपाना नहीं है, बल्कि शरीर के माध्यम से वह ताप आत्मा तक पहुँचाना है। श्रीमद् आचारांग सूत्र में एक सूत्र आया है-

धुणे कम्म सरीरगं...

हे साधक! तुम केवल औदारिक शरीर को क्यों पतला बना रहो हो? औदारिक शरीर को पतला बनाने से तुम्हारा कल्याण होने वाला नहीं है। भले तुम शरीर को कितना ही पतला बना लो, किंतु जब तक कार्मण शरीर नष्ट नहीं होगा, तब तक तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।

शरीर को धुनना है तो कार्मण शरीर को धुनो। उसको तूने धुन लिया तो जीत जाएगा।

आपने एक कहानी सुनी होगी। एक शिष्य गुरु महाराज के पास आता है और गुरुदेव से कहता है कि भगवन् मुझे संलेखना करवा दीजिए। मैं संथारा

करना चाहता हूँ। गुरु महाराज ने कहा कि पहले कृश करो। पतला करो। शिष्य ने तपस्या चालू कर दी। वह एक महीने के बाद वापस गुरु महाराज के पास आया और कहा कि मुझे संलेखना करवा दें। भगवन् ने कहा कि और कृश करो। पतला करो। उसने फिर तपस्या चालू कर दी। मासखमण किया। वह निरन्तर तपस्या कर रहा है। तीसरी बार फिर गुरु महाराज के पास गया और कहा कि गुरुदेव मुझे संथारा करवा दो तो गुरु महाराज ने कहा कि कृश करो, पतला करो।

गुरुदेव के बार-बार ऐसा कहने से उसको गुस्सा आ गया कि जब भी मैं आपके पास आता हूँ तो आप वही शब्द कि कृश करो, पतला करो कह रहे हो। और कितना पतला करूँ। ऐसा कहते हुए उसने अपनी छोटी अँगुली को खींचकर मोड़ा। वह अँगुली टूट गई। गुरु महाराज ने कहा कि वत्स, जिसको पतला करना चाहिए था उसको पतला किया नहीं, उसको दुबला किया नहीं। वह तो अभी भी तरोताजा है। तुमने शरीर को कितना भी पतला कर दिया, किंतु अपने भीतर रहे हुए क्रोध को, भीतर रहे हुए अहंकार को पतला नहीं किया। वह तो वैसा का वैसा ही बना है। यह बहुत बड़ी कमजोरी है। थोड़ा भी हमारा मन विपरीत हुआ नहीं कि क्रोध भड़क उठता है।

हम अपने से विपरीत बातों को सहन नहीं कर पाते हैं। उसको सुन नहीं पाते हैं। हम प्रशंसा सुनने के लिए आतुर रहते हैं। प्रशंसा सुनने के लिए हमारे कान आतुर रहते हैं। हमारे मन में रहता है कि थोड़ी और प्रशंसा करे। हमारा मन चाहता है थोड़ा और बोला जाये। कितना भी बोल दिया जाये फिर भी मन में रहता है कि थोड़ा और बोला जाये अथवा और अच्छे से बोला गया होता। मन में चाह होती है अपनी प्रशंसा सुनने की, किंतु कोई विरोध करे, विपरीत बोले, निंदा करे, बदनामी करे या कोई गलत शब्द कहे तो उसको सहन करने के लिए तैयार नहीं होते, बल्कि चेहरे की रंगत बदलने लगती है। चेहरे का रंग फीका पड़ जाता है।

धन्य है सेठ सुदर्शन, जिसके चेहरे की रंगत विकट स्थिति में भी नहीं बदली। सूली पर चढ़ाने के अनुसार उसके शरीर पर राख पोती गई। कालिख पोती गई। जो भी तैयारियाँ की जाती हैं, की गईं। जब सेठ सुदर्शन को ले जा रहे थे तब उसकी पत्नी से लोगों ने कहा कि अरे देखो, तुम्हारा पति सेठ सुदर्शन जा रहा है। घर के सामने से जा रहा है, उसके अंतिम दर्शन तो कर लो। वह भी

धर्मात्मा थी। उसे पूरा विश्वास है कि मेरे पति का जीवन कलुषित नहीं हो सकता। उनके चारित्र पर कालिख पोती गई है, उस अवस्था में मैं दर्शन नहीं करूंगी। उसने दर्शन नहीं किए। सेठ सुदर्शन को सूली के स्थान पर ले जाकर कहा गया कि अपने इष्ट का स्मरण कर लो। सेठ सुदर्शन के जीवन में ही जब इष्ट रमा हुआ है तो किसका स्मरण करना? इष्ट को कभी भूलने की बात नहीं होनी चाहिए। सदा अखंडित ध्यान है। जहाँ निरंतर अखंडित ध्यान की धारा बह रही है, वहाँ क्या स्मरण करे। फिर भी सेठ सुदर्शन ने पंच परमेष्ठि का ध्यान किया। तत्पश्चात् उसे सूली पर चढ़ाया जाने लगा।

सूली का सिंहासन हो गया शीतल हो गयी ज्वाला।

आवाज की कमी है। मेरा तो गला बैठा हुआ है। आप सबका गला तो बैठा हुआ नहीं है! वीरता की आवाज होनी चाहिए। जोश-भरी आवाज होनी चाहिए, जिसमें अभी बहुत कमी है। सूली का सिंहासन होने की बात हो रही है। धर्म की प्रभावना हुई, चमत्कार हुआ। जो घटना घटी उसको हम चमत्कार कहते हैं।

देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।

जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसके साथ ऐसी घटनाएँ अपने आप घट जाती है। उसके मन में यह नहीं आया कि मेरा इष्ट कोई चमत्कार कर दे। ऐसी ओछी हरकतें धर्मनिष्ठ में नहीं होतीं। जिसके जीवन में सत्य रचा-पचा है, उसके जीवन में ऐसी आकांक्षा कभी नहीं होती। ऐसी आकांक्षाएँ आध्यात्मिक जीवन को खोखला बनाने वाली होती हैं। जैसे ही उसको सूली पर चढ़ाया तो क्या हो गया?

सूली का सिंहासन हो गया शीतल हो गयी ज्वाला।

मासखमण के पच्चक्खाण होते ही गौतम जी खड़े होकर बोलते हैं कि सब अनुमोदना करो। दूसरी तरफ एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति के सूली पर चढ़ने से बचने का प्रसंग सुनते हैं तो भी अहोभाव नहीं होता है। ठीक से आवाज ही नहीं निकल रही है। आगे से कुछ आवाज आई। पीछे से तो आवाज आती लग ही नहीं रही। हो सकता है कि धीरे बोले हों। बहनों की तरफ से कुछ-कुछ आवाजें आईं। ऐसे प्रसंग पर दिल खोलकर अंतहृदय से अनुमोदना होनी चाहिए। अपने भीतर ऐसा भाव लायें कि ऐसा प्रसंग कभी आ जाये तो हम भी धर्म पर डटे रहें।

धर्म पर डट जाना है वीरों का काम...

मैं वीर हूँ। मैं वीर की संतान हूँ। मुझे वीर माता-पिता ने जन्म दिया है। ऐसे प्रसंग पर हीनता नहीं आवे। हीन भाव नहीं आवे। ऐसा भाव नहीं आये कि मेरा क्या होगा, मेरे परिवार का क्या होगा। ये भी मन में कल्पना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि किसी का कुछ भी होने वाला नहीं है। जो होगा अपने पुरुषार्थ से होगा। सेठ सुदर्शन के लिए सूली का सिंहासन हो गया। आप सोचना ही मत कि यथाप्रसंग मेरे भी सूली का सिंहासन हो जाए और न इसका भरोसा ही करना कि मेरे भी सूली का सिंहासन हो जाएगा, क्योंकि हमारे मन के ज्ञाता हम स्वयं ही हैं। हमारे मन में कितनी तन्मयता है, इसे हम भी जान रहे हैं। अत: इसका बिल्कुल भी भरोसा मत करना। देखा-देखी के सब काम सम्यक् परिणामदायक नहीं हुआ करते। कहा भी गया है-

'देखा-देखी साधे जोग, छीजे काया बधे रोग'

देखा-देखी करने से किसी को वैसा परिणाम मिलने वाला नहीं है, जैसा सेठ सुदर्शन को मिला। उसका दिल कितना मजबूत था, उसकी थाह पाना कठिन है। ऐसा कह सकते हैं कि उसका हृदय वज्र से भी ज्यादा मजबूत था, जिससे कोई भी स्थिति उसके दिल को हिला नहीं पाई। उसके विचारों को विचलित नहीं कर पाई। परिणाम यह आया कि सूली का सिंहासन बन गया। जैसे ही सूली का सिंहासन बना, सारे नगर में खबर फैल गई।

क्या बोलते है उसको? आजकल मोबाइल में क्या चलता है? वाट्सएप। वाट्सएप के माध्यम से खबर कहाँ तक चली जाती है?

भारत या भारत से बाहर! इसकी खबर पूरे विश्व में चली जाती है, किंतु इसमें अग्निकायिक बहुत-से जीवों की हिंसा होती है। अनेक जीवों की घात होती है, पर लोक चलन चल पड़ा, जो चल पड़ा। ऐसे चलन देखा-देखी चल पड़ते हैं। तीर्थंकर देवों का मार्ग करुणा का है।

सर्व जन्तु हितकरणी करुणा, कर्म विदारण तीक्षण रे...

सर्व प्राणियों के प्रति करुणा भाव हो। कर्म विदारणार्थ अध्यवसायों में तीक्ष्णता हो। नमिराज ऋषि से पहले हम सेठ सुदर्शन की बात को पूर्ण कर लें। जैसे ही सूली का सिंहासन हुआ उसकी खबर चारों तरफ फैल गई। सम्राट दौड़ा और कहने लगा कि मेरे से बहुत बड़ा अपराध हो गया। मेरा मन नहीं मान रहा है

कि सेठ सुदर्शन अपराधी है, किंतु न्याय प्रणाली को बचाये रखने के लिए मुझे दंड देना पड़ा। राजा क्षमायाचना करता है। गाँव के लोग भी दौड़े-दौड़े आये। दृश्य देखकर सारे लोग आह्लादित हो रहे थे। धर्म की जयकार कर रहे थे। बिना धर्म के जय नहीं होती।

लोगों में धर्म पर विश्वास बढ़ा या घटा?

लोगों में धर्म के प्रति विश्वास बढ़ा, किंतु सेठ सुदर्शन जैसा पहले था, वैसा ही अभी भी है। उसमें कोई अंतर नहीं आया। ऐसा नहीं हुआ कि फूलकर कपड़ा फट जाये। हम सोचें कि वह कितना गंभीर था। एक दिन मैंने लवण समुद्र और क्षीर समुद्र के बारे में कहा था। लवण समुद्र में गहराई है, पर वह छलकता है, किंतु क्षीर समुद्र, स्वभूरमण समुद्र कभी छलकता नहीं है। सेठ सुदर्शन में भी कोई छलकाव नहीं आया। विचार करें कि कितनी गहरी साधना थी उनकी, कितनी गहन साधना थी उनकी। ऐसा मत सोचना कि गहरी साधना संत ही कर सकते हैं। सेठ सुदर्शन श्रावक था। श्रावक भी इतना गंभीर हो सकता है। हो सकता है या नहीं? यदि श्रावक भी इतना गंभीर होगा तो उसमें दृढ़ता भी आएगी और वह मोक्ष के नजदीक भी जाएगा अन्यथा दूर-दूर तक हमारा रास्ता नहीं बन पाएगा मोक्ष जाने का।

हम कहते जरूर हैं कि मोक्ष जाने का लक्ष्य है, किंतु जब कोई कठिनाई आ जाये तो भागने की कोशिश करते हैं। उस समय बोलेंगे, भागो और बचाओ अपनी जान, किंतु जान बचाने से कोई मतलब नहीं है। धर्म बचाओ। जान बचे या नहीं बचे, धर्म बचना चाहिए। सत्य धर्म नहीं जाना चाहिए। अब चलते हैं नमिराज की तरफ। नमिराज अब दो-दो राज्यों का राजा बन गया।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

एक रात्रि में नमि की नींद थोड़ी जल्दी खुल गई। उनका शरीर स्फूर्ति वाला है। ऐसा नहीं कि वापस सोने की इच्छा हो रही हो। वे पूरी ताजगी के साथ उठ बैठे और सोचने लगे अपने जीवन के बारे में कि मेरा जीवन कैसा रहा है। मेरी माता को जन्म देते ही पीड़ा हुई। मैं माता के गर्भ में था तो पिता का देहावसान हो गया। उनका मर्डर हो गया। मैंने कितनी कठिनाइयों में जन्म पाया। जन्म पाने के बाद पद्मरथ राजा ने मेरा लालन-पालन किया, जिनका मुझसे कोई लेना-देना नहीं था, पर वे मेरे पालक बने। वे मेरे माता-पिता नहीं थे, किंतु कभी उन्होंने यह

अहसास नहीं होने दिया कि मैं उनकी संतान नहीं हूँ। इतना प्यार, इतना दुलार। हर तरह से मेरा ध्यान रखा।

जब मैं बाल भाव से मुक्त हुआ तो मुझे कलाचार्य के पास भेजा गया। पूर्व भव की पुण्यवानी होगी कि थोड़े समय में मैं सर्व कलाओं में पारंगत हो गया। गुरु जी ने मुझे राजमहल लौटाया। पालक पिताश्री ने कार्यक्रम रखा मेरी परीक्षा का। मेरी परीक्षा हुई। हर तरह से मेरी परीक्षा ली गई कि मैंने कैसे अध्ययन किया है। सारी परीक्षाओं में मैं उत्तीर्ण हुआ। बड़ा हर्ष हुआ और बधाइयाँ बाँटी जाने लगीं। बचपन में मैंने सब कुछ पाया। कभी भी मुझे ऐसा अहसास नहीं हुआ कि मैं अनाथ हूँ। यदि सुव्रत आर्या (माताजी) ने पर्दा नहीं हटाया होता तो मैं कभी नहीं जान पाता कि मेरे असली माता-पिता कौन थे और पद्मरथ राजा मेरे पालक थे। आज जब मैं स्मरण कर रहा हूँ तो लगता है कि उनके मन में भी मेरे प्रति आह्लाद भाव था। कहीं-न-कहीं उसका श्रेय पुण्य को जाता है। मेरी पुण्यवानी बड़ी जबर है, इसलिए मुझे ये सारी सुख-सुविधाएँ मिलीं।

जब मैं यौवन में आया और मेरा विवाह रचाया गया तो मित्रों ने खूब बधाइयाँ दीं। मित्र राजाओं ने खूब सम्मान किया। अपनी राजकुमारियों को मुझे सौंपा और मैं एक बड़ा राजा बन गया। अब मैं दो राज्यों का संचालन कर रहा हूँ। यह भी एक पुण्य का योग है। कहाँ मैं एक हाथी के लिए युद्ध कर रहा था और कहाँ दो राज्यों का संचालन करने का अवसर मिला। उसकी विचार सृष्टि थोड़ी आगे बढ़ी। वह सोचने लगा कि राजा का मुख्य कर्तव्य क्या होता है, उसका भंडार ही केवल भरा नहीं रहना चाहिए। सारे अधिकारी भी नेक होने चाहिए। जनता खुशहाल रहनी चाहिए। मेरे राज्य में धन से भंडार भरे हुए हैं। किसी से जबरन उगाही नहीं करनी पड़ती।

इस प्रकार नमिराज विचार करते हुए अपने पुण्य प्रभाव को धन्य-धन्य मानते हुए मग्न हो रहे हैं। आगे क्या स्थिति बनती है, क्या प्रसंग बनता है यह अपन समय के साथ विचार करेंगे।

सभी तपस्वी तपस्या की ओर आगे बढ़ रहे हैं। सभी भाई-बहनें भी आगे बढ़ रहे हैं। हम भी इनकी तरह आगे बढ़ेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर विराम।

27 सितंबर, 2021

14

जागो, जगा लो ज्ञान चेतना

शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे...

करुणा का एक नया रूप बताया गया है अभयदान। अभयदान को दो प्रकार से व्याख्यायित किया जाता है। किसी जीव का हनन हो रहा तो उसे बचाना अभयदान है। उसे घात से बचाना अभयदान है। यह अभयदान परसापेक्ष है। स्वसापेक्ष का वर्णन, उसकी व्याख्या बड़ी मार्मिक हैं। यथा– 'अभयदान ते मलक्षय करुणा' अर्थात् आत्मा पर रहे हुए कल्मष को हटाना, आत्मा पर करुणा है। आत्मा की रक्षा है। इससे आत्मा अभयता को प्राप्त होती है। भय का कारण प्रमाद है। प्रमादी को भय होता है। अप्रमत्तावस्था निर्भय होती है। अप्रमत्तावस्था से वीतरागता तक की यात्रा अभय की यात्रा है। अत: स्वसापेक्ष अभयदान की दिशा में हमारा लक्ष्य बने, यह उत्तम है।

एक दृष्टि से देखें तो भय मन की एक तरंग है जो विचारों के आधार पर बन जाती है। यदि हम निरंतर प्रयत्न करें, अभ्यास करें तो भयमुक्त हो सकते हैं। मेकअप करके आने वाले को यह भय रहता है कि कहीं पसीना न आ जाए। यदि पसीना आ गया तो मेकअप बिगड़ जाएगा और असली चेहरा प्रकट हो जाएगा। हम भी मेकअप किए रहते हैं तो असली चेहरे को प्रकट होने देना नहीं चाहते। उस समय चिंता रहती है कि हमारा ऊपरी चेहरा सुंदर बना रहे। भीतर का चेहरा चाहे कितना ही दूषित क्यों न हो, परंतु ऊपरी चेहरा अच्छा दिखाना चाहते हैं। यह भाव भय पैदा करता है। जब तक भीतर दिखावा रहेगा, तब तक भय बना रहेगा।

भीतर और बाहर एक रूप नहीं होगा तो भय बना रहेगा। डर बना रहेगा कि मेरा असली चेहरा लोगों के सामने न आ जाए, किंतु जब साधना की ऊँचाई

पर चलते हैं, उस दिशा में बढ़ते हैं तो यह भान हो जाता है कि मैं हूँ जो हूँ। किसी के कहने से, किसी के बताने से मैं अच्छा नहीं बनूंगा। उससे उसका भय दूर होता जाता है। वह असली जीवन जीता है। उससे वह जैसा भीतर होता है, वैसा ही बाहर दिखता है। वह अपने आपको प्रकट करने में संकोच नहीं करता। उसको भय नहीं होता कि बाहर मेरा रूप प्रकट हो जाएगा।

इस तरह की दृढ़ता तब आएगी, जब आत्मबोध हो जाएगा। बिना आत्मबोध के दृढ़ता कठिन है। बहुत कठिन है। कहीं-न-कहीं हमारे मन में कुछ-न-कुछ भय बना रहता है। वह भय और चिंता हमारे असली रूप को प्रकट नहीं होने देती।

शीतलनाथ भगवान ने स्वयं को शीतल किया अर्थात् अपने आपको भय से मुक्त किया। चिंता से मुक्त किया। उनके विचारों में गरमी नहीं रही। गरमी, भय की वजह से होती है। चिंता के कारण से होती है। चिंता का ताप संताप देने वाला होता है। चिंता का ताप विचारों को गर्म बना देता है। उससे भय पैदा होता हैं। यथा- मेरा आने वाला समय कैसा रहेगा, भविष्य कैसा रहेगा? मेरे जीवन की आज जो प्रतिष्ठा है, वह कल रहेगी या नहीं? ऐसी बहुत सारी चिंताएं भय का रूप ले लेती हैं। हमें उनसे निर्भय बनना होगा। उन चिंताओं से स्वयं को मुक्त करना होगा। चिंतामुक्त होने के लिए आज का दिन जी लें। कल किसने देखा है। ध्यान रखें, यदि आज अच्छा जीएंगे तो कल सुंदर होगा। यदि आज अच्छा नहीं जी पा रहे हैं तो कल की चिंता करना व्यर्थ है। यदि आज समय सही नहीं है तो कल की चिंता करने से क्या होगा। कल निश्चय ही बिगड़ा हुआ आएगा। यदि आज सही जी रहा हूँ, प्रसन्नता से जी रहा हूँ तो कल प्रसन्नता छिनने वाली नहीं है।

क्यों छिनने वाली नहीं है प्रसन्नता?

क्योंकि कल आज हो जाएगा। जो कल है वह आज हो जाएगा। मैंने संकल्प ले रखा है कि मैं आज प्रसन्नता से जीऊँगा तो फिर कल कैसे कुम्हलाएगा, कैसे मुरझाएगा। उसको कुम्हलाने की, मुरझाने की जगह ही नहीं है, क्योंकि जो कल है वह आज हो जाएगा। वर्तमान में जीना सीखेंगे तो चिंता खत्म हो जाएगी। अमूमन चिंता भविष्य की रहती है और भय भूत का रहता है क्योंकि कल कैसा था, उस पर अभी पर्दा गिरा हुआ है।

भगवान कहते हैं कि तुम्हारा कल कैसा है यह दुनिया जानती है।

क्या जानती है दुनिया बताओ? कैसे जानती है बताओ?

दुनिया तुम्हारा व्यवहार जानती है। आज का व्यवहार ही कल का निर्माण करता है। भगवान ने कहा कि हमने एक भी नरक को नहीं छोड़ा, एक भी तिर्यंच का स्थान नहीं छोड़ा। कीड़ा-मकोड़ा चाहे अन्य कोई भी योनि नहीं छोड़ी। नरक का स्थान नहीं छोड़ा। हम नरक में एक बार नहीं, अनंतानंत बार गए, क्योंकि नरक जाने जैसे कर्म किए अन्यथा वहाँ जाने की आपको स्वीकृति नहीं मिलेगी। यदि आप अभी जाना चाहो कि मैं नरक देखकर आ जाऊँ तो इजाजत नहीं मिलेगी, किंतु यदि वैसे कर्म किए होंगे तो नरक में जाने से कोई रोक नहीं सकता। हमें पृथ्वीकाय, अपकाय आदि में भी इसलिए जाना पड़ता है, क्योंकि हमने वैसे ही कर्म किए। कभी झूठ-कपट का व्यवहार किया, कभी मारपीट की और कभी किसी का मर्डर किया। इन सारे कारणों से हमने इस संसार की योनियों को भरा है। हमारा पिछला जीवन स्पष्ट है कि हम क्या थे।

मैं अनादिकाल से अपराधी हूँ। किस जन्म में मैंने अपराध नहीं किये? कौन-सा जन्म बीता, जिसमें मैंने अपराध नहीं किये? यदि निर्भय हो गया होता, निश्चिंत हो गया होता तो अभी तक संसार में रहने का मौका ही नहीं रहता। नैया पार हो गई होती। किंतु मेरे ही कर्म अभी तक मेरी आत्मा पर पड़े हुए हैं। इस कारण से संसार में हूँ। इसलिए कहा गया है-

अभयदान ते मलक्षय करुणा...

अभयदान क्या है?

अपनी आत्मा पर पड़े हुए मैल को परिष्कृत कर दो। उसे धो डालो। अपने मैल को धो डालो। वह अपनी दया है, स्वदया है। लोग दुनिया की दया करने के लिए तैयार हो जाते हैं, किंतु अपनी दया कठिन काम है। धोबी दुनिया के कपड़े धोता है, किंतु स्वयं के कपड़े नहीं धो पाता। क्या उसके कपड़े धुले हुए रहते हैं? नहीं रहते। हम भी धोबी जैसे हो गये हैं। हम दुनिया के कपड़े धोने के लिए तैयार हैं, दुनिया को सुधारने के लिए तैयार हैं किंतु अपनी तरफ ध्यान नहीं देते। हम दूसरे व्यक्ति के बारे में सोचते हैं कि वह ऐसा है, उसकी प्रवृत्ति ठीक नहीं है, उसका व्यवहार ठीक नहीं है, मुझे उसका व्यवहार सुधारना होगा, पर अपनी तरफ आँख उठाकर नहीं देखते।

कबीरदास जी कहते थे कि अपने दर्पण में अपना मुख देखो कि कैसा है। वे दूसरी बात कहते हैं कि यदि मन में भगवान की भक्ति नहीं है तो दर्पण में मुख देखने से कोई फायदा नहीं। जिसके मन में राम नाम नहीं, वह दर्पण क्या देखे। दर्पण में मुख देखने से क्या होगा, वह तो आपकी आकृति बताता है। घर में लगा हुआ दर्पण केवल वर्तमान आकृति दिखाता है, किंतु भगवान की भक्ति रूपी दर्पण होगा तो वह तुम्हारे यथार्थ रूप को दिखाने वाला होगा। उसमें यथार्थ रूप दिख सकता है। उसमें दिखेगा कि कहाँ तो परमात्मा का शुद्ध रूप है और कहाँ मेरी आत्मा की विद्रूप अवस्था।

सनत्कुमार चक्रवर्ती के रूप-लावण्य की बात देवलोक में चर्चित हो गई। यह चर्चा हो गई कि सनत्कुमार जैसा लावण्य, उसके जैसा रूपवान दूसरा मिलना मुश्किल है। आप विचार करो कि देवलोक में रूप-लावण्य की क्या कमी है? वहाँ पर रूप-लावण्य की कोई कमी नहीं है, लेकिन सनत्कुमार के लावण्य की चर्चा हो रही है। चर्चा हो रही है कि उसका रूप कितना मनोहर है। वह कितना लावण्यमय है। किंतु वह भी आत्मा के शुद्ध रूप के सामने विद्रूप है।

भगवान महावीर, गौतम से कह रहे हैं कि आज तुम्हें जिन नहीं दिख रहे, उनका मार्ग दिख रहा है। तू जिन को नहीं देख रहा है, तुम्हें केवल उनका शरीर दिख रहा है। जिन शरीर नहीं, आत्मा है। दिखने वाली आत्मा नहीं, शरीर है। शरीर तो माध्यम है। हम शरीर को ज्यादा महत्त्व देते हैं। शरीर के बजाय अपनी वृत्तियों पर ध्यान देना चाहिए। हमारी आंतरिक चेतना शुद्ध हो जाएगी तो बाहर का रूप कैसा भी हो, उसमें कोई लेना-देना नहीं रहेगा। आंतरिक चेतना की शुद्धि होगी वृत्तियों के सुधार से। कोई सोचे कि ऊपरी क्रियाओं से सुधार हो जायेगा तो यह सोच पूर्णतया सही नहीं है। उनसे सुधार नहीं होगा। जब तक आंतरिक वृत्तियों में सुधार नहीं होगा, तब तक वास्तविक सुधार घटित नहीं होगा। उस स्थिति में वह चेतना काली-कलूटी बनी रहेगी। जब तक आत्मा का पवित्र पावन रूप प्रकट नहीं होगा, तब तक वह काली-कलूटी रहेगी। तब तक हम असली चेहरे को देखने में समर्थ नहीं होंगे।

सनत्कुमार चक्रवर्ती को 16 महारोग प्रकट हुए, पर वे भयभीत नहीं हुए। जब आत्मा का, ज्ञान-चेतना का जागरण हो जाता है तो निर्भयता आ जाती है। सारी चिंता चली जाती है अथवा वह एक कोने में पड़ी रहती है। वह

चिंतित नहीं करती। उसके सामने एक ही विकल्प रहता है कि ज्यादा से ज्यादा मृत्यु होगी और मृत्यु अवश्यंभावी है। वह आएगी ही। चाहे हम कितना ही बचाव करें, मौत तो आएगी। हम मृत्यु से कितना भी बचाव कर लें, वह रुकने वाली नहीं है। कितनी ही औषधियाँ, दवाइयाँ खा लें, किंतु मौत तो आएगी। पर हाँ, जब ज्ञान-चेतना जग जाती है तो मृत्यु का भय दूर हो जाता है। ध्यान रहे, शरीर लीज पर है। जैसे ही लीज खत्म होगी, वैसे ही शरीर छूट जाएगा। उसका कितना भी बचाव करें, वह रहने वाला नहीं है।

फिर भय किसका?

लीज से पहले शरीर खाली होगा नहीं और लीज से आगे रहेगा नहीं।

सनत्कुमार को निर्भयता आ गई, इसलिए उसने वैद्य रूपी देव से कहा कि मुझे शरीर का कोई इलाज नहीं कराना। अधिक से अधिक मौत ही होगी। मौत से क्या डरना! हम तो रोज ही मौत से लड़ते रहे हैं। कितने ही युद्ध किए हैं, अब क्या डरना मौत से!

वस्तुतः जैन धर्म उस राह पर ले जाने वाला है, जहाँ निर्भय होकर चलते हैं। न कोई चिंता, न कोई भय। किसी की चिंता नहीं और किसी का भय नहीं। अपने असली रूप की पहचान करके अपनी असलियत में जीने का प्रयास करो तो सारे भय दूर हो जाएंगे। नहीं तो भय और चिंता तुम्हारे मूल रूप को कलुषित करने वाले होंगे। भय तुम्हारे स्वरूप को कलुषित करता रहेगा।

करुणा क्या है?

अपनी आत्मा को अभय देना करुणा है। आत्मा को भय मुक्त बनाना करुणा है।

कैसे बनना भयमुक्त? हमारे पास क्या फार्मूला है भयमुक्त बनने का?

भेद विज्ञान जब होगा तब होगा, सबसे पहले अंदर और बाहर को एक बना लो। कुछ भी छुपाकर मत रखो। छुपाकर रखोगे तो भय होगा। जब कुछ भी छुपाकर नहीं रखा होगा तो फिर किसका भय? फिर न माया का भय रहेगा और न काया का भय रहेगा।

भय किसका होता है?

भय माया का होता है। जब तक माया है, तब तक भय नहीं छूटेगा। जिस दिन माया का त्याग कर दोगे, उस दिन से भय नहीं होगा। भय तुम्हारा कुछ

भी नहीं बिगाड़ पाएगा। तुम भय से मक्त बन जाओगे।

मदनरेखा बहुत कठिनाइयों में बीहड़ में गई। रात्रि का भयंकर अंधेरा था। राजमहलों में रहने वाली राजरानी के आस-पास नौकर-चाकर, दास-दासियाँ और अंगरक्षक बने रहते थे, किंतु इस समय उसके साथ कोई भी नहीं था। मदनरेखा रात्रि के घने अंधेरे में बीहड़ में गुजरी। उसने जो संकल्प किया वह पूरा कर लिया।

महासती सीता को रावण उठाकर ले गया था। रावण ने लाखों प्रयत्न किये, किंतु सीता के सामने उसकी एक नहीं चली। रावण की भी एक मर्यादा थी, जिसके कारण वह बचा रह गया। वह किसी के साथ बलात्कार नहीं करता था। जो स्त्री उसके अभिमुख हो जाती या जिसकी रजामंदी हो जाती थी, उसी का वह भोग करता था। वह किसी के साथ बलात्कार नहीं करता था। जबरदस्ती नहीं करता था। उसकी मर्यादा अक्षुण्ण रही। उसने सीता जी के साथ कोई बल जबरी नहीं की। जोर-जबरदस्ती नहीं करना उसकी मर्यादा थी। महासती सीता कभी उसकी ओर अभिमुख नहीं बनी। रावण ने सीता को अपना बनाने के लिए बहुत कोशिश की थी, परंतु सीता अभिमुख नहीं बनी। अंततोगत्वा युद्ध हुआ। राम ने लंका पर विजय प्राप्त की। जब सीता, राम के सामने आई तो राम ने सीता से कहा कि मैं तुम्हें कैसे स्वीकार कर लूं। इतने समय तक तुम रावण के घर पर रही हो, तुम्हारे शीलधर्म का क्या प्रमाण है? राम बहुत अच्छी तरह से जानते थे कि सीता में कोई कालुष्य नहीं है, किंतु उन्होंने व्यवहार को देखा। उन्होंने यह सोचा कि दुनिया मुझे क्या कहेगी।

सीता के लिए राम के वचन मरणतुल्य बन गये। वह सोच रही है कि धरती फटे तो उसमें समा जाऊँ। सीता ने अग्निदेव का आह्वान किया। अग्निदेव प्रकट हो गये और महासती सीता उसमें समा जाती है। उसमें प्रविष्ट हो जाती है।

सूली का सिंहासन हो गया शीतल हो गई ज्वाला...

बहुत-से लोगों ने टीवी पर महाभारत देखा होगा। अभी कोरोना काल में बैठे-बैठे क्या करते? समय व्यतीत करने के लिए कुछ न कुछ करना है। वर्षों पहले, जिस समय रामायण का प्रसंग चल रहा था, लोग कहीं भी होते तो देखने के लिए दौड़े जाते थे। उनको व्याख्यान में आने की फुरसत हो या न हो, किंतु 9 से 10 का समय हुआ तो टी.वी के सामने बैठ जाते थे। यदि उस समय कोई संत

महाराज भी घर गोचरी के लिए आ जाते, तो सुहाते नहीं थे। उनको लगता था इस समय म.सा. कहाँ से आ गए।

महाभारत में आपने देखा होगा कि द्रौपदी का वस्त्र हरण किया जा रहा था। द्रौपदी ने अपने बल को छोड़ दिया और परमात्मा का स्मरण किया। आपने देखा होगा कि एक खिड़की से कृष्ण वासुदेव दिख रहे थे। वे खिड़की में खड़े थे। दु:शासन जितना प्रयत्न कर रहा था, चीर उतना ही बढ़ता जा रहा था। जो खींच रहा है वह रुक ही नहीं रहा है, पर वस्त्र भी बढ़ता जा रहा है। बढ़ता जा रहा है। उसका अंत ही नहीं हो रहा है।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. बहुत बार फरमाते थे कि जब हम अपने बल को छोड़ देते हैं तो परमात्म बल में नियोजित हो जाते हैं। उससे हमारे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। सुबह आप भजन सुन रहे थे 'सिद्धों की आत्मा से मेरा तार जुड़ गया।' पता नहीं जुड़ा या नहीं। आप बोल तो देते हो कि सिद्धों की आत्मा से मेरा तार जुड़ गया पर तार जुड़ गया होता तो आप निर्भय हो गये होते। भय का कोई काम ही नहीं बचता।

रंगा सियार, सिंह की खाल ओढ़कर जाएगा तो उसको पकड़े जाने का भय रहेगा। वह भयभीत होता रहेगा। रंगे सियार की कहानी आपने सुनी होगी। एक दूसरी कहानी में बताया गया है कि एक सियार ने सिंह की खाल ओढ़ ली। वह मन में सोच रहा है कि मैं एक नया जानवर हो गया। वह खुशी से कूदता है। सामान्य रूप से माना जाता है कि सियार बहुत बुद्धिमान होता है। उसने भी अपनी बुद्धि लगाई। जंगल के सियार उसे देख भागने लगे। उसने सोचा कि अब मौका अच्छा है। सियार ने जंगली जीवों से कहा कि भगवान ने मुझे राजा बनाकर भेजा है और कहा है कि ये जंगल तुम्हारा है। इस जंगल पर सिर्फ तुम्हारा अधिकार है। सियार ने सिंह से भी कहा कि खबरदार! यदि कुछ भी गड़बड़ी की तो अब मैं इस जंगल का राजा हूँ। भगवान ने मुझे इस जंगल का राजा बनाकर भेजा है।

वह यह बात कह तो रहा था, किंतु उसे एक बात का भय था।

उसको क्या भय था बताओ?

उसको अपनी ही जाति के जानवरों से भय था कि रात को यदि सियार हुआँ-हुआँ बोलने लगे और उस समय मैं भी हुआँ-हुआँ बोलने लगा तो मेरी

पोल खुल जाएगी। कई बार देखा-देखी हो जाती है। आप देखो कि किसी एक को खाँसी आती है तो पास में बैठे लोगों को भी खाँसी आनी शुरू हो जाती है। किसी एक आदमी को उबासी आती है तो उसके पास बैठे व्यक्ति को भी उबासी आ जाती है। न चाहते हुए भी ये क्रियाएँ हो जाती हैं।

एक बार बड़ी सभा में एक आदमी ने ताली बजाई तो पास में बैठे व्यक्ति ने भी ताली बजानी शुरू कर दी। उससे पूछा गया कि भाई तुमने ताली क्यों बजाई, तो उसने कहा कि मेरे पास वाले ने ताली बजाई तो मैंने भी ताली बजानी शुरू कर दी। कोई बोलता है हर्ष-हर्ष तो लोग बोल देते हैं जय, जय। यह बोलना है या नहीं बोलना है, परंतु हमारे मुँह से अपने आप निकल जाता है। क्या-क्या निकल जाता है, कुछ पता नहीं चलता है।

बात सियार की हो रही थी। सियार मन-ही-मन सोच रहा है कि क्या किया जाये। वह सोच रहा है कि यदि सियार जंगल में रहेंगे तो वे हुआँ-हुआँ तो बोलेंगे। उनकी हुआँ-हुआँ सुनकर मुझसे भी हुआँ-हुआँ निकल जाएगी तो पकड़ा जाऊँगा। उसने सारे सियारों को जंगल से निकालने का आदेश दिया। आदेश दिया कि कोई भी सियार मेरे जंगल की सीमा में नहीं रहेगा। कोई भी सियार राज्य में दिखाई नहीं देना चाहिए।

राजा के आदेश पर सारे सियारों को जंगल से निकाल दिया गया। सियार सोचता है कि मैं अब निश्चिंत होकर इस जंगल पर राज करूंगा। एक दिन संयोग ऐसा बना कि एक सियार उसकी सीमा में आकर रात को हुआँ-हुआँ करने लगा। उसकी आवाज सुनकर वह भी हुआँ-हुआँ करने लगा। उसके पास सिंह भी बैठा था। हुआँ-हुआँ की आवाज सिंह के कानों में पड़ी तो सिंह ने सोचा कि यह तो सियार है। यह तो फोकट में हम पर राज कर रहा है। सिंह ने उस पर झपट्टा मारा और उसे मारकर खा लिया।

सियार को भय था, क्योंकि उसके भीतर कुछ और था, जबकि बाहर कुछ और चल रहा था। जब तक ऐसी स्थिति रहेगी, तब तक अपनी आत्मा को निर्भय नहीं बना पाएंगे। इसलिए केवल इतना-सा अंतर अपने जीवन में करो कि जैसा भीतर का जीवन है वैसा ही बाहर दिखने दो। भीतर के जीवन को बाहर निकाल लो।

मैं अनादिकाल से अपराधी हूँ। कितना ही अपने आपको छुपा लूं नहीं

छुपा पाऊंगा। यदि दुनिया से छुपा भी लूँगा, तो सिद्धों से, अरिहंतों से नहीं छुपा पाऊंगा। मेरे जीवन का कोई भी अंश अरिहंतों से छिपा हुआ नहीं है। उनसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। जब सारे अंश प्रकट हैं तो फिर मैं क्यों भय खाऊँ? मुझे सत्कर्म करना चाहिए। अपने अंदर और बाहर की स्थिति एक जैसी बनाये रखनी चाहिए। जैसे बाहर का जीवन अच्छा है, वैसे ही अंदर से अच्छा जीवन जीएं। अच्छा दिखना चाहते है तो वैसा ही जीना शुरू कर दें। वैसा जीना शुरू कर देने पर फिर भय कहाँ होगा! इसलिए अपनी आत्मा पर करुणा करना है। उसके लिए जैसा अंदर का जीवन है वैसा बाहर जीना शुरू कर दें।

अभयदान क्या है?

अपने कर्मों का क्षय करना, अपनी आत्मा से मैल हटाना, अपनी कर्म दशाओं को दूर करना अभयदान है।

नमिराज ऋषि की बात हम सुन रहे हैं। नमिराज ने सत्पथ को चुना और भय से मुक्त हो गए।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

उनकी जागरणा बदल गई। वे पहले अपने जीवन की दशा पर विचार कर रहे थे। उन्होंने अपने बचपन की दशा पर विचार किया, यौवन पर विचार किया। उनका विचार भीतर की ओर मुड़ा, उनकी दशा भीतर की ओर मुड़ी तो उनको अहसास हुआ कि मेरे जीवन में भयंकर बीमारी आई। उस बीमारी ने शरीर को कमजोर कर दिया। मुझे दुःखी कर दिया। मुझे बेचैन कर दिया। नमिराज सोच रहे हैं कि मैंने मुँह से कितनी बार हाहाकार किया, उस समय मेरा स्वभाव बदल गया, कोई बोलता भी तो उसका बोलना अच्छा नहीं लगता था। मुझे बहुत सारे वैद्यों को दिखाया गया। बहुत पैसे भी खर्च किए गए। पैसे खर्च होने की चिंता नहीं रहती, यदि बीमारी दूर हो जाये, किंतु बीमारी भी ठीक नहीं हुई और पैसा भी पानी की तरह बहाया गया। इतना सबकुछ किया, पर इलाज हुआ नहीं। ऐसी स्थिति में लोगों को अफसोस होता है कि पैसे भी गये और इलाज भी नहीं हो पाया। ठीक है कि मन को समझा लेते हैं कि पैसे से क्या करेंगे। जिंदगी रही तो और कमा लेंगे। मन को तो जैसे समझाएंगे वैसे समझ जाएगा।

नमिराज ऋषि विचार कर रहे हैं कि मेरे तन को भयंकर व्याधि ने घेर लिया। उस समय डॉक्टर, वैद्य और चिकित्सक आये। सभी ने इलाज किया,

किंतु सारे चिकित्सक हार मानकर बैठ गये कि इस रोग का कोई इलाज नहीं हो पा रहा है। ऐसी कोई बात नहीं थी कि दवाइयाँ नहीं थीं। दवाइयाँ उनको खूब दी जा रही थीं। जो दवा देनी थी, सब दी। जो मंत्र करने थे सब कर दिये, किंतु जब किसी की बीमारी ही लाइलाज हो तो क्या हो सकता है? प्रोजेक्टर चालू हो तो पर्दे पर दृश्य आये बिना नहीं रहेगा। यदि प्रोजेक्टर बंद हो गया तो दृश्य आएंगे नहीं। जब तक उसकी किरणें जा रही हैं, तब तक पर्दे पर चित्र आना स्वाभाविक है। वैसे ही जब तक असातावेदनीय कर्म भीतर पड़े हैं, तब तक उसका प्रभाव आये बिना रहेगा नहीं। दुःख का हेतु मोहकर्म है। मोहकर्म साफ हो जाये, मोहकर्म दूर हो जाये तो जीव को कोई दुःख नहीं होगा।

सिद्धों की आत्मा से जिनके तार जुड़ने लगे, वे शुद्ध बन गए। उनके घाती कर्म क्षय हो गए। वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो गये और निर्वाण को प्राप्त हो गए। जिसने माया को छोड़ दिया, मोह को छोड़ दिया, कषायों को छोड़ दिया फिर उसे किसका दुःख आएगा! सब कुछ मैंने छोड़ दिया। मैंने अहंकार को छोड़ दिया, ममत्व को छोड़ दिया। अब मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूँ। मेरी अवस्था परिपूर्ण अवस्था है। जब कोई मेरा नहीं रहेगा और मैं किसी का नहीं रहूंगा, तो वह परिपूर्ण अवस्था होगी। ऐसा संवेग जिसके मन में बहता है, ऐसा विचार जिसके मन में होता है उसका ग्राफ बढ़ता जाता है। हम ज्यों-ज्यों ऐसा सोचते हैं, त्यों-त्यों वैराग्य प्रखर होता जाता है। वैराग्य परिष्कृत होता जाता है।

ज्ञान की पर्यायों में उनकी आत्मा स्थिर हो रही है। जैसे-जैसे ज्ञान की पर्याय बढ़ती रही, वैसे-वैसे सुख की धारा उनके भीतर बहने लगी। उनसे वह आनंद टपकने लगा जो आनंद सिद्धों में है। उनका अंश हम यहाँ प्राप्त कर सकते हैं। उत्कृष्ट संवेग-निर्वेद और वैराग्य में जो आत्मा में अनुभूति आए, वह अंश है। सिद्धों में उसी का सर्वांश है।

नमिराज की आत्मा में आनंद, सुख की धारा बहती रही, उनकी आत्मा उससे आप्लावित होती रही। वे उसी में निमग्न होते रहे। उनकी रंगत भी दिखने लगी। इसका वर्णन शब्द नहीं कर सकते। शब्दों में इतनी खूबी कहाँ, जो भीतर की अवस्था का वर्णन कर सकें। शब्दों में इतनी ताकत नहीं है कि वे आत्मा को उजागर कर सकें।

नमिराज विचार करते हैं-

एगो मे सासओ अप्पा, नाण-दंसण-संजुओ

अर्थात् ज्ञान-दर्शन से युक्त एक आत्मा ही शाश्वत है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि ज्ञाता-द्रष्टा भाव, चेतना के दो मुख्य लक्षण हैं। ज्ञाता और द्रष्टा का मतलब है जानना और देखना। बस जानना और देखना। जो है उसे देखें और जानें। उनके बारे में कोई प्रतिक्रिया नहीं करें। यह प्रतिक्रिया नहीं करें कि कौन क्या कर रहा है। बस देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें। ज्ञान से जाना जाता है, दर्शन से देखा जाता है।

यदि नाना गुरु के समीक्षण ध्यान पर कुछ नजर दौड़ायें तो वहाँ यह नजारा देखने को मिलेगा। आप केवल और केवल देखते रहें। यह भी बहुत सुंदर अवसर है। बहुत सुंदर चांस है। बहुत सुंदर उपाय है कि वृत्तियों का कैसे सुधार करें। केवल देखते रहें। भरत चक्रवर्ती को देखते-देखते ही केवलज्ञान हो गया। केवल देखो। द्रष्टा भाव और ज्ञाता भाव में चलते रहो। कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होनी चाहिए। कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होगी तो मन पवित्र होता जाएगा। पारदर्शी बन जाएगा। उसी के माध्यम से आत्मस्वरूप की अनुभूति कर पाएंगे।

नमिराज ऋषि ज्ञाता और द्रष्टा भाव के झूले में झूल रहे हैं। उनको झूलने दो। उसमें हम क्यों विघ्न पैदा करें। आगे क्या स्थिति बनती है यह हम समय के साथ जान पाएंगे। हम अपने आपको उस ज्ञाता-द्रष्टा भाव में ले जाने का प्रयत्न करें। नमिराज उस अवस्था में जा सकते हैं तो हम क्यों नहीं जा सकते। हमारे भीतर भी आत्मा है। हम उसकी ऊर्जा को, शक्ति को जागृत करें। उसको जागृत करने के लिए पहले ज्ञान चेतना जगानी पड़ेगी। तब ज्ञात हो पाएगा कि मेरा असली रूप क्या है। मेरा सत्य स्वरूप क्या है। फिर उसको देखने के लिए मेरी आत्मा ज्ञाता बनेगी, द्रष्टा बनेगी।

साथियो! हमारा पुरुषार्थ वैसा जगना चाहिए। हम सुनते बहुत हैं, किंतु सुना हुआ सार्थक हो नहीं पाता है। सुना हुआ सार्थक तब होगा, जब उस पर हमारा विचार होगा। यदि उस पर हमारी अनुप्रेक्षा होगी, तो वह धारणा का विषय नहीं बनेगा। ऐसा होगा तो जब कभी स्विच ऑन करेंगे तो वे बातें, वह विषय उभरकर सामने आ जाएंगे। धारणा रहेगी तो जैसे टी.वी पर सीरियल चालू होता है वैसे ही धारणागत विषय सीरियल का रूप लेगा।

इसलिए सुनें। सुने हुए पर चिंतन करें, मनन करें, अनुप्रेक्षा करें और धारणा में

उसको स्थान दें। बार-बार उस धारणा को सामने लायें। यदि उस पर बार-बार चिंतन-मनन होता रहे तो कुछ परिवर्तन जरूर आएगा। जितना गहरा चिंतन-मनन होगा, उतना ही जल्दी ज्ञाता-द्रष्टा भाव हमारे भीतर आएगा। ऐसा होगा तो भय-चिंता दूर होगी। अपनी आत्मा को अभयदान देने वाले बनेंगे। धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर विराम।

28 सितंबर, 2021

15

अन्तर की झनकार सुनें

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

बहुमंजिला मकान बहुत बने हुए हैं, पर कौन किसमें रह रहा है ये पड़ोसी को भी मालूम नहीं। ऊपर और नीचे मंजिल में रहने वालों को भी पता नहीं। ऐसा प्राय: बड़े शहरों में होता है। यदि नेम प्लेट न हो तो और भी अता-पता नहीं चले। यदि नेम प्लेट है भी तो बिना आवश्यकता के नेम प्लेट को देखे कौन, कौन किसलिए पढ़े, क्यों इसमें समय लगाए? यदि एक बिल्डिंग में सौ नेम प्लेट हैं, उसमें सौ परिवार रह रहे हैं तो किस-किस नेम प्लेट को देखे? क्यों देखे? वैसी ही स्थिति हमारी है।

हमारे भीतर भी ऐसी मंजिलें हैं। गहराई के तल में जा करके देखेंगे तो हमारी भावना अलग मिलेगी, विचार कुछ अलग होंगे। यह अनुभूति हमारे भीतर बनी हुई है। हम टुकड़ों में बँटे हुए हैं। जब तक यह भिन्नता बनी रहेगी, तब तक अखंड तत्व हाथ में नहीं आएगा। अखंड तत्व को स्पर्श करना है तो अपने भीतर की भिन्नता को हटाना पड़ेगा। उसकी उपस्थिति में अखंड तत्व हमसे ओझल बना रहेगा। हमें प्राप्त नहीं हो पाएगा।

श्रेयांसनाथ भगवान की स्तुति करते हुए एक बोध मिलता है कि श्रेय अवस्था प्राप्त करने के लिए अंश से चालू करना पड़ता है। यदि ए, बी, सी, डी चालू करते हैं तो एक दिन बहुत बड़े विद्वान बन सकते हैं। बचपन में बारहखड़ी सीखना शुरू करते हैं तो उसमें जटिलता लगती है कि क्या करना। जब उसे सीख लेते हैं तो किताबें पढ़ना सीख जाते हैं। अन्य बातों को समझने में भी समर्थ हो जाते हैं, वैसे ही श्रेय पथ की यात्रा भी चालू होती है।

एक दिन मैंने बताया था कि नमस्कार से, वंदना से साधना चालू होती

है और वह शिखर तक पहुँचती है। पहले नींव डाली जाती है। उसके बाद मकान खड़ा किया जाता है। हमने ऐसा कभी सुना नहीं है कि पहले मकान बने और बाद में नींव डालें। वर्तमान (भविष्य) में ऐसा हो जाए तो भी बड़ी बात नहीं है, किंतु आज तक हकीकत यह है कि पहले नींव डाली जाती है, उसके बाद बिल्डिंग खड़ी की जाती है। वैसे ही पहले हमें अपने नींव को बनाना जरूरी है।

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

एक अंश मिल जाए, एक स्रोत मिल जाए तो उससे बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। एक हल्की-सी रोशनी दिखने लग जाए, कोई चिह्न महसूस होने लग जाए तो व्यक्ति लक्ष्य तक पहुँच जाता है। वैसे ही शोध के दौरान एक छोटी-सी जिज्ञासा, छोटा-सा बोध बहुत ऊपर तक पहुँचा देता है। वह ऊपर तक पहुँचा देगा, बशर्ते भीतर जिज्ञासा जगे। रोशनी की एक किरण प्राप्त हो जाए।

हल्की-सी रोशनी प्राप्त होने पर दो स्थितियाँ हो सकती हैं। पहली स्थिति में हो सकता है कि व्यक्ति खोजने के लिए निकल जाए और दूसरी स्थिति में हो सकता है कि उसको अवरुद्ध ही कर दे। ये दो बातें हो सकती हैं। वैसे अधिकांश लोग खोज में प्रवृत्त होते हैं। कुछ लोग डरपोक होते हैं। वे डरते हैं कि आने वाली नई चीज से कुछ गड़बड़ी न हो जाए। गड़बड़ी के डर से उनकी हिम्मत नहीं हो पाती। उनका डर उनको आगे बढ़ने से रोकता है। इन दोनों स्थितियों में आप विचार करना कि आप कौन-सी श्रेणी में आते हैं। डर करके हटने वाले हैं या खोजने में आगे बढ़ने वाले हैं? यदि खोजने वाले होंगे तो गतिशीलता होगी। लक्ष्य होना चाहिए कि मेरी गति कभी नहीं रुके।

भगवान महावीर ने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया। हालांकि सारे सूत्र महत्त्वपूर्ण हैं। एक भी सूत्र ऐसा नहीं है जो महत्त्वपूर्ण नहीं हो, किंतु जिस समय जिस सूत्र को कहना होता है, उस समय उसकी महत्ता बतानी होती है। वह सूत्र है-

'जाए सद्धाए निक्खंतो तमेव अणुपालेज्जा।'

यहाँ साधना का पक्ष है, इसलिए साधक की बात हो रही है। इसमें साधक से कहा जा रहा है कि आज तुम जिस संसार का त्याग कर रहे हो, मान-माया का त्याग कर रहे हो, धन-दौलत का त्याग कर रहे हो, सुख-सुविधा का

त्याग कर रहे हो, उसी प्रकार से तुम उसका पालन आगे भी करना। ऐसा नहीं हो कि आज उत्साह है और कल ठंडा पड़ जाए। कल मंद पड़ जाए। ये बहुत बार देखा गया है कि प्रारंभ में जो जोश भरा रहता है बाद में वैसा नहीं रहता। बाद में ठंडा पड़ जाता है। बाद में वैसा उत्साह नहीं रहता। भगवान ने पहले ही कह दिया कि जैसा उत्साह वर्तमान में विद्यमान है, उसमें मंदता नहीं आने दी जाए। बल्कि उत्साह और प्रवर्धमान हो। उत्साह प्रवर्धमान होगा तो तुम गतिशीलता की राह पर बढ़ोगे। उत्साह मंद पड़ गया तो गतिशील नहीं रह पाओगे, क्योंकि भावों की मंदता गति में अवरोध पैदा करती है। कोई भी अपेक्षा, कोई भी महत्त्वाकांक्षा रोकने वाली नहीं बने। जो लक्ष्य बना लिया है उसके अनुरूप केवल गति ही करनी है। लक्ष्य बार-बार नहीं बनाए जाते। जिस समय गति प्रारंभ हुई, लक्ष्य उससे पहले बन गया होता है। अब तो केवल चलना है। गतिशील रहना है।

चौराहे पर जाकर कोई विचार नहीं करना कि इधर जाऊँ या उधर जाऊँ? कौन-से रास्ते जाऊँ? तुम्हारा रास्ता तय है। उसी रास्ते से आगे बढ़ना है। बार-बार सोचने की आवश्यकता नहीं रहे। यदि बिना सोचे-समझे कोई भी कार्य जोश-जोश में शुरू कर दिया जाता है तो थोड़ा-सा अटकाव उत्साह को खत्म कर सकता है। उत्साह खत्म हो जायेगा तो आगे नहीं बढ़ पाओगे। आगे नहीं बढ़ पाओगे तो मंजिल नहीं मिल पाएगी।

श्रेयांसनाथ भगवान ने पहले अध्यात्म का एक अंश प्राप्त किया। फिर उसके आधार पर अपनी साधना को जागृत रखा। अपनी गतिशीलता बनाए रखी तो एक दिन वे श्रेय के नाथ बन गए। स्वामी बन गए। आत्मरामी बन गए।

आत्मा में रमण कैसे कर पाएंगे? अपने भीतर कुछ उतरेगा नहीं तो कैसे जान पाएंगे? इंद्रियों से आत्मा का दर्शन नहीं होगा।

अमुत्तभावा वि य होई निच्चो, नो इंदिय गेज्ज अमुत्त भावा...

आत्मा अमूर्त है नित्य है। उसको चर्म चक्षुओं से देखा जाना संभव नहीं है। उसको अनुभव किया जा सकता है। उसकी अनुभूति भी महत्त्वपूर्ण होती है। वह अनुभूति सबको नहीं हो पाती। जिसको एक बार अनुभूति हो जाए उसे प्रयत्नपूर्वक बनाए रखना होगा, अन्यथा जरूरी नहीं कि वह अनुभूति सदा जिंदा रहे। यह हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं। रात्रि को सोते वक्त विचार आया और सुबह याद करना चाहें तो भूल जाते हैं कि रात्रि में क्या विचार आया था। जो

शब्दावली रात्रि के समय ध्यान में आई, वह सुबह तक याद नहीं रहती। भूल जाते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होंगे जिनको याद रह जाए, किंतु अधिकांश व्यक्ति उस विषय को, उस बात को भूल जाते हैं। याद करते हैं तो भी जल्दी से याद आती नहीं। लोग स्वप्न देखते हैं। कइयों को याद रह जाता है और बहुत-से लोग भूल जाते हैं। उन्हें लगता है कि स्वप्न में कुछ देखा तो था, किंतु क्या देखा पता नहीं।

जैसे रात्रि की बात सुबह याद नहीं रहती, वैसे ही मिला हुआ बोध का बिंदु या प्रकाश की किरण हमारी लापरवाही से बनी नहीं रह पाती। इसलिए भगवान कहते हैं कि किसी की उम्मीद पर मत रहो। अपने लक्ष्य पर मजबूत रहो। अपने विश्वास पर कायम रहो। ऐसा मत सोचो कि कोई बार-बार बढ़ाने वाला मिले। ऐसी आशा परांगमुखी बनाती है। यदि कोई उत्साहित करने वाला न हो तो गति ठप हो जाएगी। इसलिए अपने पर विश्वास रखना एवं सोचना कि गति अपने आप ही करनी है। किसी के साथ की इच्छा रहेगी तो भी तुम अटक जाओगे। यदि तुम्हारे साथ वाला अटका तो तुम भी अटक जाओगे। श्रेयांसनाथ भगवान अपने आपमें गतिशील हुए तो वे आत्मा के स्वामी, आत्मा के नाथ बन गए।

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे...

आत्मरामी, आत्मा में रमण कैसे करना चाहिए?

आत्मरमण की दो अवस्थाएं हैं। छाद्मस्थिक व वीतरागिक। छाद्मस्थिक आत्मरमण का तात्पर्य है काषयिक भावों से स्वयं को अस्पर्शित रखना, उससे अलिप्त रहना। उस अवस्था में जो अनुभूति हो, उसमें रमण करना, उसमें लीन रहना। अर्थात् दूसरी आत्मरमणता वीतरागियों-सर्वज्ञों की है। उसमें छद्मस्थ अवस्थाजन्य ज्ञान छूट जाते हैं। छद्मस्थ अवस्था के ज्ञान उस आत्मरमणता में सहयोगी नहीं बनते। इस अवस्था में ये किसी काम के नहीं हैं। इनकी कोई जरूरत नहीं रहती। अंधेरी रात में, अमावस्या की रात में कई बार जुगनू नजर आते हैं। वे कई बार दिखते हैं, किंतु सूर्योदय के बाद जुगनू का प्रकाश नजर नहीं आता। वैसे ही मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान का प्रकाश भी केवलज्ञानालोक के सामने कोई मायने नहीं रखता। मति-श्रुत आदि क्षायोपाशमिक ज्ञान है। अतः उनका वहाँ अस्तित्व नहीं रहता। उसकी उपमा या

तुलना अन्य किसी ज्ञान से नहीं हो सकती।

हमें आत्मा का जो अनुभव हो, जो आत्मबोध हो उसमें तन्मय हो जाएं। आत्मरमणता की बात कठिन अवश्य है, पर असंभव नहीं है। नमिराज का जीवन वृत्त हमारे सामने प्रस्तुत है। उसमें भी वह बात बताई गई है। नमिराज आत्मरमण में लीन हो गए। सनत्कुमार का चारित्र यह दर्शाता है कि उनको 16 महारोग हो गए, पर रोग की तरफ उनका ध्यान नहीं गया। रोगों के आगमन ने उन्हें आत्मा की तरफ डायवर्ट कर दिया, वे आत्मलीन हो गए।

भगवान महावीर को भी खून की दस्तें लगीं। उनको भी बीमारी हुई, किंतु उनकी आत्मा निरोगी थी। निरोगी आत्मा में भी शरीर रोगी हो सकता है और निरोग शरीर में भी आत्मा रोगी हो सकती है। यह भी कह सकते हैं कि दोनों में ही रोग हो सकते हैं। हम अपने शरीर को नहीं देखें। आत्म अनुभूति पर ध्यान दें। आत्मा की आवाज सुनें। सनत्कुमार चक्रवर्ती के भीतर जागरण हो गया कि अब शरीर की तरफ ध्यान नहीं देना।

आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा को कैंसर की बीमारी थी। ऐसा बताया जाता था कि उस बीमारी में एक हजार बिच्छुओं के डंक लगाने से होने वाली वेदना के बराबर वेदना होती थी। वे महापुरुष शांत रहते। उनके चेहरे को देखकर किसी को नहीं लगता था कि इन्हें कैंसर की बीमारी है। वे उस अवस्था में भी प्रसन्न रहते थे। उनके जीवन की सांध्य वेला में डॉक्टरों ने इलाज के लिए कहा, तो पूज्य श्री ने डॉक्टरों से कहा कि अब मैं अपनी आत्मा का इलाज करना चाहता हूँ। अब मुझे शरीर के इलाज की कोई आवश्यकता नहीं है। वही बात सनत्कुमार चक्रवर्ती की रही। जब देव, वैद्य बनकर आया और कहा कि मैं आपके शरीर का इलाज करना चाहता हूँ तो सनत्कुमार मुनि ने कहा कि मैंने शरीर का खूब मनन किया। अब मुझे शरीर की अपेक्षा नहीं रह गई। अब मेरी आत्मा जागृत हो गई। अब बस मुझे शरीर के सहारे तिरना है इसलिए चल रहा हूँ, क्योंकि शरीर के बिना संसार में कोई और तिराने वाला नहीं है। शरीर नौका का रूप है, जिसमें आत्मा नाविक के रूप में बैठी हुई है। वह नौका को खींचती हुई किनारे की तरफ ले जाने की कोशिश कर रही है। सनत्कुमार मुनि कहते हैं कि मुझे शरीर की चिंता नहीं है। मुझे आत्मा की रक्षा करनी है।

यह बात हमारे लिए भी लागू होती है। हमें अभी भी अवसर मिला हुआ है।

अवसर अभी प्राप्त है। अभी चांस है। यदि हम अभी भी प्रयत्न कर लें तो चेतना को रोग मुक्त करने में समर्थ बनेंगे। मनुष्य जन्म ही नहीं पिछले सारे जन्मों की कसर इसमें निकालने में समर्थ बनेंगे। हमें अपने भीतर तलाश करनी चाहिए कि मेरे विचार कैसे चल रहे हैं। आत्मा तो दूर की बात है। आत्मा तक जाने के लिए पहले विचारों का सहारा लेना पड़ेगा कि मेरे विचार कैसे चल रहे हैं। मेरी भावनाएँ कैसी हैं। अनेक बार विचार और भावना में भिन्नता होती है। विचार कुछ और बने रहते हैं, जबकि भावना कुछ और बनी रहती है।

एक भाई की भावना है कि मुझे दीक्षा लेनी है। उसकी गहरी भावना दीक्षा लेने की है, किंतु वह विचार कर रहा है कि मैं दीक्षा पाल पाऊँगा या नहीं! मैं समर्थ हो पाऊँगा या नहीं! साधु जीवन में बहुत सारे परीषह आते हैं, मैं उनको कैसे सह पाऊँगा! मेरे में इनको सहने का सामर्थ्य है या नहीं है! वह अपने सामर्थ्य की पहचान नहीं कर पाता। अपने आपको कमजोर मान लेता है। अन्य किसी को विचार आते हैं कि मैं दीक्षा तो लेना चाहता हूँ, किंतु परिवार का, बाल-बच्चों का क्या होगा? भावना अलग है और विचार उससे भिन्न है। विचार और भावना दोनों एक नहीं है। दोनों अलग-अलग है। हमें देखना है कि विचार क्या चल रहे हैं और भावना किस रूप में है।

विचारों से मोक्ष जाना चाहते हैं या भावना से?

बहुत बार विचार मोक्ष जाने के होते हैं, किंतु भावना नहीं होती। वह कोई जवाब नहीं देती। उसका लगाव कहीं और रहता है। जब भावों का लगाव कहीं और होता है तो कुछ और समझना चाहिए।

किसी लड़के और लड़की में प्रेम हो गया। लड़की, लड़के को चाहती है और लड़का भी लड़की को चाहता है, किंतु दोनों के परिवारवाले उस सम्बन्ध को नहीं चाहते। लड़के वाले लड़की को नहीं चाहते और लड़की वाले लड़के को नहीं चाहते। संयोग से वह सम्बन्ध नहीं होता है। दोनों अलग-अलग रह जाते हैं। दोनों की अलग-अलग शादी हो जाती है, किंतु उनकी भावना कहाँ रुकी हुई है? भावना बहुत जल्दी नहीं निकलती। जो पहले प्रेम बना, वह जल्दी से नहीं निकल रहा है। पुराना प्यार मन से निकल नहीं पाता है।

उन दोनों ने भले ही दूसरी शादी कर ली पर उनका दिल कहाँ लगा हुआ है? वैसे ही हमारा दिल कहाँ लगा हुआ है?

हमारा दिल लगा हुआ है धन में। हमारा दिल लगा हुआ है परिवार में। हमारा दिल लगा हुआ है संपत्ति में। हमारा दिल मान-सम्मान में लगा है। हमने सामायिक कर ली, पौषध कर लिया, किंतु दिल कहाँ लगा हुआ है? जब तक बात हमारे भीतर गहरी बैठी हुई है, तब तक इलाज नहीं हो पाएगा। जब तक बात निकल नहीं जाएगी, तब तक इलाज नहीं हो पाएगा। इलाज बहुत हो रहे हैं, पर बीमारी ठीक नहीं हो पा रही है। क्योंकि जहाँ बीमारी की जड़ है, वहाँ उसका इलाज ही नहीं हुआ। दवा ऊपर-ऊपर की जा रही है। उससे रोग ठीक होगा कैसे?

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति कहती है कि पहले भीतर के विकारों को दूर करना जरूरी है। भीतरी विकार ठीक नहीं होंगे तो थोड़े दिनों बाद बीमारी वापस हो जाएगी। ताकत की पुड़िया लेने से एक बार ठीक हो जाओगे, किंतु उसका असर लंबे समय तक रहने वाला नहीं है। थोड़े दिनों बाद बीमारी वापस उभर जाएगी। क्योंकि इलाज बीमारी का हुआ ही नहीं। भीतर के विकार निकलेंगे तो स्वस्थ हो जाओगे। आयुर्वेद चिकित्सा में तीन प्रकार से उपचार किया जाता है। पहला, वमन। दूसरा, विरेचन और तीसरा, स्वेदन। वमन का अर्थ होता है उल्टी कराना। इसमें रोग को, विकार को वमन करवाकर बाहर निकाला जाता है। विरेचन यानी मल-मूत्र के माध्यम से विकारों को निकालना। स्वेदन का मतलब है ऐसा उपचार करना कि शरीर से पसीना निकले ताकि पसीने के साथ विकार भी बाहर निकल जाये। इस प्रकार इलाज होने के बाद रोगी को काफी राहत महसूस होगी।

बहुत पहले की एक घटना है। एक भाई को दस लोग हॉस्पिटल लेकर पहुँचे। उस समय कैंसर का इलाज यत्र, तत्र, सर्वत्र नहीं हुआ करता था। डॉक्टरों ने उसकी जाँच की और कहा कि तुमको कैंसर की बीमारी है। इसका इलाज लेना पड़ेगा। उस समय कैंसर का नाम सुनते ही मरीज भयभीत हो जाते थे, इलाज की बात तो आगे की रह गई। डॉक्टर ने कहा, कैंसर इतना फैल गया है कि इलाज संभव नहीं।

एक जानकार ने स्वमूत्र चिकित्सा अपनाने की बात कही। रोगी ने उसके बताए अनुसार स्वमूत्र का प्रयोग चालू कर दिया। तेरह दिन बाद उसको बहुत दस्त हुआ। बहुत दस्त लगने से उसको काफी हलकापन अनुभूत हुआ।

सत्ताईस दिन बाद एक बार फिर जोरदार दस्त लगी और भीतर के सारे विकार बाहर आ गये। उसे बहुत हलकेपन की अनुभूति हुई।

स्वमूत्र चिकित्सक ने उससे कहा कि भाई वापस जाँच करा लो, ताकि अँधेरे में नहीं रहो। सारी जाँचें दोबारा हुईं। जाँच की रिपोर्ट आई कि कोई रोग नहीं है। सारी जाँचों की रिपोर्ट नॉर्मल आई। रिपोर्ट देखकर डॉक्टर आश्चर्य में पड़ गया कि यह कैसे हो सकता है। पहले स्पष्ट था कि उसको कैंसर है। दूसरी रिपोर्ट में क्या हो गया कि कैंसर बिलकुल भी नहीं है। उससे पूछा गया कि क्या उपचार किया तो उसने कहा कि मैंने केवल स्वमूत्र का प्रयोग किया। स्वमूत्र चिकित्सा का यह परिणाम आया है। वह स्वस्थ हो गया और वर्षों तक जीया। उसने हॉस्पिटल में यह बात रखी कि आप मुझे आदेश दें, मुझे मौका दें, अवसर दें कि मैं कैंसर के मरीजों का इलाज करूँ, किंतु डॉक्टरों ने कहा कि ये हमारे वश की बात नहीं हैं। हम इस प्रकार से इलाज करने के लिए अनुमति नहीं दे सकते। कल यदि कुछ हो गया तो जवाबदार कौन होगा? किस आधार पर मैं आपको अनुमति दे दूं? जो व्यक्ति स्वस्थ हुआ उसके स्वस्थ होने का कारण बना उनके भीतर का विकार निकल जाना। दवा की आवश्यकता नहीं रही।

हमको जुकाम हो जाए तो गोलियाँ खा लेते हैं। दवा ले लेते हैं। वह दवा उस रोग को निकालने के बजाय भीतर ही रोक देती है। वह भीतर रुकावट पैदा कर देती है। भीतर दबे हुए विकार नया रूप ले लेते हैं। वैसे ही हमारी आत्मा के विकार जब तक भीतर बने रहेंगे, वे नहीं निकलेंगे, तब तक हमारी आत्मा स्वस्थ नहीं हो सकती। उसे स्वस्थ बनाने के लिए हमें भावना के तल तक उसको पहुँचाना पड़ेगा। हमें भावना को एकदम स्वस्थ बनाना पड़ेगा। जब मेरी भावना धन-दौलत में नहीं रहेगी, जब मोह-ममत्व से उपरत हो जाएगी तो आत्मा स्वस्थ हो पाएगी।

एक गीत की कड़ी में कहा गया है कि-

वैरागी हूँ, वैरागी को न धन चाहिए, न घर चाहिए,
एक वीर प्रभु की शरण चाहिए।

वैरागी को धन-दौलत की जरूरत नहीं है। हमने अंतगड सूत्र सुना है। बहुत से चारित्र सुने हैं। हमने गजसुकुमाल और मेघकुमार की बात सुनी है। एक बात उसमें आती है कि परिवार वाले मनाने की कोशिश करते हैं। उनको साधु

जीवन की कठिनाइयाँ बताते हैं। कहते हैं कि इन सारी कठिनाइयों को तुम कैसे सहन करोगे। बताना ही चाहिए कि तुम्हारा इतना कोमल शरीर इन सारी कठिनाइयों को कैसे सहन करोगे। तुम्हारा कोमल शरीर परीषहों को सहन करने में कैसे समर्थ होगा। साधु जीवन में अनेक परीषह आएंगे। उस समय तुम्हारा शरीर उन सारी कठिनाइयों और परीषहों को सहन करने में समर्थ है या नहीं है, ये बात वैरागी से अवश्य करनी चाहिए।

जोश-जोश में आदमी तपस्या कर लेता है, साधु बन भी जाता है। बाद में कभी-कभी कई कठिनाइयाँ अनुभूत होने लगती हैं। उन कठिनाइयों का उसे पता ही नहीं था। इसलिए पहले अपनी शक्ति को तौलना चाहिए कि मैं वस्तुतः साधु जीवन की आराधना करने में समर्थ हूँ या नहीं हूँ। जब लगे कि मेरे में साधु जीवन स्वीकार करने का सामर्थ्य है, मेरा मन मान रहा है, साधु जीवन के प्रति मेरे मन में कोई द्वंद्व नहीं है तो कदम आगे बढ़ाने में पीछे नहीं रहना चाहिए। अनेक राजा-रानी, राजकुमार और सेठ-साहूकार भी दीक्षित हुए हैं।

परिवारवालों ने साधु जीवन में आने वाली कठिनाइयों को बताया। उसने जब पूरी दृढ़ता से ये बताया कि वह कठिनाइयों को सहने में समर्थ है तो परिवारवालों ने एक लास्ट उपाय अपनाया। उन्होंने कहा कि हम तुम्हें एक दिन के लिए राजश्री से संपन्न बना हुआ देखना चाहते हैं।

उसको एक दिन के लिए राजा बना दिया गया। उसका राज्याभिषेक कर दिया गया। राज्याभिषेक के बाद सभी हाथ जोड़कर पूछते हैं कि राजन् आपका क्या आदेश है? वह क्या जवाब देता है?

वह कहता है कुत्रिकापण से ओघा और पात्रा मँगवाया जाए, नाई को बुलाया जाए। देखा आपने राजा बनने के बाद भी, विशाल वैभव के स्वामी बनने के बाद भी उनकी भावना नहीं बदली। यह है अन्तर तक परिवर्तन का परिचय। उनके भावना और विचारों में भिन्नता नहीं रही। भावना की गहराई में संवेग की भावना आ गई। मन में वैराग्य की भावना हो गई। उनके मन में कभी भी जो पद-प्रतिष्ठा आदि की चाह रही हुई थी, वह सारी की सारी निकल गई। उनको न तो पद चाहिए और न ही प्रतिष्ठा। कुछ नहीं चाहिए। चाहिए केवल आत्मा का शुद्ध स्वरूप।

आचार्य पूज्य नाना गुरु के विषय में अनेक प्रसंग सुने हैं। हमने किताबों

में पढ़ा होगा और पर्युषण में उपाध्यायश्री ने भी बताया था। जब उनके मन में दीक्षा की भावना पैदा हुई तो उन्होंने यह विचार किया कि मुझे दीक्षा लेनी कहाँ! उनको मालूम पड़ा कि उदयपुर में बड़े संतों का चातुर्मास है तो वे वहाँ पहुँच गए। वहाँ पाट लगा हुआ था। पाटे पर बहुत सारे शास्त्र पड़े थे। एक संत आये और उनको बड़े संत के पास ले गए। ले जाने वाले संत ने बड़े संत से कहा कि एक युवक आया है जो दीक्षा की भावना रखता है। पूज्य नानालाल जी से कहा गया कि आप पहले दीक्षा के लिए हाँ करेंगे तो हम आपको अध्ययन कराएंगे। वहाँ उनका मन संतुष्ट नहीं हुआ कि ये क्या बात हुई कि पहले हाँ भरो बाद में पढ़ाने की बात बनेगी, बाद में अध्ययन कराएंगे! उन्होंने सोचा कि मैं कुछ जानूँगा तभी तो बात आगे बढ़ेगी। मुझे जानने का मौका तो मिलना चाहिए।

वे दूसरी जगह गए। वहाँ पर उनको कहा गया कि आप दीक्षा लेंगे तो आपको नए-नए पातरे दे देंगे। उनको लगा कि साधु को नए और पुराने पातरों से क्या लेना-देना। उनका मन वहाँ भी नहीं भरा। वे तीसरी जगह पहुँचे। वहाँ पर भी ऐसी ही बात हुई कि आप हमारे यहाँ पर दीक्षित होते हैं तो हम आपको लिखित में देते हैं कि आपको संघ का आचार्य बना देंगे। ये सारे प्रसंग उनके जीवन में घटे, किंतु उनकी मानसिकता कहीं पर भी भर नहीं पाई। वे जो ढूँढ रहे थे, वह नहीं मिला।

एक जगह तो बात ही अलग हो गई। उस जगह उनसे कहा गया कि दीक्षा में क्या पड़ा है? ये अंक लेकर बंबई चले जाना, तुम्हारी पाँचों अंगुलियाँ घी में होंगी। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक संत ऐसी बात कैसे कर रहा है! उन्होंने अपने में झाँका तो उनको लगा मेरे जेहन में पैसे नहीं हैं। मुझे पैसों का कोई लगाव नहीं है। उनको वैराग्य अवस्था में कई लोगों ने सुंदर वस्त्र देने की कोशिश की तो उन्होंने कहा कि मुझे वस्त्र की जरूरत नहीं। कुछ लोग पैसे देने लगे तो कहा कि मुझे क्या लेना-देना पैसों से। मुझे पैसों की आवश्यकता नहीं है।

उन्होंने श्री जवाहराचार्य का नाम सुना। श्री जवाहराचार्य उस समय गुजरात में विचरण कर रहे थे। नानालाल जी को पता चला कि वे खादी के कपड़े पहनते हैं। नानालाल जी को भी खादी से प्रेम था। नानालाल जी ब्यावर आये। इसी ब्यावर में। उस समय जवाहर भवन नहीं था। मुक्ता भवन नहीं रहा होगा। समता भवन और महावीर भवन भी नहीं रहे होंगे। उस समय ब्यावर में आचार्य

पूज्य बोथलाल जी म.सा. विराजमान थे। वहाँ पर चर्चा चली तो जवरीलाल जी म.सा. ने कहा कि दीक्षा देना हमारे बस की बात नहीं है। इसका निर्णय युवाचार्य श्री ही कर सकते हैं। युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. उस समय कोटा विराज रहे थे। नानालाल जी कोटा में युवाचार्य श्री के पास पहुँचे। नानालाल जी का मन प्रथम दृष्टि में ही उनके प्रति समर्पित हो गया। वैसे ही जैसे गौतम स्वामी का मन भगवान के प्रति समर्पित हुआ था।

युवाचार्य श्री के व्यक्तित्व को देखते ही नानालाल जी ने अपने मन से कहा कि यहाँ तुम्हारी संयम आराधना अच्छी होगी। उन्होंने निवेदन किया कि भगवन् मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। युवाचार्य श्री ने उनको ऊपर से नीचे तक देखा और कहा कि भाई आप आज पहली बार हमसे मिले हो और हम भी आपको पहली बार देख रहे हैं। दीक्षा एक-दो दिन का सौदा नहीं है। ये जिंदगी भर की प्रतिज्ञा है। इसलिए भावुकता से काम नहीं होता है। पहले तुम हमारे साथ रहो। तुम हमको देखो, हम तुम्हें देखेंगे, उसके बाद दीक्षा पर विचार करेंगे।

नानालाल जी को लगा कि बात एकदम सही है। जब तक एक-दूसरे को समझेंगे नहीं, तब तक निर्णय कैसे होगा, किंतु उन्होंने ठान लिया था कि मुझे दीक्षा तो लेनी ही है और लेनी भी यहीं पर है।

यह बात मैं इसलिए बता रहा हूँ कि जब हमारे भीतर आंतरिक पुरुषार्थ जग जाता है, तब धन-दौलत, परिवार का कोई लगाव नहीं रह पाता। साथ ही भावना एकमेक हो जाती है।

नमिराज ऋषि की भी तन्मयता दृढ़ हो गई, क्योंकि उन्होंने जान लिया कि बहुत जनों में दिक्कत आती है, कठिनाई आती है। जब मैं एकमात्र अपनी आत्मा में लीन रहूँगा तो वहाँ पर किसी भी प्रकार की झंझट नहीं होगी।

श्री श्रेयांसनाथ भगवान अंतरयामी बने, आत्मरामी बने। नमिराज भी आत्मरामी बनने की ओर आगे बढ़े।

जय, जय, जय, नमिराज ऋषिवर, जय जय जय जयकार

नमिराज विचार करने लगे कि दुनिया कितने बहुरंगी सपने देखती रहती है। इसी संदर्भ में उनका चिंतन आत्माभिमुख बना कि दुनिया का क्या सोचूँ, मैंने भी रंगीन सपने देखे थे। बहुरंगी सपने देखे थे। मेरे विचार बने थे कि ऐसा करूँ, वैसा करूँ। मैं इसमें विकास करूँ, उसमें विकास करूँ। यह भी मेरा, वह भी मेरा।

मैंने विकास की बहुत सारी बातें सोचीं, बहुत सारे रंग भरने की कोशिश की।

यह केवल नमिराज की बात नहीं है। अमूमन व्यक्ति ऐसा ही करता है। स्वप्न देखता है। कल्पना के झरोखे में बैठकर चिंतन करता रहता है कि आगे क्या करना चाहिए। एक जगह फैक्ट्री है तो दूसरी जगह और होनी चाहिए। एक जगह ऑफिस है तो दूसरी जगह भी होना चाहिए। दुकान एक है तो दूसरी भी दुकान होनी चाहिए। इस प्रकार व्यक्ति बहुत सोचता है, पर यह विचार नहीं करता कि साथ में क्या जाएगा।

यह सुस्पष्ट है कि साथ कुछ नहीं जाएगा। सब यहीं छूट जाएगा। चश्मा उतारकर क्या देख रहे हो गौतम जी? अब उतार दिया है तो उतार ही दो। जिस चश्मे से दुनिया देख रहे हो उसको वापस नहीं लगाना। उतर गया तो फालतू क्यों वापस लगाना? हकीकत में आप विचार करो। कभी शांति से विचार करो कि हमने बहुत कुछ हासिल किया। पुण्यवानी से बहुत पैसे कमाये होंगे, मान पाया, सम्मान पाया, बहुत कुछ किया, किंतु इन सारी स्थितियों में आत्मा का विकास कितना हुआ? आत्मा कहाँ तक आगे बढ़ पाई? बढ़ भी पाई या अभी भी उसी चार गति चौराहे पर खड़ी है? बारहवें चक्रवर्ती का नाम याद है क्या आपको? वे कहाँ पहुँचे?

उनका नाम था ब्रह्मदत्त। उन्होंने संसार की सबसे बड़ी उपाधि को प्राप्त कर लिया। सबसे बड़ी उपमा, पद-प्रतिष्ठा, सबसे ऊँची पदवी को पा लिया। संसार में चक्रवर्ती से बड़ी कोई उपाधि नहीं है। छह खंड का अधिपति वही होता है। उसके चौदह रत्न और नौ निधियाँ होती हैं। देव भी उसकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। ऐसा चक्रवर्ती पद उसने पा लिया, किंतु मरते वक्त क्या हुआ? उसे कैसी लेश्या आई?

कृष्ण लेश्या। एकदम काली लेश्या आई। उसका परिणाम क्या होगा? बाहर का विकास क्या काम आया? सारा यहीं का यहीं धरा रह गया। चक्रवर्ती ने बहुत-सा सुख भोगा। बहुत-सी महारानियों का भोग किया। बहुत सारे आभूषण पहने और बढ़िया से बढ़िया खाना खाया। पर हुआ क्या? वापस प्रश्न वहीं आता है कि क्या हुआ?

इस प्रश्न का जवाब नहीं मिल पा रहा है। मिल भी नहीं पाएगा, इसका जवाब इसलिए नहीं मिल पाएगा, क्योंकि दृष्टि बदली नहीं। आज आपने जितना

वैभव कमाया, जितना धन कमाया, जितनी संपत्ति कमाई उसको भोग लो। पचास, साठ, सत्तर वर्ष पूरा कर लिया। सौ वर्ष में तीस वर्ष और बाकी है, भोग लो।

उसके बाद क्या रास्ता है? किस मार्ग से निकलोगे, किस हाई-वे से निकलोगे? कौन-सा रास्ता मिलेगा? श्मशान घाट तक कितने लोग साथ जाएंगे? कोरोना काल में कितने लोग आ सकते हैं? कोरोना काल न होता तो हो सकता था कि हजार-पाँच सौ लोग भी आ जाते, किंतु सरकार कहती है कि 11 से ज्यादा नहीं। क्या होगा उस दिन, सोचा हमने! नहीं सोचना। क्यों सोचना? अभी मौज करते हैं। उस दिन की बाद में सोचेंगे। कोई बात नहीं, बाद में सोच लेना। यदि जरूरत पड़े तो ब्रह्मदत्त चक्री से पूछ लेना कि अब आप कैसे हैं? उनका क्या जवाब मिलेगा? पहली नरक की वेदना कितनी भयंकर है। सातवीं नरक की वेदना का तो कहना ही क्या! इसलिए जब तक आयु रूपी रस्सी मौजूद है, तब तक बाजी हमारे हाथ में है, तब तक विचार कर लेना चाहिए।

नमिराज ऋषि विचार करते हैं कि लोग बहुरंगी स्वप्न देखते रहते हैं। उनके कितने स्वप्न टूट जाते हैं। वे कल्पनाओं में ही जीवन गुजार देते हैं और अचानक एक दिन परलोकवासी हो जाते हैं। नमिराज तो जाग गए, आप भी जागो।

उठो नर-नारियों जागो, जगाने संत आये हैं।
धर्म उपदेश ये प्यारा सुनाने संत आये हैं।।

मकड़ी बड़े उत्साह से जाला बुनती है, किंतु उसका परिणाम क्या होता है? आपको पता है बताओ।

वह खुद उस जाल में फँस जाती है।

हमने कितने जाल बुने हैं? हमारे बुने हुए जाल में कौन फँसता जा रहा है? बताओ।

हम स्वयं ही फँसते जा रहे हैं। हम गोरखधंधे में फँसते जा रहे हैं, पर हमको लग रहा है कि हम फँस नहीं रहे हैं, अपितु उससे निकल रहे हैं, लेकिन ध्यान रहे, इससे बाहर निकलना इतना आसान नहीं है। यह आसान नहीं है कि जल्दी से हम जाल से बाहर निकल जाएं।

इस जाल से बाहर निकलना है तो क्या करना होगा, ये बताओ।

केवल इतना ही करना पर्याप्त है कि हमारी भावना और विचार एक हो जाए। उनमें एकात्म भाव बन जाए।

गहराई से विचार करना कि मेरे भीतर की भावना क्या है और हकीकत में मैं क्या चाहता हूँ?

बंधुओ! ये अवसर मिला है, अत: अपनी जिंदगी को सुलझायें। पता नहीं वापस कब मनुष्य जन्म मिलेगा। यह अवसर मिला है तो व्यर्थ में गँवाने का कार्य नहीं करें। यह नहीं सोचें कि वापस मनुष्य जन्म मिलेगा तब साधना कर लेंगे। यह पक्का नहीं है कि वापस मनुष्य जन्म मिल ही जाएगा। यदि अगले जन्म के लिए सोच रहे हों तो प्रश्न होता है कि इस जन्म में क्यों नहीं! इतना सुंदर तन मिला है तो इस अवसर को क्यों गँवाना!

जो प्राप्त क्षण को नहीं साध पाता वह अपने आने वाले क्षण को साध लेगा, इसका क्या भरोसा! जो अनागत पर कार्य को छोड़ता है, वह उसको टालना चाहता है, करना नहीं। यदि करना ही है तो आज क्यों नहीं! इसलिए यदि नींद खुल गई तो इसी क्षण खड़े हो जाओ। वापस कब नींद की झपकी आ जाये कोई नहीं जानता। सुबह-सुबह ठंडी हवा चलती है तो मन करता है कि थोड़ा और सो जाऊँ, थोड़ा और सो जाऊँ। ऐसा करने वाला सोता ही रह जाता है।

बंधुओ! जागो और अपनी आत्मा को जगाओ। अपने भीतर की अंतश्चेतना को देखें कि उसकी झनकार क्या बोल रही है? वह क्या भाव, विचार दे रही है? इसका समीक्षण करें, ज्ञान करें तो हो सकता है कि जीवन में कुछ रूपान्तरण हो सके। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

29 सितंबर, 2021